जैनेन्द्र के कथा साहित्य में युगचेतना की अभिव्यक्ति के स्वरूप का अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की

डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2002

निर्देशक
डॉ० मीरा दीक्षित
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधछात्र
अजय प्रताप सिंह

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
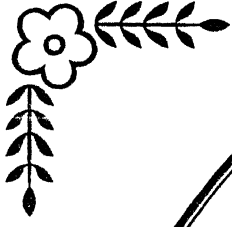
जिनकी स्मृति

निरन्तर

प्रगति की प्रेरणा देती है

तथा

जीवन–संघर्ष

में

कर्त्तव्य–पथ

से

विमुख न होने

का

अटूट संकल्प सृजित करती है–

ऐसे

परम पूज्य पिता

स्वर्गीय समर बहादुर सिंह

की

पुण्य स्मृति

को

सादर समर्पित !

आभार ज्ञाप्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने इस कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने डॉ० मीरा दीक्षित (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के निर्देशन में पूरा किया। उनके सुचारु निर्देशन तथा सुदक्ष आलोचनात्मक प्रतिभा ने मेरी अल्पबुद्धि को बहुत कुछ देने की कृपा की है। उनके द्वारा किए गए उपकार के प्रति आभार प्रदर्शन का अभिनय मैं नहीं कर सकता। उनकी सहृदयता के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

प्रो० राजेन्द्र कुमार (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), जिनका चिंतनशील व्यक्तित्व मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है, के मंगलाशीष की मैं कामना करता हूँ।

मै कृतज्ञ हूँ प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) का, जिन्होंने मुझे यह विषय सुझाया तथा जिनका चिंतनशील व्यक्तित्व निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

डॉ० बी०पी० सिंह (पूर्व चीफ प्रॉक्टर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० बी०एन० मिश्र (रीडर, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० राम कृपाल त्रिपाठी (संरक्षक, डॉ० ताराचन्द छात्रावास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० के०पी० सिंह (अधीक्षक, डॉ० ताराचन्द छात्रावास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), श्री राम शिरोमणि उपाध्याय (पूर्व प्रधानाचार्य), श्री महेन्द्र नाथ मिश्र (प्रवक्ता), श्री जीत नारायण सिंह (प्रवक्ता) के अगाध स्नेह ने मुझे नई दिशा व प्रेरणा प्रदान की। इन महानुभावों के प्रति मैं आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

श्रद्धेय श्री विजय सिंह (सीनियर आडीटर, उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद), श्री नरेन्द्र सिंह 'राना' (अधिवक्ता) एवं श्रीमती कुमुद सिंह ने इस कार्य हेतु मुझे बार–बार प्रेरित किया, इनके प्रति मैं आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर श्री राकेश शुक्ल (जौनपुर), श्री नन्हकऊ शुक्ल (जौनपुर), श्री कमलेश उपाध्याय (जौनपुर), श्री रमेश सिंह 'राना' (इलाहाबाद), श्री उमेश सिंह 'राना' (इलाहाबाद), श्री शांति शेखर सिंह (मिर्जापुर), श्री विनोद तिवारी (जौनपुर), श्री धर्मेन्द्र सिंह 'नाटू' (जौनपुर) के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अध्ययन काल में मेरी हर संभव मदद की।

मैं कृतज्ञ हूँ श्री मकरन्द सिंह (सुल्तानपुर) एवं श्रीमती स्मिता सिंह (सुल्तानपुर), डॉ० वन्दना सिंह गौर (इलाहाबाद), श्री संजय सिंह गौर (इलाहाबाद), श्री विशाल सिंह (आजमगढ़), श्री विपुल श्रीवास्तव (फैजाबाद), डॉ० उमेश सिंह (प्रवक्ता, अर्थशास्त्र), श्री अर्जुन सिंह (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री अतुल कृष्ण सिंह 'बंटी' (कर अधीक्षक), श्री सुभाष मिश्र (इलाहाबाद), श्री मनोज कुमार सिंह (जौनपुर), श्री वागीश मिश्र (बलिया), श्री मुनीश मिश्र (जौनपुर), श्री लक्ष्मी कांत सिंह (शोध छात्र, हिन्दी), श्री श्याम नारायण त्रिपाठी (प्रवक्ता, भूगोल), श्री वीरेन्द्र सिंह (शोध छात्र, हिन्दी), श्री मनमोहन सिंह (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री ऋतेश उपाध्याय (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री प्रेमेन्द्र कुमार त्रिपाठी (प्रवक्ता, हिन्दी), श्री प्रफुल्ल राय (आजमगढ़), श्री रजनीश पाण्डेय (ग्राम पंचायत अधिकारी), सुश्री अर्चना दुबे (सोनभद्र), सुश्री रुखसाना परवीन (वाराणसी), श्री मनोज कुमार सिंह (सुल्तानपुर), श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह (जौनपुर) का, जिनके सहयोग और प्रोत्साहन से यह कार्य संभव हो सका।

इस अवसर पर पूजनीया माँ श्रीमती शान्ती सिंह का स्मरण करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने अपने भौतिक सुखों की परवाह न करते हुए मेरे शैक्षिक उन्नयन से ही हर्षित होने का व्रत लिया है।

श्रद्धेय श्री आई०बी० सिंह (पूर्व प्राचार्य, रुइया कालेज, मुम्बई) के चिन्तनशील व्यक्तित्व ने मुझे निरन्तर प्रेरित किया है। उनके प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता को व्यक्त करना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

मेरे मित्र डॉ० राकेश सिंह (प्रवक्ता, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर), श्री संजय पाण्डेय (शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र) तथा श्री मृगेन्द्र प्रताप सिंह (शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र, शिक्षा संकाय) ने सामग्री संचयन से लेकर शोध-प्रवन्ध के मुद्रण तक जो सहयोग दिया वह अमूल्य है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उनके द्वारा किए गए उपकार को कम करके आँकना होगा।

मेरे मित्र श्री सतीश कुमार सिंह (आजमगढ़) ने शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने के लिए बार-बार आग्रह किया। उनकी प्रेरणा एवं सहयोग से ही यह श्रमसाध्य कार्य समय रहते पूरा हो सका। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मै विशेष रूप से आभारी हूँ श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह (कार्यालय अधीक्षक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) का, जिनका सहयोग मुझे निरन्तर मिलता रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जिन विद्वज्जनों के विचारों एवं ग्रंथों का सहयोग लिया गया है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसी क्रम में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुस्तकालय के प्रति मैं आभारी हूँ, जहाँ मुझे बहुमूल्य ग्रंथों के अध्ययन का अवसर मिला।

इस अवसर पर 'जय माँ दुर्गे कम्प्यूटर प्वाइंट' मनमोहन पार्क, कटरा, इलाहाबाद परिवार के सदस्यों श्री रतन खरे, श्री रमेश कुमार यादव, श्री सन्तोष दास, श्री चन्द्र भान सिंह एवं श्री राम कुमार तिवारी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने तत्परता एवं आत्मीयता से शोध-प्रबन्ध का मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

अजय प्रताप सिंह

दिनांक : 19.12.2002 (अजय प्रताप सिंह)

विषयानुक्रम

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

भूमिका

भूमिका

प्रेमचन्दोत्तर युग के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कथाकारों में जैनेन्द्र कुमार का नाम सर्वप्रमुख है। प्रेमचन्द के बाद जो सबसे सक्रिय रचनात्मक पीढी आई, जैनेन्द्र जी उसके अग्रदूत थे। उन्हे प्रेमचन्द का उत्तराधिकारी कहा जाता है। जैनेन्द्र जी और उनके कथा–साहित्य का हिन्दी साहित्य में असाधारण महत्व है। हिन्दी कथा–साहित्य को जो सघन अस्मिता और दार्शनिक दृष्टि जैनेन्द्र जी ने दी, वह आन्तरिक सत्य से हमारा साक्षात्कार कराती है। प्रेमचन्दोत्तर युग से रचना प्रारम्भ करके वे कथा–साहित्य जगत् में आये। क्योंकि अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा कथा साहित्य में युग को आत्मसात् करने की क्षमता अधिक होती है। कथा साहित्य में युग चेतना को अभिव्यंजित करना अपेक्षाकृत आसान होता है। इसलिए जैनेन्द्र को युग चेतना की अभिव्यंजना में अपनी प्रतिभा का उल्लास दिखाई पड़ा।

जैनेन्द्र ने उपन्यास–कहानी के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ लिखा है, किंतु साहित्य जगत् में उन्हें मूलतः कथाकार के रूप में जाना जाता है। इसी रूप में वह साहित्य–जगत् में प्रतिष्ठित भी हैं। उन्हें हिन्दी कथा–साहित्य को नवीन दिशा देने का श्रेय प्राप्त है। 'त्यागपत्र', 'सुनीता', 'परख', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', जयवर्धन', आदि उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक जीवन–दर्शन रूपायित हुआ है। जैनेन्द्र प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्ति के धरातल पर अपने पात्रों के माध्यम से मानवीय और कौतूहलपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। उनकी चेष्टा बाह्य से अधिक अन्तर्मुखी होती है। उन्होंने जीवन की बाह्य समस्याओं को न लेकर जीवन के उत्स को अपनी रचना का

केन्द्र बनाया है। उनके कथा–साहित्य में मनुष्य के दिन–प्रतिदिन के जीवन–व्यापार से अधिक उसमें निहित आंतरिक सत्य की ओर दृष्टिपात किया गया है। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में आधुनिक युग के मानव की मनोगत् समस्याओं जैसे–काम (सेक्स) तथा विभिन्न मानसिक द्वन्द्वो का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र हिन्दी साहित्य के ऐसे पहले समर्थ कथाकार हैं जिन्होंने अपने कथा–साहित्य मे सेक्स (काम) को अध्यात्म मार्ग में बाधक नहीं अपितु अध्यात्म मार्ग की एक सीढ़ी माना है।

जैनेन्द्र का कथा–साहित्य युग चेतना का संवाहक है। उनके कथा–साहित्य में युग चेतना का सर्वत्र बोलबाला है। युग के गतिशील धरातल पर जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके साहित्य की रचना करने वाले जैनेन्द्र विशिष्ट कथाकार हैं। उनके कथा–साहित्य में युग का स्वर ही सर्वाधिक मुखर है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य का पर्याप्त अध्ययन हुआ है और कई शोध–प्रबंध एवं समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं –

1. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास–रघुनाथ शंरण झालानी
2. जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा–रामरतन भटनागर
3. जैनेन्द्र–व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक–बॉके बिहारी भटनागर
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० देवराज उपाध्याय
5. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविश्लेषण–परक शैली–तात्विक अध्ययन–लक्ष्मीकांत शर्मा

6 जैनेन्द्र का जीवन दर्शन–डॉ० कुसुम कक्कड

7 जैनेन्द्र के उपन्यासों में शिल्प–ओम प्रकाश शर्मा।

8. उपन्यासकार जैनेन्द्र और उनके उपन्यास–डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव

9. उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन–डॉ० मनमोहन सहगल

इन पुस्तकों में जैनेन्द्र के रचनात्मक साहित्य का मूल्यांकन करते हुए विभिन्न महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों की ओर संकेत किया गया है। किन्तु अभी तक जैनेन्द्र की समग्र कृतियों का विवेचन करते हुए युग के सन्दर्भ में उनकी जागरूकता और प्रगतिशीलता का, अर्थात् उनकी युग चेतना का पृथक् रूप में व्यापक और सर्वांगीण विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति की दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। अध्याय एक का शीर्षक है – 'साहित्य और युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध'। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, यह बात कथा–साहित्य के सम्बन्ध में और भी अनुकूल लगती है। कथा–साहित्य मानव जीवन की निकटतम विधा है। वह मानव जीवन की धरोहर है, उसका सजीव चित्र है। मानव जीवन की आरंभिक रूपरेखा का विधान कथा–साहित्य में ही मिलता है, जिसका प्रगाढ़ सम्बन्ध युग से होता है। कथा–साहित्य में युग का सर्वांगीण रूप सुरक्षित रहता है। उसकी विवेचना कर हम युग का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। कथाकार अपनी कथा के माध्यम से अपने दर्शन एवं लक्ष्य को प्रस्तुत करता है। उसका यह दर्शन एवं लक्ष्य युग चेतना से जुड़ा होता है। कथा–साहित्य मानव–चरित्र एवं उसके यथार्थ जीवन के कार्यों की

अभिव्यंजना करने वाली विधा है। कथा—साहित्य में लेखक की निजी धारणाओं एवं इच्छाओं के साथ—साथ युग का स्वरूप भी समाया रहता है।

विश्व कथा—साहित्य का जन्म एवं विकास युग चेतना के समानान्तर ही हुआ है। कथा—साहित्य युग चेतना का संवाहक ही नहीं अपितु युग की गतिशीलता का भी चितेरा है। आज का जीवन उथल—पुथल और अन्तर्द्वन्द्व भरा है। मानव मन की जटिलताएँ बढ गयी हैं। इस कारण युग चेतना भी असाधारण हो गयी है।

कथाकार युग से प्रेरणा ग्रहण करता है तथा युग को प्रेरित भी करता है। वह जब युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, तो युग द्रष्टा की भूमिका में होता है और जब युग का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करता है तब भी वह युग द्रष्टा ही होता है। वह युग द्रष्टा और युग स्रष्टा का सम्मिलित रूप होता है। प्रस्तुत अध्याय में, कथाकार की चेतना का युग चेतना से सम्बन्ध का विवेचन किया गया है। युग चेतना का आशय, उसका महत्व, उसके विविध स्तर, परम्परा और चेतना के अन्तर्सम्बन्ध, पृष्ठभूमि और चेतना का अन्तर्सम्बन्ध, परम्परा और पृष्ठभूमि का अन्तर्सम्बन्ध तथा युग चेतना से साहित्य, और समाज के जुडाव आदि के विवेचन का प्रयास किया गया है। कथा—साहित्य में युग चेतना का क्या स्वरूप है — इस विषय का भी विवेचन किया गया है।

अध्याय दो का शीर्षक है— 'जैनेन्द्र के कथा—साहित्य मे युगीन सामाजिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथाकार और समाज के पारस्परिक संबंध का विवेचन किया गया है। मानव चेतना समाज—सापेक्ष होती है और कथा—साहित्य मानव चेतना का संवाहक होता है। साहित्य समाज निरपेक्ष नहीं हो सकता। वह जीवन की परिकल्पनात्मक अभिव्यक्ति है और उसके द्वारा जीवन के सौन्दर्यात्मक

और आनन्द पक्ष का उद्घाटन होता है। कथा–साहित्यकार सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक होता है। उसमें सर्जनात्मक चेतना प्रबल होती है। परिस्थिति–जन्य अनुभव की अमूल्य राशि को कल्पना का पुट देकर वह कला के माध्यम से उसे व्यक्त करता है, जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है; उसी तरह कथाकार युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रेरणा ग्रहण करके युग का चित्र प्रस्तुत करता है।

जैनेन्द्र का विशाल कथा–साहित्य युग का दर्पण है। जिसमें अनेक सामाजिक समस्याएँ विभिन्न रंगों में प्रतिबिम्बित होती हैं। कथाकार के लिए समाज वह आधार है, जहाँ वह स्वयं जन्म लेकर जीवन के विकासशील सोपानों पर चढ़ता हुआ, सामाजिक जीवन के स्वानुभूत चित्र प्रस्तुत करता है। जैनेन्द्र साहित्य को सामाजिक यथार्थ का दर्पण ही न मानकर उसे लोक–मंगल की कामना से जोड़ते हैं। उनके अनुसार साहित्यकार को सामाजिक यथार्थ लोक–मंगल की कामना से ही जोड़कर प्रस्तुत करना चाहिए। साहित्यकार लोक मंगल का साधक होता है।

कथा–साहित्यकार अपने को समाज से अधिकाधिक जोड़कर रखता है। जैनेन्द्र जैसे युगचेता कथाकार की सम्पूर्ण साहित्य–सर्जना युग चेतना का ही वहन करती है। जैनेन्द्र ने सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्यता को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है। उनके कथा–साहित्य में पात्र सामाजिक मान्यताओं एवं मर्यादाओं का कष्ट सहकर भी निर्वाह करते दिखाए गए हैं। जैनेन्द्र व्यक्ति–मन के कथाकार हैं, उनके कथा–साहित्य में व्यक्ति मन की स्थितियों का निष्पक्ष चित्रण हुआ है। इस चित्रण में जैनेन्द्र की सहानुभूति व्यक्ति के साथ होते हुए भी सामाजिक अवहेलना नहीं पाई जाती। वह अपने कथा–साहित्य में सामाजिक तथा पारिवारिक स्तर पर व्यक्ति के

विभिन्न रूपों का चित्रण करते हैं। सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्थाओं एवं समय और परिस्थितियों के कारण उपजी समस्याओं का भी उनके कथा–साहित्य में चित्रण हुआ है। कथाकार जैनेन्द्र के इसी सामाजिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में ब्रह्मचर्य, विवाह, प्रेम–विवाह, प्रेम और विवाह, अनमेल विवाह, विवाह–विच्छेद, मातृत्व, वेश्या का स्वरूप तथा वैधव्य आदि का विवेचन किया गया है।

अध्याय तीन का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में सांस्कृतिक–धार्मिक–आर्थिक चेतना'। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वरूप का विवेचन किया गया है। इसमें संस्कृति शब्द के अर्थ एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हुए जैनेन्द्र के कथा साहित्य में अन्तर्निहित सांस्कृतिक तत्वों का मूल्यांकन किया गया है। जैनेन्द्र का कथा–साहित्य प्राचीन और नवीन दोनों संस्कृतियों को अपने में सँजोए हुए है। पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के आगमन ने भारत में शिक्षित और अशिक्षित दो अलग–अलग सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया। ये सांस्कृतिक वर्ग नागर और ग्राम्य दो रूपों में जाने गए। जैनेन्द्र ने भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति के आगमन और उससे पड़ने वाले प्रभावों को बखूबी समझा था। वह भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे। किन्तु पश्चिम के सम्पर्क से उत्पन्न हुई नवीन चेतना का उन्होंने विरोध नहीं किया। यह नवीन चेतना विचार–स्वातंत्र्य की पक्षधर थी। जैनेन्द्र की सांस्कृतिक चेतना युग जीवन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। वह अपने कथा–साहित्य में युगीन सांस्कृतिक तत्वों को अभिव्यक्त करने में कितने सफल हुए हैं – इसी का विवेचन प्रस्तुत शोध–प्रबंध में किया गया है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में धार्मिक चेतना के अन्तर्गत जैनेन्द्र की धार्मिक दृष्टि, धर्म का अर्थ और स्वरूप, धर्म और सम्प्रदाय, धर्म और विज्ञान, धर्म और राजनीति, जीवन मे धर्मों की उपादेयता आदि का विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र ने धर्म को जीवन का आवश्यक अग माना है। मानव जीवन के सभी कार्यो की सार्थकता उसके धर्ममय होने में है। जैनेन्द्र स्वयं जैन धर्म को मानने वाले थे, फिर भी हिन्दू, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मों का सम्मान करते थे। उनके पात्र धर्म में अपनी अटूट आस्था प्रकट करते हैं। दुःखों और सघर्षों को झेलते हुए भी उनके पात्र धर्म–मार्ग से विचलित नहीं होते।

उनके अनुसार धर्म का मूल उद्‌देश्य मनुष्य को मोक्ष दिलाना है। यह मोक्ष अहं से मुक्त हुए बिना नहीं मिल सकता। धर्म जीवन का वह केन्द्र हैं जहाँ से मनुष्य अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है और अन्त भी करता है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में आर्थिक चेतना के अन्तर्गत सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का उनके कथा–साहित्य के संदर्भ में विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में आर्थिक विषमता से पीड़ित मानव अनेक रूपों में दिखाई पड़ते हैं। 'कल्याणी', 'सुखदा', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर' और 'अनामस्वामी' में उन्होंने आर्थिक वैषम्य का विशद् चित्रण किया है।

जैनेन्द्र ने समाज के स्तर को बढ़ाने के लिए मानवीय मूल्यों को विशेष महत्व दिया। उनका कहना था कि ये मानवीय मूल्य अमीरी के प्रति व्यर्थ के गर्व को समाप्त करके ही स्थापित हो सकते हैं। उन्होंने मनुष्य की अवहेलना और अर्थ के सत्कार को लेकर गहरा दुःख व्यक्त किया। अर्थ की शक्ति ने ही गरीब और अमीर में भेद उत्पन्न किया, जिससे मनुष्य मनुष्य को पहचानने में असमर्थ है।

अपने कथा–साहित्य में जैनेन्द्र पूँजीपतियों के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त करते हैं। वह समाज में उत्पन्न आर्थिक विषमता का मूल दायित्व पूँजीपतियों पर ही मानते हैं। उन्होंने अपने पात्रों द्वारा पूँजीपतियों के विरूद्ध हिंसात्मक आक्रोश को भी व्यक्त किया है। प्रस्तुत अध्याय में जैनेन्द्र की आर्थिक दृष्टि, अर्थ और मानव का सम्बन्ध तथा उनकी पूँजीवादी दृष्टि का विवेचन किया गया है।

अध्याय चार का शीर्षक है– 'जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दार्शनिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथा–साहित्य और दार्शनिक चेतना का अन्तर्सम्बन्ध, जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना का स्वरूप, नियतिवादी दार्शनिक चेतना, आस्थामूलक भाग्यवादिता, निष्काम कर्मयोग, पुनर्जन्म, मृत्यु और अमरत्व आदि का जैनेन्द्र के कथा–साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है।

दर्शन और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। दर्शन जीवन और जगत् के रहस्यों का उद्घाटन करता है और साहित्यकार भी यही करता है। परन्तु दोनों की क्रियाएँ भिन्न–भिन्न हैं। साहित्य में अन्तर्दृष्टि के माध्यम से जीवन के विविध रूपों की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। एक सफल साहित्यकार जीवन और दर्शन–दोनों का समन्वित रूप अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है।

जैनेन्द्र आस्थावादी कथाकार हैं। उनके कथा–साहित्य में जो दार्शनिकता दृष्टिगत होती है, उसमें उनकी आस्था की हार्दिकता ही अन्तर्भूत है। उनके कथा–साहित्य का प्रमुख आदर्श सत्य का साक्षात्कार करना रहा है। सत्य आत्मतत्व है। दर्शन का उद्देश्य सत्य के प्रति व्यक्ति की जिज्ञासा को शांत करना है। इसी दार्शनिक सत्य को जैनेन्द्र अपने कथा–साहित्य में उतारते हैं। जैनेन्द्र के अनुसार जीवन संघर्ष–पूर्ण यात्रा है। मनुष्य अपने भाग्य और परिस्थिति से जूझता हुआ अपनी जीवन–यात्रा को पूर्ण करने का प्रयास करता है।

इस जीवन–यात्रा में आए अवरोधों को दूर करने का उपाय दर्शन ही बताता है।

जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना उनकी कृतियों में नारी–पुरुष सम्बन्धों, अन्तः–बाह्य परिवेशों आदि के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने आत्मानुभूत सत्य का प्रकटीकरण अपने कथा–साहित्य के माध्यम से किया है।

अध्याय पाँच का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथा–साहित्य और मनोविज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध पुरुष पात्रों के माध्यम से व्यक्त जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक चेतना तथा नारी पात्रों के माध्यम से व्यक्त जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक चेतना का विवेचन किया गया है।

मनोविज्ञान के प्रवेश ने साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। मनोविज्ञान से सबसे अधिक प्रभाव कथा–साहित्य ने ग्रहण किया। जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में मनोविज्ञान का प्रभाव प्रत्यक्ष है। उनके पात्र मनोवैज्ञानिक दर्शन की अभिव्यक्ति करते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण उनके कथा–साहित्य में मिलते हैं।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता है। उनके पात्र व्यक्तिपरक हैं। उनका मूल्यांकन, उनकी निजी चिन्तन पद्धति और उनकी निजी परिस्थितियों तथा अलग प्रकार के आचरण पर आधारित है।

अध्याय छः का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में शिल्पगत चेतना'। इसके अन्तर्गत कला और शिल्प तथा युगचेतना के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन करते हुए कला का स्वरूप, साहित्य में शिल्प–प्रयोग तथा उसका आशय, जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में

शिल्पगत चेतना के विविध तत्वों का विवेचन किया गया है। साहित्य में कला और शिल्प दोनों का समान आदर है। कोई भी कला युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक गतिविधियों से जुड़ी होती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ मानव की अभिरुचि और सौन्दर्य–चेतना में परिवर्तन होता रहा है। सौन्दर्य–चेतना कला की जननी है। अतः युग चेतना कला और शिल्प सापेक्ष होती है।

साहित्यिक कला के संदर्भ में शिल्प का अर्थ बहुत व्यापक है। शिल्प विधि भी है और विधान भी। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपाय–विधियाँ–प्रविधियॉ, क्रियाऍ–प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा कलाकार सौन्दर्य की सृष्टि करता है। शिल्प विषय और अनुभूति को विशेष प्रकार से अभिव्यक्त करने का साधन है।

जैनेन्द्र कुमार ने अपने कथा–साहित्य में परम्परा से चले आ रहे शिल्प–विधान को एक नया आयाम दिया। शिल्प के सम्बन्ध में उन्होंने स्वतंत्रता पूर्वक काम लिया। उन्होंने शिल्प को इतना सजीव बना दिया कि पाठक की कल्पना–शक्ति जाग्रत हो उठी। चाहे पात्रों का चरित्र–चित्रण हो या कथा का वर्णन, उन्होंने भाषा और शिल्प के स्तर पर बडी सूझ–बूझ से काम लिया। उनके कथा साहित्य में शिल्प–प्रयोग के विविध रूप मिलते हैं। एक तरह से शिल्प–वैशिष्ट्य ही उन्हें अपने समकालीन कथाकारों से अलग एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। उनके शिल्प में प्रौढता के दर्शन होते हैं। इस अध्याय में उनके शिल्प–प्रयोग की विविधता का उनके कथा–साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है और यह भी विवेचन किया गया है कि उनकी शिल्पगत चेतना कहाँ तक युग–चेतना–सापेक्ष है।

उपसंहार में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के निष्कर्षों का समाकलन करते हुए जैनेन्द्र की युग चेतना का मूल्यांकन किया गया है। इसके अन्तर्गत यह मूल्यांकन किया गया है कि जैनेन्द्र का कथा–साहित्य

उनकी युग चेतना का प्रतिफल है। उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं रचना सम्बन्धी शिल्पगत प्रयोगों एवं अवधारणाओं का भी मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध से यदि जैनेन्द्र के कथा–साहित्य और उनकी युग चेतना का स्वरूप स्पष्ट हो सका, तो शोधकर्त्ता का प्रयास सार्थक होगा, इसी प्रत्याशा में यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत है।

अजय प्रताप सिंह

दिनांक: 19.12.2002 **(अजय प्रताप सिंह)**

अध्याय–1

साहित्य और युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध

अध्याय–1

साहित्य और युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध

युग चेतना

'चेतना' शब्द अपने आप में बड़ा व्यापक अर्थ रखता है। यह 'बोध' या 'चैत्य' का समानार्थी माना जा सकता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में 'चेतना' को परिभाषित करते हुए लिखा गया है–

'चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान। चेतना की परिभाषा कठिन है, पर इसका वर्णन हो सकता है। चेतना की प्रमुख विशेषता है– निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह, इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव–वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविछिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से। विभिन्न विषयों की अलग–अलग समय पर चेतना होने पर हम सदा यह भी अनुभव करते है। कि 'मैंने अमुक वस्तु देखी थी।' यह हमारी चेतना अखण्ड और अविच्छिन्न न होती तो यह अनुभव हमें न होता। लेकिन यह अखण्डता और अविच्छिन्नता साहचर्य से ही सम्भव होती है। विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं में साहचर्य (अथवा आसंग) के द्वारा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है कि वे मिलकर एक चेतना का अंग बन जाती हैं। मानसिक संघर्ष, अत्यधिक दमन और भावात्मक आघातों से ये साहचर्य नष्ट भी हो जाते हैं। तब चेतना भी बिखरी –बिखरी सी हो जाती है और व्यक्तित्व खण्डित । चेतना में साहचर्य नष्ट होने की अनेक मात्राएँ हो सकती हैं, यदि कम मात्रा में हो तो कोई विशेष

व्यवहार, कोई विशेष मानसिक क्रिया सम्पूर्ण चेतना से वियोजित हो जाती है, पर व्यक्तित्व के लिए गम्भीर समस्या नहीं उठती। पर यदि अधिक मात्रा में हो तो बहुव्यक्तित्व, खण्डित–व्यक्तित्व आदि रोग हो जाते हैं।[1]

'चेतना' शब्द का उपयोग प्रायः उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक अर्थ में होता हैं, पर कभी–कभी इसका प्रयोग दार्शनिक अर्थ में भी हो सकता है। विज्ञानवादी और प्रत्ययवादी दार्शनिक चेतना या विज्ञान को शाश्वत और एकमात्र सत्ता मानते हैं। इस अर्थ में 'चेतना' शब्द 'आत्मा' का समानार्थक हो जाता है, परन्तु साहित्य में और दर्शन में भी इस अर्थ में प्रायः 'चैतन्य' शब्द का प्रायोग किया जाता है। 'चेतना 'शब्द सामान्य मनोवैज्ञानिक अर्थ में ही अधिक आता है।

चेतना की मुख्य विशेषता है–लगातार परिर्वतनशीलता अथवा वेग के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। इसी सन्दर्भ में डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं–

'चेतना' स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। किसी विशेष युग की अपनी मौलिक चेतना हुआ करती है जो युगों के परिवर्तन के साथ–साथ अपने कलेवर को भी परिवर्तित किया करती है। साहित्य में युग की परिस्थितियाँ और समाज की चित्रवृत्तियॉ प्रतिबिम्बित हुआ करती हैं।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 सम्पादक डॉ०– धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 247
2. डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी–हिन्दी विश्व कोश, पृष्ठ – 282

युग चेतना को हम अवधि की सीमा, विशेष की सीमा और जगह की सीमा से बाँध नहीं सकते, बल्कि इसमें लगातार परिवर्तन होता रहता है। समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म तथा विज्ञान आदि का स्वरुप जिस युग में जैसा रहता है, उसे ठीक उसी रुप में ग्रहण कर अभिव्यक्ति करना कथाकार के साहित्य की युग चेतना कही जाती है। डॉ० पन्ना द्विवेदी के शब्दों में—

'युग भावनाओं की अभिव्यंजना साहित्य में युग चेतना की संज्ञा पाती है।[3]

'युग चेतना' युग के शुभ, सत्य तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवृत्तियों की जानने की क्षमता है, जो इससे अवगत कराती है कि उचित क्या है और अनुचित क्या है। साधारण व्यक्ति परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता, न प्रभाव ही ग्रहण कर पाता है, परन्तु साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हो अपनी साहित्यिक चेतना के माध्यम से उस युग को अपने कथा साहित्य में व्यक्त कर देता है। चेतना स्वयं में एक स्वतन्त्र अस्तित्व का अनुभव करती है।

मनोविज्ञान के अनुसार—चेतना मनुष्य में उपस्थित वह महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके कारण उसे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इस तत्व के बिना मनुष्य संवेगहीन हो जाता है और वह जीवन की अनुभूतियों से वंचित भी हो जाता है। अनुभूतियों के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं। वह पशु की भाँति हो जाता है। इसे अनुभव कहा जाता है। यह एक आन्तरिक क्रिया होती है। जो बाह्य परिणामों की प्रतिक्रिया स्वरुप उत्पन्न होती है।

---

3 डॉ० पन्ना द्विवेदी — दिनकर के काव्य में युगीन चेतना, पृष्ठ — 3

सुख–दुःख की अनुभूतियाँ चेतना की देन हैं, जिनकी उत्पत्ति बाह्य परिस्थितियों के माध्यम से हुआ करती है। साहित्यिक क्षेत्र में अनुभूतियों का अत्यधिक महत्व है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में विचार व्यक्त किया गया है–साहित्य क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों का वर्णन हुआ है– इसमें काव्यानुभूति, रसानुभूति, भावनानुभूति, लौकिकानुभूति, विलक्षणानुभूति, रहस्यानुभूति, दिव्यानुभूति, प्रत्यज्ञानुभूति, समानानुभूति, सहानुभूति तथा सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती है।[4]

चेतना एक ऐसा साधन है जिसके कारण ही हम देखते, सुनते, समझते एवं अनेक विषयों पर चिन्तन करते है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने मत का प्रतिपादन निम्नांकित शब्दों में किया है –

'चेतना का प्रवाह जीवन का द्योतक है। 'अहं' इस चेतना की अभिव्यक्ति है। एक ओर यदि चेतना जीवन के भार को वहन करती है, तो दूसरी ओर वह जीवन के प्रसंग में सक्रिय भाग लेती हैं।[5]

सक्रिय भाग का अर्थ निष्क्रियता नहीं है और न ही उसका उद्देश्य यह है कि चेतना उर्ध्वमुखी हो, अर्न्तमुखी न हो।

चेतना और मानव – चरित्र में मौलिक सम्बन्ध होता है तथा उसमें एक विशेष गुण है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण चरित्र संगठित रहता है और जीने की वास्तविक अभिव्यक्ति के साथ – साथ उसके विभिन्न कार्य सम्पादित होते रहते हैं। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी के शब्दों में –

'किसी मनुष्य की चेतना और चरित्र केवल उसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होते, यह बहुत दिनों के सामाजिक प्रक्रम के परिणाम होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम को स्वयं प्रस्तुत करता है।

---

4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, संपादक – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 27
5 श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा – नई कविता के प्रतिमान – 224

वह विशेष प्रकार के संस्कार पैतृक सम्पत्ति के रुप में पाता है। वह इतिहास को स्वयं में निरुपित करता है, क्योंकि उसने जीवन में अनेक प्रकार की शिक्षा तथा प्रशिक्षण को प्राप्त किया है। इसके अलावा वह अन्य लोगों को भी अपने माध्यम में निरुपित करता है, क्योंकि उनका प्रभाव उसके जीवन पर उनके उपदेश तथा उदाहरण के माध्यम से पडा है।[6]

मानवीय चेतना में ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक चेतना का समावेश होता है। वह मनुष्य की विशिष्टता है जो उसे वातावरण के बारे में ज्ञान कराती है। इस प्रकार के ज्ञान को विचार शक्ति कहा जाता हैं। मनुष्य की सभी क्रियाओं में गतिशील प्रवृत्तियों का प्रमुख कारण चेतना ही है। चेतना की प्रगति सामाजिक वातावरण के साथ होती है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता और व्यवहार–कुशलता प्राप्त करता है। यह चेतना का विकास कहा जाता है। समय की गतिशील पृष्ठभूमि पर साहित्यकार की बदलती अनुभूतियों को युग चेतना के नाम से विभूषित किया जाता है। विकास की चरम सीमा में चेतना स्वतन्त्रता की अनूभूति करती है। वह सामाजिक बातों को प्रभावित कर सकती है और उनसे स्वयं प्रभावित भी होती है, परन्तु इस प्रभाव से वह अपने को अलग भी कर सकती है। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने चेतना की इस प्रकार की अनूभूति को शुद्ध चैतन्य माना है।[7] साहित्यकार सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्वरुप से प्रभावित होता है ओर उसे उसी में प्राप्त कर साहित्यिक स्वरुप प्रदान करता है। यही साहित्यिक स्वरुप युगचेतना का साहित्य कहा जाता है, और यदि कवि है तो उसका काव्य युगचेतना का काव्य कहलाता है। साहित्यकार, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में मानव – जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है।

---

6 डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्व कोश, भाग–4, पृष्ठ – 182
7 डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्वकोश भाग–4, पृष्ठ – 283

मानव–जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते समय भावुक ह्दय दो प्रकार से उत्प्रेरित होता है–प्रथम तो उसके हृदय पर मानव–जीवन की घटनाएँ यथार्थ रूप में उतर आती है, जिन्हें वह कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। द्वितीय वह है, जब साहित्यकार घटनाओं के क्रियात्मक रूप से प्रेरित नहीं होता, अपितु उनके प्रति उसके हृदय में प्रतिक्रिया होती है और उनकी आलोचना–प्रत्यालोचना करता हुआ एक अभिनव भावी मार्ग की ओर अग्रसर होकर युग जीवन को आदर्श की ओर ले जाने का भावनात्मक प्रयत्न करता है। ऐसी रचनाओं को युग–प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिनमें युग चेतना के प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी देते हैं तथा इनकी प्रेरणाएँ युगीन तो होती ही हैं, साथ ही उनमें भावी युग के नवनिर्माण का सन्देश भी होता है।

युगचेतना की महत्ता

साहित्य में युग चेतना का अपना विशिष्ट स्थान है। युग का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्यकार युगीन चेतना को अनिवार्य रूप से स्वीकार करता है। युग चेतना के अभाव में वह मानव–जीवन की वास्तविक समस्याओं को न तो पहचान सकता है और न ही जीवन की यथार्थ समस्याओं से समाज को अवगत करा सकता है और न ही उसे उचित दिशा–निर्देश करा सकता है।

साहित्यकार का परम कर्तव्य हो जाता है कि वह केवल व्यक्ति के दृष्टि–कोण को ही महत्व न दे, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण की सूक्ष्मता से निरीक्षण करे। साहित्य जो समष्टिगत चेतना की देन होती है, उसमें युगचेतना संश्लिष्ट होती है। डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के शब्दों में हम कह सकते हैं–

'चेतना जो अनुभूतियों की जननी है वह साहित्यात्मा है तो युग चेतना उसके आलोकमय नेत्र हैं, जिनसे वह सारे संसार का सौन्दर्य आत्मसात् करता है।[8]

साहित्य चेतना के अभाव में निर्जीव हो जाता है तथा युग चेतना के अभाव में अंधा, जो न वर्तमान के बारे में कुछ कह सकता है और न भविष्य के बारें में कुछ देख सकता है।

युग चेतना और उसके विविध स्तर

किसी भी साहित्य के निर्माण में समसामयिक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है। ये परिस्थितियाँ तत्कालीन जन–जीवन की आशा और आकांक्षाओं का दर्पण होती हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं नियन्त्रण के विभिन्न रूप युगचेतना के द्वारा सृजित साहित्य में मिलते हैं। किसी युग विशेष के साहित्य का अध्ययन उस युग विशेष की परिस्थितियों का दर्पण होता है। अतः उससे हम उस युग के तत्कालीन जीवन को भली–भाँति समझ सकते है, जो नैतिक मूल्य तत्कालीन समाज के लिए आवश्यक थे, लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में मात्र रूढ़ि बनकर रह गये हैं। ऐसे मूल्यों को साहित्यकार अपने साहित्य में रचना नही करता है, बल्कि युगानुकूल नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है। जिस साहित्यिक कृति में युग द्रष्टा एवं युग सृष्टा दोनों का समन्वय पाया जाता है, वह युग–साहित्य के नाम से पुकारा जाता है। युग चेतना से न तो साहित्यकार ही अपने को अलग कर पाता है न साहित्य ही, अर्थात् दोनों पर युग चेतना का प्रभाव रहता है। साहित्यकार युग चेतना से अपने साहित्य को अलग कर

---

8. डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल–भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों मे 'युग चेतना', पृष्ठ –9

कल्पना–लोक का सहारा लेकर समाज को कुछ समय के लिए आनन्दानुभूति करा सकता है। लेकिन स्थायी अलौकिक आनन्द नहीं दे सकता। इस प्रकार के साहित्य, कुछ समय भले ही अपना अस्तित्व बनाये रख सकें लेकिन कालान्तर में उनका कोई साहित्यिक मूल्य न होगा और न ही वह शाश्वत मूल्यों की अमिट छाप छोड़ने मे समर्थ हो सकेगा । युग और मान्यताओं के साथ–साथ युगचेतना भी स्वाभाविक रूप सें अपना स्वरूप बदलती रहती है। हर एक भावी युग की युगचेतना वर्तमान से अलग नये रूप में आती है। युगचेतना का क्षेत्र इतना बडा होता है कि उसे सर्वांगीण रुप से साहित्य से जोड़ पाना किसी साहित्यकार के लिए कठिन है। फिर भी साहित्य में युगचेतना की अभिव्यंजना सरलतापूर्वक ही हो सकती है क्योंकि साहित्यकार यथार्थ जगत का यथार्थदर्शी होता है।

प्रत्येक युग की अभिव्यक्ति का माध्यम अलग–अलग हुआ करता है। परम्परागत शिल्प की भले ही पुनरावृत्ति हो परन्तु भाव और अभिनव में मौलिक भेद परिलक्षित होता है। कभी–कभी तो प्रत्येक युग की भावविभूतियाँ अपने अतीत से इतना अधिक अलग होती हैं कि जिनके कारण भावाभिव्यक्ति की कला भी परिवर्तित दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार हर युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर युग चेतना का परिवर्तन सहज एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है और उसके प्रभाव से साहित्य अपने को अलग नहीं रख पाता है अर्थात् पूरी तरह से प्रभावित होता है।

परम्परा और चेतना

परम्परा अत्यन्त व्यापक शब्द है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इसका सम्बन्ध हैं। धर्मशास्त्र, दर्शन, विज्ञान, व्यवहार, कला, समाज साहित्य के क्षेत्र में परम्पराओं के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। परम्परा

में स्वीकार की हुई विधियों, प्रथाओं तथा प्रणालियों का अनुसरण तो होता ही है, साथ ही पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओं की अभिव्यक्ति भी होती है। सामाजिक जीवन की समस्त बातें एवं व्यवहार परम्परा के क्षेत्र में आते हैं, जिनको पीढ़ियों से समाज ग्रहण करता चला आ रहा है। साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यों, आदर्शों, रीतियों, प्रथाओं, प्रणालियों एवं स्थापनाओं को अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से उत्तराधिकार कें रूप में प्राप्त करता है। साहित्य के क्षेत्र में इन्हें ही परम्परा नाम से जाना जाता है। इन परम्पराओं के निर्धारण में तत्कालीन साहित्यकार को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता बल्कि वे स्वतः ही साहित्य में प्रचलित हो जाते हैं। साहित्य में इन बातों का वर्णन गतानुगतिक न्याय से चलता रहता है, उसके लिए किसी भी शास्त्रीय विधान की आवश्यकता नहीं होती। सफल से सफल साहित्यकार भी इसे अपने साहित्य में सर्वप्रथम स्थान देते हैं। परम्पराओं की परिवर्तनशीलता उनका अस्तित्व बनाये रखती है और स्थिरता पतन का कारण बनती है। टी० एस० इलियट के अनुसार –

'परम्परा मूलतः रूढिवादी सैद्धान्तिक विश्वासों की मान्यता नहीं होती, अपितु परम्परा का निर्माण जीवन्त विश्वासो में होता है।[9]

मैथ्यू अर्नाल्ड ने कवि के तीन साधन स्वीकर किए हैं—भाव, भाषा एवं वस्तु।[10] साहित्य—क्षेत्र की समस्त मान्यताओं का आधार ही विश्वास और भ्रान्ति पर निर्मित है। मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को शब्दों द्वारा प्रकट करता है। शब्द और ध्वनि संकेत मात्र हैं। ध्वनि से जिस वस्तु का बोध होता है, शब्द का उसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। शब्द द्वारा अर्थ कल्पित होता है। विभिन्न शब्दों

---

9. TRADITION is not solely, or even primarily the maintenance of certain dagmatic beliefs, these beliefs here come to take their living form in the course of the formation of a tradition. (Selected Prose of T. S. ELIOT Edited by John Hayword, Page-20)

10. जॉन लिबिग्सटन – कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री, पृष्ठ–10

द्वारा प्रकट अर्थों का रूप दीर्घकालीन सार्वजनिक मान्यता है। डॉ० प्रभाकर माचवे परम्परा का अर्थ परिपाटी से लेते हुए, उसे रूढ़ि का परिचायक मानते हैं। परम्परा परिपाटी तो अवश्य है, रूढ़ि नहीं, क्योंकि विभिन्न रूपों में लकीर पीटने वाली दार्शनिक विधि नहीं है। साहित्य में जिसे ट्रेडिशन कहते है, वह रूढ़ि नही है। परम्परायें विकासशील युग के साथ विकसित हो नवीन में घुल–मिल जाती हैं और उनका अवशेषांश जो काई की तरह सड़ने लगता है उसे रूढ़ि कहते है।[11] 'ट्रेडिशन' एवं रूढ़ि के आधार पर बने 'वाद' को ट्रेडिशनलिज्म या रूढिवाद कहते हैं। इस प्रकार प्राचीन सभ्यता से जो पूर्ण प्रवाह निकलकर आया, जिसने साहित्य को रूप तथा एकान्वित प्रदान की है, वही आदर्श परम्परा है।

परम्परा की जड़ें पर्याप्त गहराई में होती हैं, जिन्हें समय का चक्र विनष्ट नहीं कर सकता है। मानव और परम्पराओं का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। साहित्य और मनुष्य का भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।।अतः साहित्य भी परम्पराओं से अछूता नहीं रह सकता। इतना अवश्य है कि परिस्थितियों से प्रभावित होकर परम्पराओं के मूल रूप में कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है। साहित्य में औचित्य मर्यादा एवं पूर्ववर्ती परिपाटी आदि को सुरक्षित रखने के लिए निर्विवाद रूप से परम्पराओं का अपना विशेष महत्व है।

पृष्ठभूमि और चेतना

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है, जिसमें युगीन परिस्थितियों का अवलोकन किया जा सकता है। पृष्ठभूमि प्रतिबिम्ब की वह शक्ति है जिसमें बिम्ब–विधान परिलक्षित होता है। पृष्ठभूमि में

---

11. गिलवर्ट मरे – दि क्लासिकल ट्रेडिशन इन पोयट्री, पृष्ठ – 5

युग अपने वैभव के साथ आसीन होता है। वह एक आधार है, जिसके सहारे साहित्यकार युग से परिचित होता है। परिस्थितियाँ देश–काल में परिर्वतन उत्पन्न करती हैं। राष्ट्र की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक दशाओं में एक अमूल्य परिर्वतन होता है, जिससे पुरानी परम्पराएँ विनष्ट होती हैं और उसके स्थान पर वर्तमान के अनुसार उपयोगी–अनुपयोगी युगीन परिस्थितियाँ युग–पृष्ठभूमि बन जाती हैं। तत्कालीन जग–जीवन को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि से परिचित होना नितान्त उपयोगी है। परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि का प्राणतत्व होती हैं, उनके बदलने से युगान्त उपस्थित होता है और नवीन युग का आरम्भ होता है।

अतः साहित्यकार के लिए युग–पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण उपादान है, क्योंकि परिवर्तनशील जग–जीवन सामाजिक व्यवस्थाओं के बदलने से परिवर्तित हो जाया करता है। कोई भी साहित्य समीक्षक पृष्ठभूमि के बिना साहित्य और साहित्यकार का मूल्यांकन नहीं कर सकता है। पृष्ठभूमि ने व्यक्ति एवं समूह के पारस्परिक सम्पर्क सम्बन्धों को लेकर अनेक युगान्तकारी प्रश्नों से आज की युगचेतना को प्रभावित किया है, जिसके कारण अनेक मौलिक उद्भावनायें एवं समस्याओं का जन्म हुआ है। पृष्ठभूमि के बिना युग–बोध की कल्पना नहीं की जा सकती है। युग बोध सात्यिकार की प्राण शक्ति है तथा उसके अभाव में न तो उसका कोई अस्तित्व ही है और न वह साहित्य सर्जना ही कर सकता है। किसी भी युग की पृष्ठभूमि उस युग की जन्मदात्री हुआ करती है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि युग पृष्ठभूमि में समाया होता है और पृष्ठभूमि युग में। साहित्य संगीत तथा ललित कलाओं का मूल्यांकन युगीन पृष्ठभूमि के बिना नहीं किया जा सकता है। पृष्ठभूमि युग की जीती–जागती झाँकी प्रस्तुत करती है, जिससे युग विशेष के यथार्थ स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। किसी साहित्यकार, वैज्ञानिक, संगीतकार, एवं दार्शनिक के निर्माण मे युगीन

पृष्ठभूमि की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पृष्ठभूमि सदैव वर्तमान से जुड़ी होती है। प्रत्येक आने वाला और विगत अपने समय का वर्तमान है और उस वर्तमान के साथ पृष्ठभूमि जुडी रहती है। गतिशील समाज में पृष्ठभूमि में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

साहित्यकार एक प्रयोगवादी व्यक्ति होता है, अतएव वह युगीन पृष्ठभूमि के अनुसार अपने प्रयोग क्रियान्वित करता है। वह साहित्य में पृष्ठभूमि के अनुसार अपने प्रयोग क्रियान्वित करता है। वह साहित्य में नवीन प्रयोग पृष्ठभूमि के प्रति जागरूक होकर करता है। साहित्यकार का सबसे बड़ा दायित्व यह है कि वह पृष्ठभूमि के प्रति ईमानदार हो तथा जनजीवन का यथार्थ चित्रण युग के अनुकूल प्रस्तुत करें। सफल साहित्यकार युग–चितेरा होता है। वह किसी भी अवस्था में युग की पृष्ठभूमि की अवहेलना नहीं कर सकता । इस प्रकार युग चेतना और पृष्ठभूमि में घनिष्ठ सम्बंध है।

परम्परा और पृष्ठभूमि

परम्परा और पृष्ठभूमि एक दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी एक दूसरे से पृथक हैं। परम्पराओं का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि पृष्ठभूमि का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। परम्पराओं की नींव प्राचीन मान्यताओं पर टिकी होती है, जीर्ण–शीर्ण परम्परायें विनष्ट होती हैं और उनके स्थान पर नवीन परम्पराओं का सृजन होता है। इस प्रकार परम्परा जब रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लेती है, तो उसका साथ युगीन परिस्थितियों से अलग हो जाता है। ऐसी रूढ़ियों से जकड़ा हुआ साहित्य प्राणविहीन एवं असत्य हो जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है –

'संस्कृति, परम्परा और इतिहास जब लम्बे सम्बद्ध होते हैं, तो दमघोंटू बन जाते हैं और वर्तमान को ठीक से सांस नही लेने देते । ऐसी स्थिति में जीवन गत परिस्थितियों से प्रसूत प्रेरणा क्रान्ति करती है और परम्परा के स्रोत में अभिनव परिवर्तन आ जाता है।'[12]

परम्परा का सम्बन्ध अतीत से होता है तथा पृष्ठभूमि का वर्तमान से। किन्तु अतीत और वर्तमान, प्राचीन और नवीन सापेक्षता में देखे जा सकते है। कर्तव्य और अधिकार की भाँति परम्परा और पृष्ठभूमि में अनिवार्य सम्बन्ध है।[13] कर्तव्य से मुक्ति मिलना कठिन है, अधिकार का आभास तब होता है, जब उसका प्रयोग किया जाय। कर्तव्य के माध्यम से ही अधिकार प्राप्त होता है, इसी तरह परम्परा के आधार पर ही पृष्ठभूमि निर्मित हुआ करती है। पृष्ठभूमि के अनुसार परम्पराएँ परिवर्तनशील होती हैं तथा प्रत्येक वर्तमान अपने भूतकाल का परिणाम हुआ करता है। परम्परा आदर्शोन्मुखी होती है और पृष्ठभूमि यथार्थोन्मुखी होती है—इन दोनों पृथक—पृथक धाराओं का संगम उस समय होता है, जब परम्परा परिस्थिति से प्रभावित होती है। परम्परा को पृष्ठभूमि से समझौता करना पड़ता है और यह युग प्रतिनिधि साहित्यकार के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

परम्परा और पृष्ठभूमि के बिना साहित्य का अपना अस्तित्व संदिग्ध बना रहता है। अतः वह न तो परम्पराओं की उपेक्षा कर सकता है और न ही पृष्ठभूमि से अपना सम्बन्ध अलग कर सकता है। साहित्य मानव—जीवन एवं उसके अनुभव की छवि है, किन्तु उसकी अविरल भावधारा औचित्य की सीमा को लाँघ जाती है। जीवन और जगत का सत्य विभिन्न रूप धारण कर साहित्य में साकार रूप से अभिव्यक्त होता है। राजनैतिक, समाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं

---

12. डॉ० रामधारी सिह दिनकर – साहित्यमुखी, पृष्ठ – 11
13. गोपाल दत्त सारस्वत – आधुनिक काव्य परम्परा तथा प्रयोग, पृष्ठ – 11

सांस्कृतिक नीरस सिद्धान्त साहित्य के अंग बनकर प्रस्तुत होते हैं एवं उनकी नीरसता का इसमें परिहार हो जाता है। डॉ० प्रभाकर माचवे के शब्दों में –

'परम्परा के कुछ अंश जीवित रहते हैं जो कि सप्राण नवीनतम में घुल–मिल जाते हैं, जबकि परम्परा का बहुत सा हिस्सा काई की तरह सड़ जाता हैं।[14] परम्परा का जीवित अंश ही युग के साथ जुडा होता है, शेष नष्ट होकर अस्तित्वविहीन हो जाता है। परम्परा का वह अंश जो युग से सम्बन्ध स्थापित कर पृष्ठभूमि की भूमिका बनाता है, वह परवर्ती साहित्यकारों को मार्ग दिखाता है।

कला की शाश्वत धारा परस्पर–विरोधी मार्गों से बहती है। कभी तो वह परम्परा के आधार को स्वीकार करती है और कभी मुक्त होकर क्रान्तिकारिणी हो जाती है। यह मानव–स्वभाव की विशेषता है कि कभी उसे प्राचीन प्रवृत्तियों के अनुकूल चलना प्रिय लगता है और कभी वह दोनों को अपनाकर समन्वय करता है और इसी में उसे आनन्द आता है।[15] युग की परिस्थितियाँ साहित्य की दिशा में परिवर्तन लाती हैं। राष्ट्र की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक क्रान्तियाँ प्राचीन परम्पराओं को नष्ट कर नवीन पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। प्राचीन साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य के अनुशीलन से मालूम होता है कि परम्पराएँ पृष्ठभूमि को बदल देती हैं और पृष्ठभूमि युगचेतना को जन्म देती है। साहित्य में मानव जीवन तथा उसके व्यापक अनुभवों को युग सापेक्ष्य चित्रित करने की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। डॉ० सुषमा धवन के अनुसार– 'साहित्य–सृजन'

---

14. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2, सम्पादक – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 477
15. जॉन लिविंग्सटन – कन्वेशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री, पृष्ठ – 87

की प्रेरणा आदि काल से व्यक्ति समाज में सन्तुलन एवं सामंजस्य की समस्या तथा उसके परिवर्तनशील सम्बन्धों से होती है।[16]

इस प्रकार जीवन को आँकने के लिए मुख्यतया दो प्रवृत्तियों का सहारा लिया गया है — एक का सम्बन्ध वैयक्तिक हित से और दूसरी का सामाजिक कल्याण की भावना से जुडा हुआ है।

सामाजिक क्रान्तियों के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्राचीन परम्पराओं का विनाश और नवीन चेतना का विकास होता है। जब प्राचीन परम्परायें युग के अनुकूल महत्वपूर्ण नहीं रह जाती, तब नवीन परम्पराओं का जन्म होता है। उस समय साहित्य और सामाज एक नवीन दिशा में मोड़ लेते हैं। युग चेता. साहित्यकार अपने युग का कुशल साहित्य सर्जक एवं युग का सफल निर्माता होता है। उसकी प्रमुख विकासोन्मुख चेतना बँधी—बँधायी सारणियों एवं परम्पराओं से जुडकर नहीं बँधना चाहती है। वह नवीनता में विश्वास रखता है तथा परम्पराओं से विद्रोह करके नवीन मार्ग का यात्री बनने के लिए व्याकुल हो जाता है। आधुनिक युग के अनेक 'वाद' विकासशील युग चेतना के परिणाम हैं। यह सब परम्पराओं का विद्रोह है जो कई युगों तक चलता रहता है। कोई भी साहित्य परम्परा से बिल्कुल अलग नहीं हो पाता है। नवीन जीवन एवं परिस्थितियों के परिवर्तित हुए परिवेश में एक तरफ तो वह परम्परा से सामन्जस्य रखता है और दूसरी तरफ नवीन मित्र का साथ निभाने के लिये सामयिक परिस्थितियों का प्रायोजन करता है।

परम्परा और पृष्ठभूमि सरिता के दो कूलों की तरह हैं जिसकी मर्यादा में बंधकर वह अविरल गति से प्रवाहमान रहती है। जिस प्रकार दो कूल कभी एक दूसरे से मिलते नहीं, वे मौन रहकर

16. डॉ० सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ—3

सरिता के जल को सहेजे रहते हैं। यदि उनमें से कोई एक कूल टूट जाय तो सरिता अपनी सहज–स्वाभाविक गति खो देगी। एक युगचेता साहित्यकार अपनी रचना को सरिता के जल की तरह परम्परा और पृष्ठभूमि रूपी दो कूलों के बीच प्रवाहमान रखता है।

युग–प्रतिनिधि साहित्यकार जहाँ अतीत से कुछ ग्रहण करता है वहीं वह वर्तमान के प्रति सजग अवश्य रहता है। परम्परायें वर्तमान मे कथाकार को न केवल प्रेरणा एवं पथ निर्दिष्ट करती हैं बल्कि युग के प्रति उदार नवीन आशाओं की अद्‌भुत शक्ति प्रदान करती हैं। इस सम्बन्ध में जान लिविंग्स्टन के विचार द्रष्टव्य हैं–

'हम लोग नवीन वस्तु के लिए अवश्य उत्सुक रहते हैं, किन्तु हमारा यह भी आग्रह रहता है कि जो परिचित है तथा जो अपना है, उससे भी सम्बन्ध अवश्य बना रहे। हम पुराने को चाहते तो हैं, परन्तु वह किसी न किसी रूप में नया अवश्य प्रतीत हो।[17]

इस प्रकार हम सदैव यह प्रयत्न करते हैं कि नवीन से नवीन वस्तु प्राप्त करें, किन्तु पुरानी खोकर नहीं वरन् पुरानी के साथ नवीन का समझौता कर और नवीनपन लाने के लिए करते हैं। टी०एस० इलियट के कथनानुसार –

'परम्परा का प्रवाह सतत् गतिशील है। इसके बिना वह निश्चित स्थिर एवं जड़ है। विकासशील जीवन में पुरातन प्रवृत्तियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। कोई भी पुरातन वस्तु अथवा स्थिति अक्षुण्ण नहीं है, क्योंकि जीवन की प्रत्येक स्थिति किसी विशेष प्रवृत्ति का परिणाम होती है। वह सदैव न एक सी रहती है और न रह सकती है।[18]

---

17. जॉन लिविंग्सटन – कन्वेंशन एण्ट रिवोल्ट इन पोयट्री, पृष्ठ – 63
18. टी०एस० इलियट – ऑफ्टर स्टेन गॉड्स, पृष्ठ – 18–19

कोई भी साहित्यकार चाहे कवि हो, कहानीकार हो, निबन्धकार हो, आलोचक हो, जीवनी लेखक हो, नाटककार हो, और चाहे कथा साहित्यकार क्यों न हो – जब वह प्राचीन साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर वर्तमान का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर साहित्य की रचना करता है तो युग प्रतिनिधि साहित्यकार कहलाता है और उसका साहित्य युग–साहित्य के श्रेणी में अपना स्थान बनाता है। ऐसे साहित्य का मूल्य शाश्वत है। यही कारण है कि कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर आदि का साहित्य काल–ग्रही है। साहित्य जगत में गोर्की, प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा एवं जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य भी इसी कोटि के हैं, जिनका अत्यधिक महत्व है । इस प्रकार युग साहित्य के सृजक एवं उनके कथा साहित्य का मूल्य शाश्वत होता है। इस सन्दर्भ में डॉ० एच०बी० रूथ का विचार द्रष्टव्य है –

'वह साहित्य या कला में एक नयी दृष्टि खोजता है। इसलिए महान कृति में नवीनता द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिए, जिससे पाठक प्रारम्भ में ही आगे पढ़ने के लिए उत्सुक हो जायें। अनुभूतियाँ गम्भीर एवं व्यापक छवियों की निर्मात्री हैं तथा हैं– कारयित्री प्रतिभा की क्रीड़ा भी।[19]

प्रत्येक कथाकार अपने युगीन परिवेश के साथ प्रयोगशील भी होता है। यही प्रयोगशीलता ही नवीनता की सूचक है। श्रेष्ठ साहित्यकार परम्परा और प्रयोग दोनों का एक साथ निर्वाह करता है। वह एक ओर तो अपनी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों से कुछ न कुछ प्रेरणा ग्रहण करता है तथा दूसरी ओर युगचेतना का अवलम्ब लेकर विषय–वस्तु, शिल्प और भाषा में कुछ मौलिक परिवर्तन ग्रहण करता है। साहित्य में नये प्रयोग रूढ़ियों पर प्रहार तथा पृष्ठभूमि के प्रति सतर्कता से ही होते हैं। कथाकार का सबसे बड़ा दायित्व समाज के लिए होता है, जिसके

---

19. डॉ० एच०बी० रूथ इंगलिश लिटलेचर आइडियाज इन दी ट्वेन्टीय सेन्चुरी, पृष्ठ – 2

निर्वाह के लिए आवश्यक है कि वह युग चेतना की परम्परा से परिचित हो तथा परम्परा और पृष्ठभूमि में समन्वय बनाये रख सके।

साहित्य और समाज का युग चेतना से सम्बंध

आलंकारिक भाषा मे साहित्य पुष्प के समान बँधा हुआ नही होता है। साहित्य की तुलना सरिता से करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सरिता में स्वच्छन्दता और प्रवाहमयता होती है। साहित्य भी इन गुणों से अछूता नहीं है। जिस प्रकार सरिता बहते–बहते अनेक मोड लेती है ठीक उसी प्रकार साहित्य भी अपनी पूर्व परम्पराओं से अलग होकर अनेक मोड़ लेता है और वही मोड़ युगान्तर का सूचक होता है।

साहित्य युग चेतना से संश्लिष्ट होता है। साहित्य में न केवल युग की आध्यात्मिक, भौतिक और मौलिक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया ही विद्यमान होती है बल्कि युग की आशा–आकांक्षा और आदर्श भी परिलक्षित होते हैं। अतः हम समसामयिक साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों को देख सकते हैं। साहित्य में समाज के भाव और विचारों का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। समाज भी साहित्य द्वारा प्रसारित भाव और विचारों से प्रभावित होता रहता है इस प्रकार साहित्य और समाज में परस्पर आदान–प्रदान तथा क्रिया–प्रतिक्रिया का अनवरत क्रम चलता रहता है। अतः किसी युग के साहित्य की समीक्षा के लिए उस युग की जनता की चित्तवृत्तियों का परिचय और विश्लेषण अति उपयोगी है।[20]

---

20 प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–3)

युग और साहित्य में परस्पर रात और दिन का सम्बन्ध है। इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। जहाँ युग साहित्य को

उपजीव्य सामग्री प्रदान करता है वहीं साहित्यकार उस युग बोध को सम्प्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि प्रदान करता है। मानव सचेतन, ज्ञानवान और संवेदनशील प्राणी होने के कारण अपने परिवेश से प्रभावित होकर संवेगानुभूति को साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति करता है। साहित्य में जब कभी नवीन विधा का जन्म होता है, तो उसके मूल में अनेक परिस्थितियों का योगदान रहता है। इस सम्बन्ध में श्री राम गोपाल सिंह के विचार द्रष्टव्य हैं –

'व्यक्ति और समाज के जीवन में परिवर्तन, हर युग में ही होते हैं। और इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर जीवन मूल्य विकसित होते हैं। ये जीवन मूल्य ही व्यक्ति के चरित्र और उसकी सभ्यता एवं संस्कृति के मेरुदण्ड बनते हैं।'[21] साहित्यकार मानवी परिवेश मूल्यों के उद्‌घाटन का प्रयत्न करता है और उसका यही प्रयत्न साहित्य सृजन करता है।[22]

समष्टिगत चेतना की उपज होने के कारण साहित्य और समाज में अटूट सम्बन्ध है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार अवचेतन मन में संग्रहीत होते रहते हैं और वही अभिव्यक्त होते हैं। सच्चा साहित्यकार कभी भी सामाजिक उपादानों द्वारा चेतन मन पर पड़े संस्कारों की अवहेलना नहीं कर सकता। साहित्य और समाज की दो समान्तर रेखाओं को स्पर्श करने वाली तिर्यक रेखा युग–चेतना ही है। युग चेतना–अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ साहित्य की सामग्री बनती है और साहित्यकार उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। जहाँ एक ओर वह समाज से प्रेरणा

---

21 श्री राम गोपाल सिह – स्वातत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, स०–महेन्द्र भटनागर, पृष्ठ – 13
22 डॉ० देवराज – साहित्य चिन्ता, पृष्ठ – 68

ग्रहण करता है वहीं दूसरी ओर वह समाज को प्रभावित भी करता है। डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल का कथन है कि –

'साहित्यकार युग चेतना द्वारा ही अपने साहित्य को सँवारता है, जो युगीन देन है। वह एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में जन्म लेता है, विकास पाता है और समाज में ही उसकी जीवन–गाथा का अन्त होता है।'[23]

साहित्यकार स्वयं को समाज से अलग नहीं कर सकता। उसकी कल्पना का समाज युगचेतना के प्रकाश के माध्यम से ही निर्मित होता है। सामाजिक तत्वों का जो प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता है, वही साहित्य के रूप में प्रकट होता है। कथा साहित्य समाज से समाज के लिए सामग्री ग्रहण करता है। इस प्रकार साहित्य के लिए समाज साध्य और साधन दोनों हैं। इस सम्बन्ध में मुन्शी प्रेमचन्द के विचार द्रष्टव्य हैं –

'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।[24] इसी सन्दर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा के विचार द्रष्टव्य हैं –

'साहित्य इस प्रकार विश्वात्मा है और विश्वात्मा में राष्ट्रात्मा निवास करती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि साहित्य है।'[25]

---

23. डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों मे युगचेतना, पृष्ठ – 2
24. मुशी प्रेमचन्द – साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ – 24–25
25. डॉ० रामविलास शर्मा – प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ – 135

किसी देश या जाति के चरित्र–निर्माण में साहित्य का बहुत सहयोग रहता है। साहित्य के माध्यम से ही राष्ट्र का उत्थान संभव है। इस प्रकार का साहित्य, जो राष्ट्र के उत्थान में सहायक होता है, वह मानवता की नव जागृति का सन्देश लिए हुए होता है और उसमें राष्ट्र का आत्मसम्मान निहित होता है। मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में –

'साहित्य तो वह कला है जो समाज में जागृति और स्फूर्ति लाये, जो जीवन की यथार्थ समस्याओं पर प्रकाश डाले।[26]

युग–चेता कलाकार का साहित्य युगचितेरा होता है। वह सत्य बात को प्रकट करने में संकोच महसूस नहीं करता है। साहित्य वह दर्पण है, जिसके सामने जाते ही तत्काल समाज का सत्य चित्र दिखाई दे जाता है। समाज अथवा साहित्य बीती हुई संस्कृति में डूबे हुए भविष्य का आलिंगन करते हैं। इस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं। साहित्यकार के पास साहित्य की ऐसी संजीवनी शक्ति है, जिससे समाज के विभिन्न लोगों को जीवन–दान मिलता है। वह अपने साहित्य के माध्यम से समाज में नवीन चेतना का संचार करता है। साहित्य का सबसे बड़ा दायित्व समाज के प्रति होता है, जिसे युग चेता साहित्यकार ही निभा पाता है।

साहित्य जन–जीवन की सत्य तस्वीर प्रस्तुत करता हुआ समाज को विकास के पथ पर अग्रसरित करने की प्रेरणा प्रदान करता है। युगचेतना से प्रभावित होकर साहित्यकार के साहित्य में युग की भावनाओं को सहज रूप से जाना जा सकता है। प्रत्येक कलाकार सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी भावनाओं द्वारा परिचालित होता है। कर्म, भावना और इच्छा का व्यक्त रूप साहित्य है। सत् साहित्य यद्यपि भावनाओं के प्रचार के लिए नहीं लिखा जाता है, तथापि उसमें

---

26. प्रेमचन्द – हस, सितम्बर 1936

व्यक्त भावनायें अवश्य युगीन होती हैं। युग चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य युगीन भावनाओं से भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि उसमे सांसारिक व्यक्तियों की भावनाएँ आन्दोलित होती रहती हैं। साहित्यकार सामाजिक उपादानों द्वारा चेतन मन पर पड़े संस्कारों की अवहेलना नहीं कर सकता है। कुछ पलों के लिए भले ही वह पृथ्वी से ऊपर उठ जाए, परन्तु उसे पृथ्वी पर उतरना ही होगा। वह अपने लौकिक व्यक्तित्व का विनाश नहीं कर सकता।

युग चेतना साहित्य के लिए आवश्यक ही नहीं, बल्कि उसका धर्म है। जब वह अपनी वास्तविकता को छोड़कर समाज में फैली हुई राजनीति, नैतिकता, दार्शनिक भावना एवं धार्मिक प्रवृत्तियों से स्वयं को जोड़ देता है तब उसका वास्तविक रूप धीरे–धीरे नष्ट होने लगता है। अतः स्पष्ट है कि साहित्य युग की यथार्थ आवश्यकताओं से अपने आप को अछूता नहीं रख सकता है। वह न तो समाज की आवाज की अवहेलना कर सकता है और न ही संसार के कोलाहल से अपने को अलग कर सकता है। इस प्रकार साहित्य समाज के लिए और साहित्यकार साहित्य और समाज दोनों के लिए समर्पण की भावना रखता है। अनुभूतियों में विविधता होते हुए भी साहित्य समाज–सापेक्ष रहेगा, समाज–निरपेक्ष नहीं। कोई भी साहित्यकार अपने को सामाजिक दायित्वों से अलग नहीं कर सकता है। वह युगीन नीति, धर्म, आचार, आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। उसके व्यक्तित्व में स्रष्टा और सामाजिक समन्वय सन्निहित होता है, अतः वह युगचेतना के प्रभाव से प्रभावित होता है। साहित्यकार सदैव इस बात के लिए चिन्तित रहता है कि वह समाज के सत् पक्ष को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सके।

साहित्य जन जीवन का दर्पण होता है, इसीलिए साहित्यकार जन–जीवन की समस्याओं से पूर्णतया अवगत होता है। साहित्य भी

अध्यात्म और दर्शन की तरह 'सत्यम–शिवम–सुन्दरम्' का निर्वाह करता है। वह सांसारिक बीतरागी और संन्यासी होते हुए भी संसार के प्राणियों के लिए संसारी, अनुरागी या कर्मयोगी होता है। युग चेतना को वाणी प्रदान करने वाला साहित्यकार युग निर्माता होता है, वह साहित्य में युग चित्रण करता है और अपने समय के सामाजिक जीवन को एक नयी गति और नवीन दिशा प्रदान करने वाला होता है।

कथा साहित्य में युग चेतना का स्वरूप

कथा साहित्य में यथार्थ जीवन का चित्रण होता है, इसलिए इसे मानव–जीवन की निकटतम् विधा स्वीकार करना पड़ता है। इसमें मानव जीवन की केवल धरोहर ही सुरक्षित नहीं रहती है, अपितु उसमें जीवन के सजीव चित्र विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार मानव जीवन की आरम्भिक रूपरेखा का विधान करने वाली विधा कथा साहित्य है, जिसका प्रगाढ़ सम्बन्ध मनुष्य के जीवन एवं उसके युग से होता है। कथाकार के साहित्य में युग का सर्वांगीण रूप सुरक्षित रहता है। उसकी विवेचना कर हम युग का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि कथाकार का जीवन के प्रति निश्चित दर्शन एवं लक्ष्य होता है जिसे वह अपनी कथा के माध्यम से प्रस्तुत कर सत्य का आभास कराता है, तथापि कथा साहित्य मानव–चरित्र एवं उसके यथार्थ जीवन के कार्यों की अभिव्यंजना करने वाली विधा है। यह सत्य है कि कथा साहित्य में लेखक के मन की धारणाएँ एवं इच्छाएँ अभिव्यक्त होती हैं परन्तु वह केवल उसके मन की इच्छाओं और धारणाओं की अभिव्यक्ति का साधन मात्र नही हैं, उसमें इतनी विशालता एवं

व्यापकता होती है कि सारा संसार समाया रहता है। इसलिए वह जीवन का कलात्मक सर्जन है।[27]

साहित्यिक क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव–जीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव–जीवन के विविध चित्रो को चित्रित करने का जितना अधिक अवकाश उपन्यास में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक विधाओं में नहीं।[28] कथा साहित्य में मानव जीवन की अभिव्यक्ति है तथा मानव–जीवन का जीवन्त चित्र है। कथाकार मानव–जीवन का कैमरामैन नहीं, वरन् कलाकार अवश्य है क्योंकि वह किसी यन्त्र के माध्यम से चित्र नहीं बनाता, वरन् मानसिक दृष्टि से जीवन की विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओं का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से जोड़ता है। युग की गतिशील पृष्ठिभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास कहलाता है।[29] मनुष्य के जीवन के विभिन्न अनुभवों का कथा साहित्य में समावेश रहता है। मनुष्य के अनुभव की कोई सीमा नहीं है–वह विज्ञान का क्षेत्र स्पर्श करता है, साहित्य,संगीत, एवं कला में भी रूचि रखता है, पशु–पक्षियों एवं प्राणियों से भी वह अपना सम्बन्ध रखता है। उसका सम्बन्ध निर्जीव प्रकृति से भी है। पृथ्वी से लेकर आकाश तक सब से वह सम्बन्ध रखता है। उनसे वह जो कुछ भी ग्रहण करता है उसी से साहित्य की रचना करता है। उपन्यास यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह इस सृष्टि का यथार्थ चित्र है, जिसमें कथाकार उसका सामाजिक रूप विधान, उसका वर्ग सभी कुछ व्यापक अर्थों में आ जाते हैं।[30] वह जीवन की एक ऐसी दृष्टि की अभिव्यंजना करता है, जो यथार्थ की अपेक्षा पूर्ण

---

27 डॉ० महावीर लोढा – हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ – 4
28 डॉ० त्रिभुवन सिंह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ – 1
29 डॉ० भगीरथ मिश्र – काव्य शास्त्र, पृष्ठ – 73
30. डॉ० सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास उदभव और विकास, पृष्ठ – 3

है, विस्तृत एवं व्यापक है तथा अधिक सत्य है। उपन्यासकार किसी उपन्यास का निर्माण उसी तरह करता है जैसे एक चित्रकार चित्र का सृजन करता है।[31] इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य एवं उसके युग का सर्वांगीण यथार्थ चित्र अन्य विधाओं की अपेक्षा कथा साहित्य में सहज रूप से उभर कर आता है।

विश्व कथा साहित्य का जन्म, विकास एवं समृद्धि युगचेतना के समानान्तर हुई हैं। कथा साहित्य युग चेतना का संवाहक ही नहीं, अपितु युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर गतिशील जन जीवन का चितेरा है। आज के जीवन की उथल–पुथल एवं भागवत अन्तर्द्वन्द की अभिव्यक्ति की सर्वोत्तम विधा उपन्यास है। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व भारतीय समाज में सरलता थी, मूल्यगत स्थायित्व था। फलतः उपन्यास जैसे परिवर्तन प्रिय साहित्यिक रूप की आवश्यकता भी नहीं थी।[32] युग चेतना इतनी गुम्फित, संघर्षमयी तथा असाधारण हो गयी कि पद्य के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति उतनी आसान नहीं रही, जितनी प्राचीन काल में सम्भव थी। मक्खनलाल शर्मा के अनुसार–

'साहित्य के जितने भी रूप विधान हो सकते हैं, उनमें उपन्यास का रूप विधान अपनी विशिष्टता के कारण युगानुकूल युग चेतना का संवाहक बनकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता आया है।'[33]

आज के युग में हम उन्नति के पथ पर जल्दी से बढ़ रहे हैं तो उसी के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम को परिवर्तित करना पड़ेगा। कथा साहित्य हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। आज के जीवन के भाव–सत्य को अपनी समग्रता में सभी स्तरों और आयामों में व्यपकता और गहनता के दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति करने

---

31 डॉ० रिचर्ड स्टेग – दि थ्योरी ऑफ नावेल इन इंग्लैंड, पृष्ठ – 11
32 डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – बीसवीं शताब्दी – हिन्दी साहित्य . नये सन्दर्भ, पृष्ठ – 252
33 मक्खन लाल शर्मा–हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 4

के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं।[34] आज के युग की बौद्धिक उथल–पुथल और भावगत अन्तर्द्वन्द्व को दैनिक जीवन और उसके परिवेश में स्थित करके तथा इन विभिन्न पक्षों के परस्पर सम्बन्ध और उपयोगिता को प्रकट करने के लिए कथा साहित्य बड़ी ही उपयुक्त विधा है। कथाकार अपने कथानक के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से मानव–जीवन एवं उसके युग से प्रेरणा ग्रहण करता है। वह उसकी अवहेलना नहीं कर सकता, क्योंकि वह उस वातावरण में सांस लेते हुए अपने साहित्य के यथार्थ का सृजन करता है। जीवन की सत्यता को कथाकार यथातथ्य रूप में नहीं रख सकता है। जीवन की यह अभिव्यक्ति यथार्थ होते हुए भी यथा तथ्य रूप में घटित नहीं होती है। कथाकार जब युग चेतना का यथार्थ चित्रण करता है तो वह युग द्रष्टा की भूमिका को निभाता है, लेकिन युग द्रष्टा की भूमिका निभाने के लिए उसे अपने भोक्ता जीवन पर निर्भर रहना पड़ता है। जिस कथाकार के कथा साहित्य में युग द्रष्टा एवं युग स्रष्टा इन दोनों का समन्वय पाया जाता है, उसे युग कथाकार की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दों में –

'उपन्यास और काव्य के बीच सबसे बड़ा अन्तर यह है कि उपन्यास का सम्बन्ध वास्तविक जगत से होता है तो काव्य का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से। काव्यः मूलतः सर्जनात्मक, शाश्वत और निरपेक्ष है, उपन्यास प्रधानतः विश्लेषणात्मक है।'[35] जीवन शक्ति कवि के पीछे और साहित्यकार के सम्मुख रहती है। काव्य अप्रत्यक्ष रूप से जीवन की आलोचना है। उसमें कल्पना तत्व और सुख तत्व प्रधान होते हैं। कवि सपना देखता है और भावना का शब्द शिल्पी होता है। कवि अपने लिए सच्चाई बरतता है तो साहित्यकार समाज के लिए।

---

34 नेमिचन्द्र जैन – अधो साक्षात्कार, पृष्ठ – 10
35. डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – पश्चिमी आलोचना शास्त्र, पृष्ठ – 376–377

कोरा काल्पनिक साहित्यकार उसकी अपनी प्रकृति के विरूद्ध है।¹¹। एक विदेशी कवि की काव्य रचना का आनन्द हम उठा सकते हैं, क्योकि वह कल्पना जगत की वस्तु हैं। उसमें सूक्ष्म मनुष्य के मन की अभिव्यक्ति होती है किन्तु विदेशी साहित्यकार की रचना समझने में समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि उसमें उसी के हर तरफ का अर्थात अपने से अलग जीवन चित्रत रहता है और उससे हम अनभिज्ञ रहते हैं।

निष्कर्ष यह है कि कथा साहित्य सामाजिक चेतना का प्रतीक है। कथा साहित्य एक ऐसी कला है जो यथार्थ की प्रतिच्छाया होती है। वह तो जीवन का पुनः सर्जन है, क्योंकि जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन इसमें होता है। कथाकार के माध्यम से मिलने वाला जीवन परिवेश एवं उसका यथार्थ ही उसमें महत्व प्राप्त कर पाता है। सामाजिक चेतना का कलात्मक रूप कथा साहित्य है, जिसके फलस्वरूप साहित्यकार अपने समाज के अलावा किसी अन्य का चित्रण नहीं कर सकता। कथाकार को अपनी स्वाभाविकता एवं सच्चाई बनाये रखने के लिए देश काल एवं वातावरण को ठीक प्रकार से चित्रित करने के लिए, युग चेतना का अपना अलग महत्व है। इसकी सहायता से कथा साहित्य में नवीन परिवेश एवं नवीन आयामों को आत्मसात् करते हुए प्रगतिशील भाव–जगत पर जीवन की समग्रता को साहित्यकार चित्रित करता है। काव्य की अपेक्षा कथा साहित्य में युग चेतना की अभिव्यंजना सरलता पूर्वक हो सकती है, क्योंकि कवि तो सपनों का निर्माता होता है और भावानुरूप शब्द शिल्पी भी, जबकि कथाकार यथार्थ जगत का यथार्थदर्शी होता है। साहित्यकार का कर्तव्य होता है कि सामाजिक सत्यता को देखे, परखे और विश्लेषित करे। प्रतिभा के धनी श्रेष्ठ साहित्यकार यही करते हैं।

कथाकार व्यक्ति और समाज को मुख्य बिन्दु मानकर चलता ह। व्यक्ति और समाज तो युग सापेक्ष हुआ करते हैं अतएव इनका सम्बन्ध युगीन प्रवृत्तियों से अलग नहीं हो सकता है। युगचेतना कथाकार को केवल युगीन प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों से परिचय ही नही कराती बल्कि वर्तमान युग जीवन का दृष्टिबोध, सौन्दर्य–बोध एवं नैतिक–बोध प्रदान कराती है। युगचेतनाविहीन कथाकार अपने साहित्य में कथानक एवं घटनाओं में यथार्थ की अभिव्यंजना नहीं कर सकता है। इस प्रकार कथा साहित्य में युग चेतना का अपना महत्व है, जिसे हम कथा साहित्य के आदि काल से लेकर अद्यतन युग के साहित्य तक में देख सकते हैं।

अध्याय–2

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में युगीन सामाजिक चेतना

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में युगीन सामाजिक चेतना

कथाकार एवं समाजः अन्तर्बाह्य सम्बन्ध

साहित्य मानव–मानस की विशिष्ट एवं रमणीय अनुभूति है। साहित्य का पहला अंग है– भाव, जिसके लिए कल्पना का योगदान अपेक्षित है, परन्तु कल्पना ऐसी जो अनुभूति के आधार पर निर्मित हो।[1] इसी यथार्थ अनुभूति की विशिष्ट व्यंजना करने वाला साहित्यिक रूप–विधान कथा साहित्य है। इसलिए इसमें हृदय को स्पन्दन देने की क्षमता होती है। मानव–चेतना समाज सापेक्ष हुआ करती है, और कथा साहित्य जो मानव चेतना का संवाहक है, नितान्त समाज निरपेक्ष हो ही नहीं सकता। वह तो जीवन की परिकल्पनात्मक अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा जीवन के सौन्दर्यात्मक और आनन्द पक्ष का उद्‌घाटन होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कथा साहित्य दर्पण गत प्रतिच्छवि का परावर्तन नहीं प्रतिरूप है और प्रतिरूप का मूलभूत विधान समाज है। कथा साहित्य, सामाजिक प्रभावोद्‌भूत जीवन शक्ति के कारण जो कलाकार की ही प्राणशक्ति है, बहुधा सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक होता है। मार्क्सवादी आलोचना साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नहीं करती है, बल्कि उसे सामाजिक विकास में एक हथियार के रूप में स्वीकार करती है। इस प्रकार साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जो युगीन परिवर्तनों को आत्मसात करता हुआ अनवरत प्रवाहमान है। कार्डवेल

के अनुसार– 'कला एक सामाजिक प्रक्रिया है।'[2] कलाकार का दोहरा व्यक्तित्व होता है– एक सामान्य मानव रूप और दूसरा साहित्यिक रूप। इनमें सर्जनात्मक चेतना प्रबल होती है। परिस्थितिजन्य अनुभव की अमूल्य राशि को कल्पना का पुट देकर वह कला के माध्यम से व्यक्त करता है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे ही साहित्यकार युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए युग–चित्र चित्रित करता है।

जैनेन्द्र जी का विशाल कथा साहित्य युग दर्पण है, जिसमें अनेक सामाजिक समस्याएँ विभिन्न रंगों में प्रतिबिम्बित होती है। कथाकार के लिए समाज वह आधार है, जहाँ वह स्वयं जन्म लेकर जीवन के विकासशील सोपानों पर चढ़ता हुआ सामाजिक जीवन के स्वानुभूत चित्र प्रस्तुत करता है। समाज से जो कुछ वह ग्रहण करता है, उसमें कलात्मक रंग पर सामाजिक मनोरंजन करते हुए जीवन की विशिष्ट प्रतिच्छवि चित्रित करता है।

साहित्य सामाजिक यथार्थ का दर्पण है, यह समझना जैनेन्द्र को मान्य नहीं है। अतः यह स्वीकार करने में किंचति संकोच नहीं होना चाहिए कि साहित्य लोकमंगल की कामना है, जिसका साधक साहित्यकार होता है।

कथा साहित्य अपने को लगातार समाज से अधिकाधिक जोडने का प्रयत्न करता रहा है। जैनेन्द्र सदृश युगचेता कलाकार का सम्पूर्ण साहित्य युगचेतना का संवाहक है। उन्होंने साहित्य की रचना प्रेमचन्द जी के काल से प्रारम्भ कर दी थी। स्वयं प्रेमचन्द ने ही उनकी प्रथम कहानी को अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर उनका साहस बढ़या था।

---

1 डॉ० त्रिभुवन सिह– हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ–31
2. 'Art is a social function' - Christopher Caudwell -Studies in a dying culture, Page-44

सन् 1929 में जैनेन्द्र की प्रथम कहानी 'फाँसी' प्रकाशित हुई। पहला उपन्यास 'परख' अगले ही वर्ष 1930 में छपा था। जैनेन्द्र जी कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त चिन्तन प्रधान गद्य लिखने की ओर भी तभी प्रवृत्त हो गये थे। ''जैनेन्द्र के विचार' नामक इनकी प्रथम वैचारिक रचना सन् 1937 में प्रकाश में आयी थी। इसके उपरान्त जैनेन्द्र जी नियमित लेखक के तौर पर स्थापित हो गये। इनका लेखन क्षेत्र प्रमुखतया कल्पना सापेक्ष एवं विचार सापेक्ष गद्य ही है। विशाल साहित्य की रचना करने वाले मनीषी साहित्यकार जैनेन्द्र जी ने गृहस्थी की कुछ घातक चोटों से पीड़ित होते हुये भी हुए अपने भीतर का चैतन्य सदैव लोकधर्मी ही बनाये रखा। परोपकारी संस्थाएँ, साहित्यिक सभाओं एवं राजनीतिक समितियों में वे अकुंठित भाव से प्रत्येक भूमिका निभाते रहे। अस्वस्थ होने पर भी बहुधन्धी योजनाओं में उनका नित्य सहयोग बना रहा। संस्थाओं की व्यवस्था की दृष्टि से जैनेन्द्र 'यूनेस्को राष्ट्रीय कमीशन' की कार्यकारिणी के प्रथम सदस्य बनाये गये थे और 'भारतीय साहित्य अकादमी' कार्यकारिणी समिति के भी प्रथम सदस्य मनोनीत हुए थे। जैनेन्द्र ने सन् 1955 में प्रथम यूरोप यात्रा भी की थी। अगले वर्ष चीन के राष्ट्रीय साहित्यिक महोत्सवों में एक मात्र भारतीय प्रतिनिधि के रूप में जैनेन्द्र का चीन जाना हुआ था। सन् 1960 में रूस में आयोजित टॉलस्टाय की 50वीं पुण्य तिथि पर होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन के वे प्रतिनिधि बने। जैनेन्द्र 'एशिया लेखक सम्मेलन' के संयोजक हुए। उन्होंने केन्द्रीय साहित्य अकादमी के प्रमुख सदस्य एवं भारतीय साहित्य परिषद् के वरिष्ठ सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय कार्य किया है। उनकी साहित्यिक सेवायें और गम्भीर एवं प्रेरक विचारों की अभिनन्दना करते हुए राष्ट्रपति ने सन् 1970 में उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया और सन् 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने डी०लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया।

जैनेन्द्र प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों के प्रवर्तक और मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण करने वाले[3] आधुनिक कथा साहित्य के अनगढ शिल्पी[4] थे। जैनेन्द्र की दृष्टि में काल और देश की सीमाओं से ऊपर उठकर व्यक्ति मे अपने वृहतरूप की चेतना उद्दीप्त करना सत् साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए। जैनेन्द्र जी ने जो महत्व व्यक्ति को दिया, वह समाज को नहीं दिया प्रेम, सत्य व परमात्मा के सम्बन्ध में जैनेन्द्र जी के और गाँधी जी के विचारों में अद्भुत साम्य है। इसी कारण अनेक विद्वानों ने माना है कि गाँधी जी के जीवन दर्शन का ही प्रतिपादन उन्होंने किया है। वे स्वयं स्वीकार करते थे कि वह गॉधी जी के ऋणी हैं। उनके कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सामाजिक समस्याओं के निरूपण के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनों का विश्लेषण करते हुए पात्रों की बुद्धि और उनके हृदय के संघर्ष का उद्घाटन करते हैं। जैनेन्द्र ने स्वयं कहा है कि बुद्धि भरमाती है, वह द्वैत पर चलती है। उसके साहित्य का परम श्रेय अखण्ड और अद्वैत सत्य है, उसका व्यवहारिक रूप समस्त चराचर जगत के प्रति प्रेम अनुकम्पा है।[5] उनके साहित्य में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के साथ अहंवादिता की अन्तःविश्लेषण उपलब्धि होती है।

डॉ० मनमोहन सहगल ने जैनेन्द्र के विषय में अपने विचारों को निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है—"स्पष्ट ही जैनेन्द्र ने जो महत्व व्यक्ति को दिया, वह समाज को नहीं। उपन्यासों के मुख्य पात्र प्रायः समाज के प्रति विद्रोही हैं। उनका अहम् इतना प्रबल है कि वे समाज के नियमों—बन्धनों में आवृत होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता का होम करने को तैयार नहीं। जैनेन्द्र ने उनके भीतरी यथार्थ की मज्जा तक

---

3 डॉ० प्रताप नारायण टंडन – हिन्दी उपन्यास में कथा साहित्य का विकास, पृष्ठ–105
4 डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ – सप्त सिन्धु मासिक सितम्बर, 1970, पृष्ठ–65
5 जैनेन्द्र कुमार – साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ–15

उखाडकर रख दिया है, किन्तु कठोर यथार्थ और शुष्क वस्तु स्थिति में उनकी भी गति नहीं हो पाती।'[6] व्यक्ति समाज में रहकर ही अपने व्यक्तित्व का विकास करता है तथा समाज ही उसे प्रतिष्ठा और सम्मान प्रदान करता है। यदि समाज न हो तो मनुष्य का व्यक्तित्व अपने आप में शून्य हो जाता है। डॉ० कुसुम कक्कड़ के विचार द्रष्टव्य है—'जैनेन्द्र ने सामाजिक व्यवस्था को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है।'[7] जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य में पात्रों की प्रत्येक सुखद अथवा दुःखद मानसिक स्थिति का निष्पक्ष चित्रण करते हुए उसके साथ सहानुभूति मिश्रित करुण व्यवहार करके जीवन की एक—एक गॉठ खोलने में सहायक होते हैं। सेक्स पर दिया हुआ कवर अनेक प्रकार कुण्ठाओं को जन्म दे सकता है, जैनेन्द्र उस कवर को ही हटाकर बात नहीं करते, बल्कि उस कवर से उत्पन्न असाधारणता को नार्मल्सी की ओर ढकेलने में सहयोग देते हैं। जैनेन्द्र की कृतियाँ उनके उदात्त क्षणों की देन हैं। वह प्राचीन कथाकार की तरह घटनाओं का संकलन और उनकी सूत्रबद्धता में विश्वास नहीं रखते। स्वयं 'सुनीता' में उन्होंने स्वीकार किया है कि कहानी कहना उनका उद्देश्य नहीं था। चिन्तक होने के नाते एक विचार व्यक्ति जीवन की एक समस्या का अभाव, समाधान तथा मानसिक द्वन्द्व प्रस्तुत करना ही निरन्तर उनका लक्ष्य रहा है। उनके लगभग सभी मौलिक उपन्यासों में कथानक की अपेक्षा व्यक्ति और उसकी अन्तर्मुखी समस्या प्रधान है। यही कारण है कि वे कथानक को कहीं भी निश्चित रूपाकार नहीं दे पाये। कथा की उपेक्षा की घोषणा तो उन्होनें 'सुनीता' में ही कर दी थी; किन्तु 'कल्याणी', 'त्यागपत्र' आदि के गठन में वह घोषणा अपनी पराकाष्ठा को छू गयी है। इनके कथा साहित्य में पाठक को प्रारम्भ में ऊल—जुलूल कथनों के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त होता है,

---

6 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्याकन, पृष्ठ– 11
7 डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ–181

धीरे–धीरे लेखक की निपुणता और व्यक्ति चेतना के सूत्र में उसके हाथ आने लगते हैं और यदि पाठक प्रबुद्ध हुआ तो वह कथानक में डूबकर उनके द्वारा सूत्रों से कुछ नीचे अथाह में गोता लगाकर उन रत्नो को बटोरने में भी सफल हो जाता है, जैसा जैनेन्द्र का चिन्तक कथाकार अपनी कृतियों मे बिखेरता चलता है। 'मृणाल' के कथनों को पढकर कोई साधारण व्यक्ति भले ही बुरा–भला कहे, किन्तु सुधी विचारक को उसके पीछे छिपी करुणा का साक्षात्कार होगा और वह 'मृणाल' की आत्मपीड़ा से भी ज्ञान के बिन्दु एकत्रित कर ही लेगा। जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य में कम से कम पात्रों का सृजन करते हैं। मुख्य पात्रों की संख्या कमी भी दो–चार से अधिक नहीं हुई है। इनमें एक न एक पात्र तीखे अहं का शिकार जरूर होता है। सभी पात्र व्यक्ति होने के कारण उस अहं की ग्रन्थि को, जिसका कारण समानता, काम, अमुक्ति, रूग्ण, आसक्ति अथवा कामना विशेष होती है, खोखले और कुंठित पात्र को नार्मल बनाने का प्रयास करते हैं। कही–कहीं तो ऐसे पात्रों में स्वाभाविकता लाने के कारण कथाकार ने कुछ स्त्री पात्रों से समर्पण तक करवाया है। यथा 'सुनीता' की सुनीता ने हरि प्रसन्न के प्रति और 'व्यतीत' की अनिता ने जयन्त के प्रति किया। जहां पात्र में सामान्यता लाने की अपेक्षा नहीं रही, वहां जैनेन्द्र ने शुद्ध आत्मपीडा को उसका श्रृंगार बना दिया है। 'त्यागपत्र' की मृणाल अन्त तक आत्म पीड़ा की ज्वाला में जलती ही नहीं रही, वरन् वह आत्मव्यथा को जीवन का एक उच्च स्तरीय आयाम मानकर उसमें से उस ज्ञान की खोज करती है। इनके पात्रों की मुख्य समस्या यौन की है। इस क्षेत्र में असफल रहने पर प्रायः वे समझौता नहीं कर पाते और अपने तीव्र अहं से पीड़ित होकर असाधारणता को ग्रहण कर लेते हैं। इस सन्दर्भ में 'परख' की कट्टो ही आदर्श की ओर झुक पायी है अन्य 'सुनीता' का 'हरि प्रसन्न' कल्याणी की कल्याणी, 'सुखदा' की सुखदा 'विवर्त' का जितेन 'त्यागपत्र' की मृणाल 'मुक्तिबोध' की

नीलिमा असाधरणता को प्राप्त हुई हैं। जैनेन्द्र के पात्र प्रायः विचारक है, किन्तु नियति और आस्था का सहारा निरन्तर लिए रहते हैं। वे जिस मार्ग को शुभ मानकर उस पर निकलते हैं तो कदम पीछे नही हटाते हैं। अपनी हानि को समझते हैं; किन्तु उस आदर्श में पूर्ण विश्वास रखकर निरन्तर पीडा सहते हुए भी वे धैर्यवान हैं। 'व्यतीत' की अनिता अपनी टूटी हुई गृहस्थी को समझती है, किन्तु शायद अपराध भावना से प्रेरित जयन्त के प्रति प्रायश्चित भाव से सामान्य का आवाहन करती सी प्रतीत होती है। मृत्यु उनके लिए भय का उपकरण नहीं, क्योंकि आस्था की राह पर अपनी लक्ष्य सिद्धि हेतु प्रयाण करने वाला पात्र मृत्यु से क्यों भयतीत हो, यह उनका आदर्श है। इसीलिए तो 'कल्याणी' की कल्याणी, 'त्यागपत्र' की मृणाल और 'अनामस्वामी' की वसुन्धरा प्रसन्नता से मौत को गले लगाती हैं। उन्हें अपनी मृत्यु शक्ति में भी पर्याप्त विश्वास है। 'जयवर्धन' की इला और लिजा 'व्यतीत' की अनिता इस तथ्य के जीते–जागते उदाहरण हैं।

वातावरण की दृष्टि से जैनेन्द्र का बाहरी परिवेश की ओर आग्रह नहीं है। उनके कथा साहित्य में अन्तर्मन का गम्भीर चित्रण इतने सूक्ष्म ढंग से किया जाता है कि अन्दर की कोई भी गाँठ अछूती नहीं रहती। उन्होंने अपने कथा साहित्य में कथानक की भाँति वाह्य वातावरण को कोई विशेष महत्व नहीं दिया है। इसकी अपेक्षा चिन्तन और आन्तरिक समस्याओं का उनके कथा साहित्य में विशेष उल्लेख हुआ है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि उसी भाव का विशेष स्पर्श कर पायी है जो आधुनिकता की दृष्टि से जीवन के संग जूझते हुए हमारी अनुभूतियों की विभूति बन जाया करता है। 'त्यागपत्र' में आज की खोखली सभ्यता और स्वावलम्बन के बीच एक संघर्ष दीख पड़ता है। बाद के उपन्यास 'अनामस्वामी' में लेखक ने यौन तथा आतंक की जिस प्रवृत्ति का स्पर्श किया है, वह वर्तमान परिवेश का नवीनतम रूप कहा जाता है। जैनेन्द्र समाज के चित्रकार न होकर मनुष्य के हृदय

के भीतर छिपी रत्नराशि को उघाड़ते और मनुष्य की बौद्धिक, मानसिक समस्याओं का संश्लेषणात्मक ढंग से दिग्दर्शन कराते हैं। उनके कथा साहित्य में आन्तरिक समस्याओं का विशेष स्थान रहता है। उनका प्रत्येक उपन्यास किसी मानसिक उलझन या कुंठा की गुत्थियॉ सुलझाता सा प्रतीत होता है, मानसिक उलझन का सामूहिक सन्दर्भ न होकर मनुष्य का अपना निजी घेरा होता है। इसलिए जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रत्येक प्रमुख पात्र उलझा हुआ, अहंवादी और कभी–कभी अति करुण बन गया है। स्त्रियाँ अधिक भावुक होती है, अतः वह उपर्युक्त समस्याओं की गम्भीर शिकार हैं।

व्यक्ति और समाज

जैनेन्द्र के साहित्य में व्यक्ति और समाज के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। व्यक्ति सामाजिक बन्धनों में जकड़ा होने के कारण उनसे मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है और इसी में वह असामान्य बन जाता है। व्यक्ति और समाज की समस्यायें विविध रूपों में चित्रित हुई हैं।

स्त्री–पुरुष एवं परिवार

संसार स्त्री–पुरुष मय है। सृष्टि के आरम्भ से ही संसार केवल स्त्री–पुरुष के नाना सम्बन्धों द्वारा चल रहा है। आदिम युग में मानव जीवन की कोई व्यवस्था नहीं थी। मनुष्य अपनी मूल प्रवृत्तियों को स्वच्छन्द रूप से सन्तुष्ट करता था। डॉ० कुसुम कक्कड़ के शब्दों में–

'सभ्यता के विकास के साथ स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध अधिक व्यवस्थित होने लगे हैं। ज्यों–ज्यों उनमें विवेक बुद्धि जागृत हुई वे

जीवन की विविध समस्याओं की ओर उन्मुख हुए। परिवार व्यवस्था के क्रम में यह एक महत्वपूर्ण सोपान है।'[8]

भारत में बीसवीं शती से पूर्व अधिकांशतया संयुक्त परिवार का प्रचलन था, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ–साथ संयुक्त परिवार टूटते गये। समाजवादी युग में संयुक्त परिवार का कोई अस्तित्व नहीं रह गया। संयुक्त परिवार के सम्बन्ध में डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के विचार द्रष्टव्य हैं –

"भारतीय समाज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग संयुक्त परिवार रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली प्राचीनकाल से सामाजिक संगठन का एकमात्र आधार रही है। इससे परिवार में सहयोग, सद्भाव, स्नेह एवं समानता की भावना बनी रहती है।"[9] पति–पत्नी, सास–बहू, ननद–भौजाई, देवर–भौजाई आदि के कलह एवं संघर्ष की कहानी आदिकाल से चली आ रही है, परन्तु आर्थिक स्वरूप इतना परोपकारी, परस्पराक्षेपी था तथा पारिवारिक सामंजस्य के आदर्श एवं संस्कार इतने दृढ़ थे कि कटुता उनके सामने व्यर्थ हो जाया करती थी। इस प्रकार संयुक्त परिवार अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रहा, जिसमें उस देश की आर्थिक परिस्थितियों ने आवश्यक सहयोग दिया। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में संयुक्त परिवार का विशिष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। उनके कथा साहित्यं का निखार व्यक्ति के विषय में ही दृष्टिगत होता है, परिवार के परिवेश में नहीं, अर्थात् द्वन्द्व का कारण पारिवारिक समस्याएं न होकर आन्तरिक उत्पीड़न से उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व है। जैनेन्द्र जी भारतीय संस्कृति के पूर्ण समर्थक हैं। उनकी दृष्टि में व्यवस्था विहीन समाज आदिम काल का प्रतीक हो सकता है। कृषि–प्रधान युग में संयुक्त परिवार ही विशेष रूप से प्राप्त होते थे,

8. डॉ० कुसुम कक्कड जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ–182
9. डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों मे युग चेतना, पृ0–64

किन्तु इस उपयोगवादी युग में परिवार केवल पति–पत्नी तक सिमट गया है।[10] युगानुरूप उनके पात्र प्रगतिशील तथा स्वच्छन्द विचारों के पोषक हैं। उनके अनुसार जीवन–मूल्य तेजी से आर्थिक बनते जा रहे है। उस वेग में जान पड़ता है कि परिवार और सम्मिलित परिवार का रूप छोटा हो जाने को बाध्य है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यदि आर्थिक सभ्यता का दौर–दौरा रहा तो यह परिणाम घटित हुए बिना न रहेगा। लेकिन पारिवारिक इकाइयॉ स्वयं उस आर्थिक सभ्यता के प्रवाह को रोके हुए हैं। उनके दो परवर्ती उपन्यास 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' की कथा में पारिवारिक सम्बन्धों के मध्य होने वाले 'मतभेद' को ही विशेष प्रश्रय मिला है।

पिता–पुत्र तथा बेटी–दामाद के मध्य घटित घटनाओं को पारिवारिक स्तर पर ही चित्रित किया गया है। अन्य प्रारम्भिक उपन्यासों में परिवार तो है, किन्तु परिवार की घटनाओं अथवा समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। वहाँ वाह्य घटना से अधिक मानसिक तनाव दृष्टिगत होता है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में परिवार की स्थिति अत्यधिक निर्बल है।

व्यक्तित्व का समुचित विकास सुखी परिवार के सौहार्दपूर्ण परिवेश में ही सम्भव हो सकता है। पारिवारिक तनाव की स्थिति में व्यक्तित्व का विकास समाज में अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना पाता। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में इतना वैषम्य दिखायी देता है कि उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं बनायी जा सकती। 'कल्याणी' में जो व्यथा है वह 'मुक्तिबोध' की स्वच्छन्दतापूर्ण परिस्थिति में सम्भव नहीं हो सकती है। जैनेन्द्र परिवार के अस्तित्व का खण्डन समाज के हित के लिए महत्वपूर्ण नहीं मानते। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में उत्पन्न होने वाली विषमता समाज को लेकर नहीं है, बल्कि मनुष्य की

10. जैनेन्द्र कुमार समय और हम पृष्ठ – 137

सत्यता को लेकर उत्पन्न हुई है। उनके सम्बन्ध में यह कहना ठीक नहीं है कि उन्होंने समाज का विरोध किया है। समाज सत्य है, किन्तु समाज के साथ व्यक्ति की सच्चाई का निषेध नहीं किया जा सकता। समाज मनुष्य से ही है और मनुष्य की सार्थकता भी समाज में ही सम्भव है।

ब्रह्मचर्य

हमारे देश में मनुष्य जीवन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है, वे अवस्थायें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास हैं। जीवन की प्रथम अवस्था को ब्रह्मचर्य कहा गया है। इस अवस्था में मानव केवल अपनी शिक्षा–दीक्षा ही नहीं प्राप्त करता है, बल्कि अपना सर्वांगीण विकास करता है। जैनेन्द्र की दृष्टि इससे अछूती न रह सकी, उन्होंने 'अनामस्वामी' में इसकी विस्तृत व्याख्या की है। उपन्यास के कथा पट एक बीतरागी किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण के व्यक्ति 'अनामस्वामी' के आश्रम में बुने जाते हैं। सहज वातावरण ब्रह्मचर्य का प्रश्न उठाता है। अनाम दुनिया से भागने, समाज से अलग होने, अपने शरीर को कठोर दृढ़वादिता का शिकार बनाने आदि को ब्रह्मचर्य के आकर्षक नाम से पुकारने पर विश्वास नहीं रखता है। अनाम की दृष्टि में विवाह अनिष्ट नहीं हैं। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा कानून से नहीं, विवाह के बन्धन से अधिक हो सकती है। कथाकार चिन्तन पूर्णता को ही ब्रह्मचर्य का लक्ष्य मानता है। शक्तिहीनता पथभ्रष्टता है, शक्तिहीन बनना ब्रह्मचर्य का चरितार्थ न मान लिया जाय, तथापि वैसे प्रयोग किए गए हैं। आदमी हठात् नपुसंक बन गया है, पर वहाँ पूर्णता नहीं है और पूर्णता ब्रह्मचर्य का लक्ष्य है। बन्द मठ में रखकर किसी की आत्मा को खोला नहीं जा सकता है।[11] अर्थात् अकेलेपन के

---

11. जैनेन्द्र कुमार – अनामस्वामी, पृष्ठ – 39

माध्यम से कोई ब्रह्मचारी पापमुक्त नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य निषेधात्मक तत्व नहीं है और न पलायन की स्थिति ही है, स्नेह, प्रेम और सेवा ही ब्रह्मचारी का धर्म है। जैनेन्द्र की प्रतिक्रिया स्पष्ट है– 'अपने को न सहारा पाने के कारण प्राणी भोग में प्रवृत्त होता है। पूर्णकाम प्राणी निष्काम होता है। निष्कामता निषेधक स्थिति नहीं, वह तो परिपूर्ण मनोदशा है। इसी तरह ब्रह्मचर्य भी निषेधक भाव नही है, वह तो पूर्णता का साधक भाव ही है।[12] अवतारी मनुष्य भी तो अकेले अवतारी नहीं बन गये थे, वे सबके बीच और सबके साथ रहे। वहीं उन्होंने महाप्रेम की व्यथा को सँभाला। ब्रह्मचारी साधारण समाज को घृणा नहीं बल्कि प्रेम और करुणा से देखेगा। अनुकम्पा सच्चे बह्मचारी का लक्षण है। ब्रह्मचारी अहं का केन्द्र है अकथनीय सेवा करना ब्रह्मचारी का स्वभाव समझना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र ब्रह्मचर्य को एक ऐसी साधना मानते हैं, जिसमें मनुष्य अपने को समाहित कर दे। 'अनामस्वामी' का पात्र–चित्रण इसी ब्रह्मचर्य दृष्टि को साकार करता है। ब्रह्मचर्य में मनुष्य बिखराव से अलग होकर आत्म–संयम की ओर प्रवृत्त होता हैं, किन्तु यह प्रवृत्ति किसी हठ या संयम का योग न होकर निजता के विकास का विशाल रूप है। अंग्रेजी में जिसे 'इंटीग्रेसन आफ पर्सनालिटी' '(Intigration of Personaltiy)' कहें, ब्रह्मचर्य वही योग है। अपने इन्द्रिय, मन, प्राण को ब्रह्मनिष्ठा में पिरोकर रखना है। व्यक्ति समष्टि भाव से शून्यवत न होता दिखे, वह निरी अपनी ईकाई में ही बसता जाए, तो वहाँ ब्रह्मचर्य असिद्ध मानना चाहिए।[13] व्रत तो समष्टि भाव ही है, उसकी चर्चा व्यक्ति को छोटा नहीं, बल्कि विशाल ही कर सकती है।

---

12 जैनेन्द्र कुमार – अनामस्वामी, पृष्ठ–42

13. वही, पृष्ठ–43

इस तरह ब्रह्मचर्य मानव समाज ही नहीं, वरन् चराचर विश्व के साथ योग पाने की साधना का नाम है। इसमें मनुष्य के समाज से अलग हो जाने की बात ही नहीं की जा सकती है। जीवन में काम को न मानकर ब्रह्मचर्य की साधना करना ही मनुष्य का अहं है। सत्य की शक्ति के कारण ही मन का झूठ परास्त हो जाता है और मनुष्य को टूटना पडता है। 'अकेला' शीर्षक कहानी में ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वाला मनुष्य स्वयं को धोखा नहीं दे पाता है और कहता है, 'वह अकेले नहीं रह सकता, अकेले रहना उसके लिए अधर्म है।' जैनेन्द्र के अनुसार, असत्य के सहारे समाज में ऊपर उठने से अच्छा है, मन के सत्य को मानकर अपने को अर्पण कर देना, क्योंकि सत्य वाह्य स्वभाव में ही नहीं, अन्दर और वाह्य की समग्रता में ही सम्भव है। इसके लिए मनुष्य में पूर्णता अपेक्षित है, यही जैनेन्द्र की मान्यता है।

विवाह और परिवार

विवाह पारिवारिक जीवन की प्रमुख घटना होती है। इसलिए परिवार को उन्होंने वैवाहिक जीवन के लिए अनिवार्य माना है। वे विवाह को किसी भी स्थिति में उपेक्षणीय नहीं मानते अतः विवाह के साथ परिवार का होना स्वाभाविक ही है। परिवार वह स्थान है जहाँ स्त्री–पुरुष विवाह संस्कार के सम्पन्न होने के उपरान्त सन्तानोत्पत्ति तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की ओर मुड़ते हैं। जैनेन्द्र के शब्दों में –

विवाह ही है जो हमें संसार में पहुँचने का रास्ता देता है। बीस की पूर्णता होते ही इक्कीसवां वर्ष अपने आप उस पर आ जायेगा। विवाह की एक ऐसी ही सहज परिणति मैं मानता हूँ।[14]

---

14 . जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 20–21

जीवन नितान्त परीक्षण अथवा मुक्ति प्रयोग नहीं हो सकता। उसके लिए अवलम्ब की आवश्यकता है। मनुष्य इसी रूढ़ संस्था पर कायम है जो कि स्वयं विवाह पर टिकी है। विवाह को एक सामाजिक संस्कार माना है। स्त्री–पुरुष विवाह के माध्यम से ही परस्पर मिलते हैं तथा सन्तानोत्पत्ति में एक दूसरे के सहायक होते हैं। उनका कथा साहित्य बौद्धिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। उनमें मनुष्य की आत्मिक समस्या और द्वन्द्व का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र ने विभिन्न सम्बन्धों से अलग उन्हें मात्र स्त्री–पुरुष के रूप में जानने की चेष्टा की है। उन्होंने स्त्री–पुरुष के अर्न्तजगत की गहराई में प्रवेश करके दमित भावों की सहज अभिव्यक्ति का प्रयास किया है। जैनेन्द्र विवाह और परिवार को अनिवार्य रूप से स्वीकार करते हैं। उनके उपन्यास और कहानियों का कथानक वैवाहिक और पारिवारिक परिवेश में ही फलित हुआ है। जैनेन्द्र जी ने परिवार को वैवाहिक संस्कार सम्पन्न कराने हेतु मात्र ही माना है। विवाह के उपरान्त परिवार का दायित्व प्रारम्भ होता है। बच्चों के पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा आदि इसके आवश्यक तत्व हैं। व्यक्तित्व का समुचित विकास सुखी परिवार के सौहार्दपूर्ण परिवेश में ही संभव हो सकता है। विवाह की असफलता परिवार के लिए चिन्ता का विषय बन जाती है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में परिवार के लिए कोई उच्च आदर्श दृष्टिगत नहीं होता। 'सुखदा' में पारस्परिक तनाव के कारण बच्चे की शिक्षा स्वयं एक समस्या बन जाती है। पारिवारिक तनाव की स्थिति में व्यक्तित्व का विकास समाज में अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना पाता। 'त्यागपत्र' में एक विवाह के सफल न होने पर दूसरा सम्बन्ध संभव नहीं हुआ है, किन्तु 'मुक्तिबोध' में वैवाहिक अनुबंध भी प्रयोग मात्र रह गये हैं। विवाह जीवन के अनेक समझौतों का मूल है। मन को वश में रखना, झुकना, छोटा बनना, दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना,

निभाना आदि सभी तत्व प्रेम के लिए भले न हों परन्तु वे विवाह के लिए अनिवार्य हैं। सामाजिक दायित्वों से उलझा होने के नाते ही विवाह का विधान है। जैनेन्द्र परिवार के अस्तित्व का खण्डन समाज के हित में उपयोगी नहीं समझते। परिवार और विवाह समाज की बाह्य और अनिवार्य स्थितियाँ हैं। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में उत्पन्न होने वाली विषमता समाज को लेकर नहीं है, बल्कि मनुष्य की सच्चाई को लेकर प्रकट हुई है।

प्रेम और विवाह

जैनेन्द्र के साहित्य की सबसे बड़ी समस्या विवाह में प्रेम को स्वीकार करने के कारण ही उत्पन्न होती है। विवाह और प्रेम को वे जीवन सागर के दो समान्तर किनारों के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार वैवाहिक जीवन में यदि बाहर से आने वाले प्रेम को रोक दिया जाय तो एक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वैवाहिक जीवन विशाल ,है, सूक्ष्म नहीं। 'सुनीता' में पारिवारिक जीवन की उदासीनता से मुक्ति पाने के हेतु ही सुनीता और श्रीकान्त के बीच हरिप्रसन्न का प्रवेश होता है।

डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा के शब्दों में "ऐसे समय हरि का द्रवित काम अनायास ही फूट पड़ता है। वह अपने कर्तव्य को भूलकर सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता के निर्वसन सौन्दर्य दर्शन से हरि की दमितवासना शान्त होती है और वह सुनीता को उसके घर पहुँचाकर सदा के लिए पलायन कर जाता है।[15] जबकि सुनीता जिसने पति के आग्रह से हरि की इच्छा के सम्मुख आत्मसमर्पण किया था, पूर्ववत् पति के प्रेम की पात्री बनी रहती है।

15 डॉ० लक्ष्मी कान्त शर्मा–जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक और शैली तात्विक अध्ययन, पृष्ठ–2

'सुखदा' में सुखदा विवाह से पहले अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में जो सपने देखती है, वे पूरे नहीं होते। अभावग्रस्त स्थिति उसे बाहर से आये आकर्षणों के प्रति और प्रेरित करती है। लाल का भव्य व्यक्तित्व उसे इसलिए प्रभावित करने में समर्थ हो सका है, ऐसी स्थिति में घर का माहौल असन्तोषजनक हो जाता है, और पति–पत्नी का आत्मिक मिलन सम्भव नहीं हो पाता। श्री रघुनाथ सरन झालानी के विचार इस सदर्भ में द्रष्टव्य है –

'लाल के मुक्त, स्वच्छन्द और रहस्यात्मक चरित्र से वह आकृष्ट होती है' किन्तु उसके पति कान्त को लाल की देश–भक्ति में विश्वास नहीं है और इसी बल पर वह सुखदा में लाल के प्रति किंचित विरक्ति का भाव उत्पन्न करने में सफल होता है, किन्तु तभी लाल को उसके दल की ओर से मृत्यु–दण्ड सुनाया जाता है और इस अवसर पर वह सुखदा की सहानुभूति जीत लेता है और उसके ह्रदय में प्रेम को जागृत करता है।[16] जब यह बात कान्त को पता चलती है कि लाल सुखदा से प्रेम करता है तो उसे यह स्वीकार नहीं कि सुखदा यह महसूस करे कि वह विवाहित होने के कारण लाल से कदापि प्रेम नहीं कर सकती। सुखदा के लिए अधिकार की भावनाओं उसमें पहले भी नहीं थी, और अब तो वह उसको और भी अधिक स्वतन्त्रता देने को तत्पर है। 'कल्याणी' में कल्याणी और उसके पति का सम्बन्ध इतना शंका ग्रस्त होता है कि उनमें एक दूसरे के लिए समर्पण की भावना जागृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैनेन्द्र के उपन्यासों में पति की तरफ से पत्नी को प्रेम करने की पूरी छूट रहती है, पति कभी भी पत्नी के प्रति क्रुद्ध नहीं होता, किन्तु कल्याणी अपने पूर्व प्रेमी के प्रति अपने प्रेम को प्रकाशित करने में असमर्थ होती है, उसका प्रेम भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है। उसकी वेदना के मूल में प्रेम की

---

16 श्री रघुनाथ सरन झालानी – जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृष्ठ – 79

अप्राप्ति भी है। 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' में पति के जीवन में प्रेमिका का प्रवेश होता है। जैनेन्द्र ने स्वयं कहा है–"सामाजिक मर्यादा सत्य की साधना की राह में आप ही बनती है। आशय कि समाज की मर्यादा स्वयं स्थिर नहीं है ,विकासशील है।" सदाचार में आचार को पीछे मानिए, सत् पहले है। सत् के अनुसन्धान में आचार को आगे बढते ही जाना है। इस तरह दृढ सदाचार और सजीव सदाचार में हर कार्य में कुछ अन्तर देखा जा सकता है।[17]

जैनेन्द्र वैवाहिक जीवन में बाहरी प्रेम को अनैतिक कृत्य नहीं मानते। वे बिना संकोच के अपनी समस्त कहानियों और उपन्यासों में ऐसे विचारधारा को आधार बनाकर चले हैं। उनकी दृष्टि में वैवाहिक जीवन में प्रेम सम्बन्ध की स्वीकृति से सामाजिक मर्यादा भंग नहीं होती।[18] जैनेन्द्र प्रेम और विवाह दोनों को ही स्वीकार करते हैं। विवाह को प्रेम की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। इस सम्बन्ध में उन्हीं के शब्दों में –'प्रेम जीवन को बहलाने की वस्तु बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता, जीवन तो दायित्व है और विवाह वास्तव में उसकी पूर्णता की राह–उसकी शर्त।इस दायित्व से एक ख्याल व एक भावना में डूबकर कैसे मुक्ति पायी जा सकती है? प्रेम को इस दायित्वपूर्ण विवाह से कैसे विरोध करने दिया जाए? जीवन प्रेम से अधिक महत्व की, अधिक श्रेष्ठ और पवित्र वस्तु है। प्रेम जो आखिर में केवल एक आवेश एक भाव है उस पर[19] जीवन को कैसे भेंट कर दिया जाय। 'परख' में प्रेम, विवाह तथा जीवन इन तीनों बिन्दुओं को पात्रों और घटनाओं के माध्यम से चित्रित किया गया है। क्रमशः कट्टो, सत्यधन तथा बिहारी प्रेम, विवाह तथा जीवन के आदर्श

---

17 जैनेन्द्र कुमार – प्रेम और विवाह, पृष्ठ–97
18 जैनेन्द्र कुमार – प्रेम और विवाह, पृष्ठ–110
19. जैनेन्द्र कुमार – 'परख', पृष्ठ – 181

प्रतिनिधि हैं। डॉ० मनमोहन सहगल ने अपने विचार निम्नांकित शब्दों मे व्यक्ति किये हैं—

'कट्टों ने प्रेम के भावावेश में बिहारी को उस रूप में खो दिया—जिसमें उसका वैधव्य घुल सकता था, सत्यधन ने प्रेम की असारता पहचान कर विवाह की गरिमा में सार्थकता खोज ली और बिहारी जो दूसरों के लिए जीना ही जीवन मानता है, अपनी कर्मठता का सहारा लेकर एक सन्तुष्ट जीवन को पा सकने के सपनों में लीन हुआ, इस प्रकार तीनों मुख्य पात्र मिलकर एक सम्पूर्णता का निर्वाह कर रहे हैं।'[20] तीनों में निजता की प्रधानता है, तीनों प्रेम करते हैं, किन्तु तीनों उनके अलग—अलग स्वरूप को जानते और समझते हैं। इसलिए कट्टो प्लेटोनिक भाव की तरफ, सत्यधन दायित्व भाव की तरफ और बिहारी उत्सर्ग भाव की तरफ अग्रसर हो जाते हैं। जैनेद्र की दृष्टि में विवाह सामाजिक संस्था है, उससे परिवार बनता है। उसे केवल दो का निजी सम्बन्ध समझना और उस आधार पर विवाह को स्थापित करना गलत होगा, क्योंकि तब उसकी पूर्णता सामाजिक न होकर कामुक होगी।[21] पति—पत्नी का सामाजिक होना आवश्यक है। देश, समाज और राष्ट्र के प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है जिसे घर की चहारदीवारी से बाहर आकर ही पूर्ण कर सकते हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि में विवाह दायित्व लाता है और प्रेम मुक्त है।[22] जैनेन्द्र जी की विवाह और प्रेम सम्बन्धी कल्पना 'विवर्त' में ही सफल हो सकी है। वहाँ विवाह और प्रेम समान्तर रूप में चलते हैं। दोनों सम्बन्धों में प्रेम और इज्जत का भाव विद्यमान रहता है। प्रेमी और पति को लेकर मानसिक तनाव की स्थिति उत्पन्न नहीं होती। पति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न, अत्यन्त सुशिक्षित और निःशंक प्रकृति के हैं। इसलिए पति की

---

20 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्याकन और मूल्याकन, पृष्ठ–108

21 जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ–19

22 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत, पृष्ठ – 35

ओर से कोई दबाव उत्पन्न नहीं होता है। भुवनमोहिनी और जितेन के प्रेम सम्बन्धों के कारण परिवार पर कोई असर नहीं पड़ता। जितेन की प्रेम भावना अतृप्ति के कारण क्रान्ति में परिवर्तित हो जाती है। जितेन की सभी क्रियायें अप्राप्ति से प्रकट होती हैं, किन्तु उन सभी क्रियाओं का भुवनमोहिनी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह जितेन की विवशता को जानते हुए भी उसके प्रति अपार स्नेह और प्रेम रखती है। जैनेन्द्र का उद्देश्य विवाह में प्रेम के माध्यम से स्वस्थ वातावरण को स्थापित करना है। वे पति–पत्नी की निकटता के लिए बाहर से प्रवेश करने वाले प्रेम को आवश्यक मानते हैं। 'सुनीता' में वीरान जंगल में जब सुनीता हरि प्रसन्न के सम्मुख पूर्ण समर्पण करने के उपरान्त लौटती है तो उसका मन शान्त रहता है। वह पुनः अपने घर परिवार में सुख शान्ति का माहौल स्थापित प्रदान करने में समर्थ होती है। 'सुनीता' में जैनेन्द्र का आदर्श अपनी पूर्णता पर परिलक्षित होता है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का द्वन्द्व केवल प्रेम को लेकर ही नहीं उत्पन्न होता, उसमें घर–बाहर के मध्य असन्तुलन की स्थिति ही विशेष खटकती है। उन्होंने विवाह में प्रेम को दो चार स्थलों में ही घटित होते हुए नहीं दर्शाया है, बल्कि उनका सम्पूर्ण कथा साहित्य इसी पर आधारित है। उनके अनुसार पत्नी–पति में प्रेमी–प्रेमिका समाप्त नहीं हो सकते। अलग से उन्हें होना ही है। दोनों का होना बन्द नहीं होने वाला।[23] जैनेन्द्र की विवाह और प्रेम सम्बन्धी विचारधारा समसामयिक अधिकांश लेखकों में दृष्टिगत होती है। प्रत्येक पुरुष और स्त्री में एक दूसरे के प्रति काम भावना की इच्छा होती है। चाहे वह व्यक्ति किसी भी स्तर का हो। वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ में सब कुछ अनजाना रहता है। परन्तु धीरे–धीरे पति–पत्नी के मध्य स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और उनका बाहरी आकर्षण कम हो

---

23 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत., पृष्ठ – 68

जाता है। जैनेन्द्र के अनुसार 'विवाह' जीवन को विस्तार देता है परिधीय केन्द्र नहीं देता है। विवाह के माध्यम से हम अपने प्रेम का विस्तार करने का समय पाते हैं। अगर विवाह प्रेम को बन्धन में डालने वाली वस्तु हो जाये, तो परिवार काल कोठरी है।

स्वत्वमूलक परिवार जकड़बन्द बन जाता है। उसमें जीवन का विकास रुक जाता है, किन्तु विवाह द्वारा प्रेम बन्द नहीं होता, बल्कि फैलने के लिए स्थान प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी सत्यता प्रकट होती है। उनकी मान्यता है कि मर्यादा और प्रेम के मध्य छल के प्रवेश से मर्यादा की रक्षा सम्भव नहीं है। मर्यादा की रक्षा और प्रेम की इससे सिद्धि होती है, जहाँ इन दोनों का समन्वय बैठता हो, वहीं मर्यादा की रेखा है। यदि सुरक्षा अकेले चले तो असंगति उत्पन्न हो जायेगी और उच्छृंखला आ जायेगी। वस्तुतः जैनेन्द्र प्रथम लेखक थे, जिन्होंने सामाजिक नियमों को ध्यान में रखते हुए भी जीवन में प्रेम को अनिवार्य रूप में स्वीकार किया है। उनके जीवन और साहित्य का एक मात्र उद्देश्य सत्य का उद्घाटन करना है। उनका साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने में भी समर्थ थे। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में पुरातन एवं नूतन दोनों परम्पराओं, विचारधाराओं के पात्र हैं। जैनेन्द्र प्रेम और विवाह दोनों को स्वीकार करते हैं। जैनेन्द्र जी के अनुसार विवाह को भोग में ही सीमित कर देना अनिष्टकर है।

प्रेम विवाह

जैनेन्द्र प्रेम और विवाह को समानान्तर रूप से स्वीकार करते हुए भी प्रेम–विवाह के पक्ष में नहीं है। उन्होंने अपने साहित्य में प्रेम–विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया है। यद्यपि प्रेम मूलक स्वतन्त्रता को देखते हुए उनका यह दृष्टिकोण असंगत सा

प्रतीत होता है। जैनेन्द्र के अनुसार विवाह सामाजिक संस्कार है, अतः उसमे समझौते के हेतु अवकाश रहता है। प्रेम–विवाह व्यक्ति और समाज दोनो दृष्टियों से हानिप्रद है। उनके अनुसार, विवाह में प्रेम का आग्रह इतना अनिवार्य नहीं, जितना माता–पिता, गुरुजन, बन्धु–बांधव का सयोग और आशीर्वाद।[24] प्रेम–विवाह आवेश और आवेग की स्थिति मे ही होता है। उस समय विवेक बुद्धि कार्य नहीं करती। प्रेम मुक्त होता है। वह दायित्व नहीं ग्रहण करता, किन्तु जब प्रेम को विवाह में बद्ध कर दिया जाता है तो उसमें पारस्परिक सौहार्द से अधिक तनाव की सम्भावना रहती है। गृहस्थी यथार्थ जगत की घटना है। प्रेम अतीन्द्रिय तथा आत्मलोक की अभिव्यक्ति है। जैनेन्द्र के अनुसार व्यवस्थित विवाह में पारस्परिक तनाव होने पर भी एक दूसरे के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना नहीं उत्पन्न होती। 'प्यार का तर्क', कहानी में उन्होंने प्रेम–विवाह का पूर्ण निषेध किया है। इस कहानी में उन्होंने प्रेम–विवाह सम्बन्धी विचारों को बहुत स्पष्टता के साथ वर्णित किया है। जैनेन्द्र के अनुसार प्राप्ति की कामना में प्रेम का पोषण नहीं होता, प्रेम में त्याग अनिवार्य है। प्रेम–पात्र से दूरी होने पर भी आत्मिक स्तर पर मिलन–सुख का सा आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु प्रेम में वैवाहिक बन्धन उत्पन्न करने से घृणा अथवा तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो कि असहनीय है। प्रेम के अभाव में जीवन किसी प्रकार सम्भव हो सकता है, किन्तु घृणा मनुष्य के आपस के स्नेह और प्रेम को सदैव के लिए नष्ट कर देती है। विवाह रूमानी प्रेम पर टिक नहीं सकता। जैनेन्द्र के शब्दों में–

'अपने को लेकर स्त्री–पुरुष को विवाह के क्षेत्र में साथी चुनने के लिए निकल जाना पड़े, इस अवस्था को बहुत उन्नत सामाजिक

24. जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 40

व्यवस्था नहीं मानता।[25] इस सन्दर्भ में डॉ० कुसुम कक्कड़ के विचार द्रष्टव्य हैं, "जैनेन्द्र विवाह के सम्बन्ध में पुरूषार्थ से अधिक भाग्य को महत्व देते है। भाग्य के निर्णय पर व्यक्ति सन्तुष्ट रहता है। उसमें द्वन्द्व या आग्रह की स्थिति नहीं उत्पन्न हो सकती। पुरूषार्थ में व्यक्ति का अहं प्रबल रहता है और दोनों ओर से आग्रह होने के कारण जीवन तनावपूर्ण तथा असंतोष की स्थिति से गुजरता है। जैनेन्द्र विवाह के हेतु स्वयं वर के चुनाव को उचित नहीं मानते। वे विवाह में धार्मिक वृद्धि को आवश्यक समझते हैं।'[26]

इस प्रकार जैनेन्द्र के कथा साहित्य में प्रेम–विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया गया है। उनके कथा साहित्य में प्रेम–सम्बन्ध अधिकतर विवाह के बाद ही दिखाई देते हैं, 'विवर्त' में विवाह के पूर्व ही प्रेम सम्बन्ध की कल्पना की गयी है। किन्तु प्रेम–विवाह सम्भव नहीं हो सका है। जैनेन्द्र के अनुसार प्रेम जीवन का अनिवार्य अंग है। प्रेम के बिना जीवन जडवत हो जाता है, किन्तु प्रेम विवाह द्वारा प्रेम में उत्सर्ग के स्थान पर दायित्व का भाव बढ़ जाता है, व्यवस्थित विवाह के पश्चात् प्रेम स्थायी है। वस्तुतः जैनेन्द्र ने प्रेम के स्थायित्व के हेतु प्रेम–विवाह का निषेध किया है। 'त्यागपत्र' में मृणाल का प्रेम–विवाह सम्भव नहीं हो सका है। मृणाल सामाजिक मर्यादा को स्थायी रखते हुए भी अपने अन्तस् के प्रेम को विनष्ट नहीं होने देती। उसके हृदय में अपने प्रेमी पात्र के प्रति घृणा की भावना जाग्रत नहीं होती। जैनेन्द्र के पात्र आजीवन भाग्य के थपेड़े खाते हुए भी विवाह के दायित्व को सामाजिक मर्यादा के अन्तर्गत ही स्वीकार करते हैं। वैवाहिक जीवन चाहे कितना ही कष्टमय क्यों न हो जाये, किन्तु वे अपने आदर्श से विचलित नहीं होते। 'त्रिवेणी' में प्रेम–विवाह

---

25 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न, पृष्ठ–168–169

26 डॉ० कुसुम कक्कड़ – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ – 191

सम्भव न हो सकने के कारण त्रिवेणी का जीवन बहुत खिन्नता और रोष में व्यतीत होता रहता है। विवाह के बाद भी उसका प्रेम नष्ट नही होता। पर प्रेमी के आने से उसकी सारी मनःस्थिति अभिभूत हो जाती है। इसमें प्रेम की पीड़ा से छूटकारे की इच्छा नहीं है। प्रेम वात्सल्य में परिणत होकर सारा का सारा अभाव भावों से भर देता है। त्रिवेणी की झुंझलाहट उसकी विपन्नता की ओर भी इंगित करती है।

निष्कर्षतः जैनेन्द्र की दृष्टि में प्रेम–विवाह उचित नहीं है, किन्तु विवाह के बाद भी प्रेम बना रहता है। प्रेम को अक्षुण्ण बनाने के लिए विछोह उपयोगी है। ऐलिस महोदय भी प्रेम–विवाह के पक्ष में नहीं है। जैनेन्द्र के विचारों से उनका स्पष्ट साम्य दृष्टिगत होता है। उन्होंने प्रेम–विवाह के निषेध हेतु समाज तथा परिवार की ओर से उत्पन होने वाली बाधाओं को आवश्यक माना है।[27] जैनेन्द्र के विचारों पर भारतीय संस्कृति का भी प्रभाव लक्षित होता है। जैनेन्द्र जी विवाह को मां–बाप द्वारा ही सम्पन्न होना मानते हैं और प्रेम विवाह का पूर्णतः निषेध करते हैं।

जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानियों में प्रेम और विवाह को लेकर ही विशेष विवेचन किया गया है, किन्तु अन्तर्जातीय विवाह का सामाजिक दृष्टि से निषेध नहीं किया है। जैनेन्द्र की समस्त रचनाओं में जातिवाद को लेकर कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती। उन्होंने कभी भी यह प्रकट नहीं किया है कि जाति–भेद के कारण विवाह सम्भव नहीं हो सकता। विवाह के सम्बन्ध में उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह को पूर्णतया स्वीकार किया है। यही कारण है कि उन्होंने जाति–भेद की समस्या को अपनी रचनाओं में गम्भीरता से विवेचित नहीं किया। 'कल्याणी' में उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह एवं उससे मिलने वाले लाभों

27. हेवलाक ऐलिस – यौन मनोविज्ञान, पृष्ठ – 25[illegible]

पर विस्तृत प्रकाश डाला है। यह अन्तर्जातीय विवाह विच्छेद का कारण नही बना, बल्कि परस्पर एक दूसरे को न समझ सकने और हर स्थिति में सामंजस्य का अभाव ही विच्छेद का कारण था।

अन्तर्जातीय विवाह की सफलता और सार्थकता ने छुआछूत जैसे संकीर्ण विचारों को समाज में पनपने नहीं दिया। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य में जाति–भेद के प्रश्न को साधारण समझकर छोड़ दिया है। उसी प्रकार समाज के अछूत वर्ग पर भी अलग से विचार नहीं किया है। सत्य यह है कि वे मनुष्य को मात्र 'व्यक्ति' के रूप में जानने का प्रयास करते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में जाति–भेद अथवा ऊँच–नीच का भेद विशेष महत्व नहीं रखता।

अनमेल विवाह

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक भयंकर सामाजिक दोष है। नारी परतन्त्र है, अतः बहुधा उसी का शोषण हुआ है। यही कारण है कि भारतीय समाज में अनमेल विवाह का रूप बहुधा बृद्ध विवाह ही होता है, जिसमें किशोरावस्था की लड़कियों का विवाह वृद्ध पुरूषों से होता है। वैवाहिक समस्या का इस प्रकार महत्वपूर्ण पहलू अनमेल विवाह हैं, जो दहेज प्रथा तथा आर्थिक निर्धनता के कारण समाज में प्रचलित हुआ। अनमेल विवाह की परिणति अंततः किसी न किसी रूप में दुःखद ही हुआ करती हैं। ऐसे विवाह में स्त्री का आन्तरिक असन्तोष खुलकर भले ही व्यक्त न हो पाये, परन्तु जीवन भर उसे अन्दर–अन्दर घुटना पड़ता है। 'त्यागपत्र' उपन्यास में जैनेन्द्र मृणाल के अनमेल विवाह से न केवल सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते हैं, वरन नारी धर्म, मानव धर्म तथा पातिव्रत्य धर्म जैसा गम्भीर सामाजिक–सांस्कृतिक प्रश्न भी उपस्थित करते हैं। मातृ–पितृ –विहीन मृणाल अपने भाई तथा भाभी की आश्रित है। वह शीला के भाई से

विवाह के पूर्व ही प्रेम करने लगती है, जिसे आगे गृहिणी के आदर्शों में ढली भाभी स्वीकार नहीं कर पाती और उसकी शादी एक बड़ी आयु के पुरुष से कर दी जाती है। इस सन्दर्भ में जैनेन्द्र के विचार द्रष्टव्य हैं –

'मृणाल' नये घर में समझौता न कर सकी और प्राय. अपने पति के हाथ बेतों से मार खाती है[28] और अन्त में यह भेद खुल जाने पर कि मृणाल शादी से पूर्व शीला के भाई जो अब कहीं सिविल सर्जन है तथा आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा किए हुए हैं, से प्रेम करती थी, पति उसे घर से निकाल देता है। मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से उस सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण कर देती है–"मैं स्त्री धर्म को पति धर्म नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे। वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा मैं तेरा पति नहीं हूँ तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती। पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।[29]

सेक्स की समस्या

स्त्री–पुरुष के लैंगिक सम्बन्धों का अध्ययन सेक्स के अन्तर्गत है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में अथवा उससे भी पूर्व स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की सामाजिक पृष्ठभूमि साहित्यिक विषय वस्तु का प्रधान अंग थी, किन्तु उत्तर काल में जबसे मनुष्य का अध्ययन औपन्यासिक सामग्री का आधार बना, तबसे इन सम्बन्धों का चित्रण मूख्य रूप से लैंगिक सम्बन्धों के घेरे में विश्लेषण पाने लगा। यही कारण है कि

28 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 28
29 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 62

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का विवेचन करने के लिए स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में सैक्स की समस्या को अध्ययन का विषय बनाना ठीक प्रतीत होता है। डॉ० मनमोहन सहगल के विचारानुसार –

'आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध किया है कि मानव–जीवन वासना से परे हो ही नहीं सकता। वासना श्रेय हो या हेय, यह जीवन का अनिवार्य अंग है।[30] जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में स्त्री–पुरुष पात्रों में जीवन के प्रति असन्तोष मानसिक तनाव और लैंगिक विकारों का विशेष चित्रण उपलब्ध है। इसी से वे पात्र अधिकतर कुंठित एवं असाधारण हैं। उनके कथा साहित्य का मूल अमुक्त वासना है, किन्तु सबकी प्रतिक्रिया अलग–अलग है। इसलिए प्रत्येक पात्र व्यक्ति के समष्टि का प्रतिनिधि है। 'परख' में सेक्स की पृष्ठभूमि सामाजिक है। कट्टो का सत्यधन को चाहकर भी न पा सकने का कारण सामाजिक प्रतिबन्ध ही तो है। सत्यधन के विवाह पर कट्टो की प्रतिक्रिया भी अपनी सामाजिक स्थिति से असन्तुष्ट होने के कारण ही थी और बाद में बिहारी को पाकर भी जब वह समाज की कुदृष्टि के कारण उसकी समूची बन सकने में असमर्थ रही, तो बलात् एक उदात्त अन्त की तरफ मुड़ गयी। कट्टो के जीवन का कच्चा–चिट्ठा वास्तव में सेक्स की चाहत को रोकने तक ही सीमित है। उसकी सेक्स कथा का आधार सामाजिक बन्धन है, उसमें मानसिक अमुक्ति का कोई स्थान नहीं। 'त्यागपत्र' की मृणाल की भी यही दशा है। शीला के भाई को न पा सकने का कारण भी सामाजिक है। पति से टूट कर कहीं भी ठिकाने का अभाव सामाजिक रचना–विधान के कारण है और यह जानते हुए भी कि कोयले वाला जीवन नहीं पार करेगा, उसके प्रति समर्पण भी सामाजिक व्यवस्था है। 'परख' और 'त्यागपत्र' में सेक्स का स्वरूप सामाजिक है। 'सुनीता' में जैनेन्द्र ने सेक्स को हरि प्रसन्न और

---

30 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्याकन, पृष्ठ–73

सुनीता के जीवन में लैंगिक संघर्ष पर आधारित किया है। यहाँ दोनों का मानसिक द्वन्द्व असामाजिक है और अवसर पाकर दैहिक स्तर पर भी उतरता है। 'कल्याणी' 'सुखदा', 'व्यतीत' और 'विवर्त' के पात्रों में काम की अमुक्ति की स्पष्ट प्रतिक्रिया दीख पड़ती है। इसी से उनके जीवन को प्रवाह मिला है। सेक्स उनकी मूल समस्या है। कल्याणी के दाम्पत्य में असामंजस्य का कारण लैंगिक है, सामाजिक नहीं। विवाह के पहले वह प्रीमियर से प्रेम करती थी। डॉ० असरानी ने दुष्टतापूर्वक उस पर वेकार का लांछन लगाकर बदनाम किया और विवाह के क्षेत्र में उसकी उम्मीदवारी हल्की करके अहसान रूप में उससे स्वयं विवाह करने का प्रस्ताव रखा। कल्याणी ने सेक्स मार्ग की इस कुण्ठा को जीवन में तनाव पैदा नहीं करने दिया। वह सब कुछ सहती भी गयी उससे परोक्ष में पति को सोचने के लिए विवश भी किया और अन्दर ही अन्दर जीवन को न्यौछावर कर डाला। 'सुखदा' में सुखदा अनेक समृद्ध कल्पनाओं को लिए हुए पति गृह में आयी थी, निर्धन पति के कारण जब सब पर पानी फिर जाता है, तो मौका देखकर वह मचल उठती है। लाल के करीब जाने से उसकी इच्छा की पूर्ति की सम्भावना हुई तो गृहस्थ जीवन को तोड़ने के प्रयास तीव्र हो गये। सुखदा लाल के पौरुष की ओर आकर्षित होकर उस पर अपना तन न्यौछावर कर बैठी। यहीं सुखदा की हार हो गयी। उसकी सेक्स भावना हर क्षेत्र में प्रताड़ित रही, इसलिए उसकी प्रतिक्रिया नष्ट होने लगी। उसने स्वयं को खुद ही नष्ट कर डाला। मूलतः वह काम–मुक्ति का ही शिकार थी।

'विवर्त' और 'व्यतीत' जैनेन्द्र के ऐसे उपन्यास हैं, जहाँ काम की समस्या तो सहज है, किन्तु उसका निवारण 'सुनीता' की पद्धति से हुआ है। 'विवर्त' में जितेन आर्थिक समस्या के कारण भुवनमोहिनी को अपनी न बना सका और इसका आघात उसको क्रान्तिकारी बनाने में सफल हो गया। व्यतीत का नायक जयन्त अनिता के प्रति लैंगिक

आकर्षण के रहते हुये, उसके दूर के सम्बन्ध में बहन होने के नाते, उसे पत्नी के रूप में न पा सका, तो नारी के प्रति बेवफाई की भावना उसके अर्न्तमन को दूषित कर गयी। 'जयवर्धन मे सेक्स की समस्या ने विचित्र रूप ले लिया। यहाँ सेक्स की माँग उतनी ही तीव्र और अवरोधों को उखाड़ फेंकने वाली है, जितनी हरि प्रसन्न–सुनीता, सुखदा या लाल में, किन्तु यहॉ लेखक ने उस भावना को संयम और त्याग का ऐसा चोला पहना दिया है कि इला और जय एक दूसरे के लिए तीखी कामना से पीड़ित होने के कारण बिना विवाह बन्धन में बंधे ही संग–संग रहते हैं। जैनेन्द्र की बदली हुई प्रवृत्ति 'अनामस्वामी' में प्रकट होती है। उदिता अमेरिका में जाकर केवल कामेच्छा की तृप्ति के लिए एक साथ दो–दो पुरुषों की बनकर और फिर भी आर्थिक, सामाजिक एवं बदलते हुए नैतिक मूल्यों की दृष्टि से स्वाधीन जीवन जीने को तैयार हैं।

जैनेन्द्र प्रेम व्यापार को इन्द्रियातीत नहीं मानते और न ही वासना को प्रेम का विरोधी मानते हैं। उनका विश्वास है कि हर साधना के पहले कामनाओं की तृप्ति आवश्यक है। जैनेन्द्र की दृष्टि में काम वासना की तृप्ति भी उतनी ही बड़ी साधना है जितनी कैवल्य की उपलब्धियाँ। सेक्स का क्षेत्र हो या प्रेम का परिचर्या करने वाली मात्र भुवनमोहिनी हो अनिता हो या सुनीता–सबको एकाग्र भाव से समर्पित उपचार करना ही होगा, तभी अपेक्षित फल की प्राप्ति सम्भव है। उसके बिना परछाईं को तलवार से काटने के जैसा व्यर्थ प्रयत्न है। जैनेन्द्र सेक्स को व्यक्ति की क्रियाओं की एक चालक शक्ति मानते हैं, किन्तु उसी को एक मात्र एक चालिका नहीं मानते । यही कारण है कि कट्टो, मृणाल, सुनीता, उदिता या वसुन्धरा आदि को सेक्स समस्या से जूझते हुए जैनेन्द्र ने सब जगह यही निष्कर्ष निकाले हैं। वे व्यक्ति को व्यक्ति के परिवेश में विभिन्न प्रतिक्रियाओं में लिपटा देखना अधिक उपयुक्त मानते हैं। अमुक्त वासना विकार का कारण हो सकती है, तनाव उत्पन्न कर सकती है, किन्तु उसका आचार हर

एक दशा में अलग होगा। सेक्स के लिए यही जैनेन्द्र जी का दृष्टिकोण दिखायी पड़ता है।

सृष्टि के मूल में काम है। सृष्टि ईश्वर की कामना का ही परिणाम है। संसार स्त्री–पुरुष मय है। उनके मध्य का आकर्षण का केन्द्र काम–भावना ही है। अकेले जीवन की कल्पना निराधार है। जैनेन्द्र के अनुसार जब अकेलापन घेर लेता है तभी काम उसे उद्धार करने के लिए आता है। काम जीवन का अनिवार्य सत्य है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में काम द्वारा भोगोन्मुखता को प्रश्रय न मिलकर उसके प्रेम मूलक रूप को ही स्वीकार किया गया है। प्रेम में आत्मदान के साथ शरीर दान भी अनिवार्य ही नहीं स्वाभाविक भी है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में 'प्रेम' शब्द का व्यापक अर्थों में प्रयोग किया गया है, अपनी समग्रता में प्रेम और सेक्स वर्जित नहीं हैं। डॉ० कुसुम कक्कड़ के शब्दों में राधा और मीरा के आदर्श को ही उन्होंने अपने साहित्य में विशेषतः स्वीकार किया है।[31] राधा–कृष्ण और मीरा भारतीय साहित्य ही नहीं, जीवन में ऐसे दो असामान्य और चिरन्तर आदर्श हैं, जिनके प्रेम के सम्बन्ध में शंका का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। उनके वैवाहिक जीवन में भी प्रेम अपनी चरम सीमा पर आरुढ था। राधा और मीरा के प्रेम इन्द्रियापेक्ष नहीं हैं, वरन् उसमें अतीन्द्रियता दृष्टिगत होती है। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य में काम के सहज वेग को ही स्वीकार किया है। अर्थ और काम दोनों में से किसी को अंतिम नहीं मानते। अर्थ और काम तो जीवन की समानान्तर रेखाएँ हैं, जिनके मध्य जीवन यात्रा सम्भव होती है। उन्होंने सृष्टि के मूल में भी ईश्वरीय शक्ति की कल्पना की है। जैनेन्द्र के अनुसार सम्भोग की स्थिति में स्त्री–पुरुष इतने अहं शून्य हो जाते हैं कि उन्हें अपने अस्तित्व का बोध नहीं रहता। उस स्थिति में सृष्टि सम्भवतः ईश्वरी शक्ति का परिणाम प्रतीत होती है।[32]

---

31. डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ – 195
32 जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 116

जैनेन्द्र ने सेक्स को मात्र भोगाकांक्षा के रूप में ही स्वीकार नहीं किया है, बल्कि अर्ध–नारीश्वर का भाव ही वह मूल सूत्र मानते हैं, जिससे स्त्री–पुरुष परस्पर बंधे हैं, स्त्री–पुरुष दोनों अपने में अपूर्ण हैं। वह एक दूसरे में अपने अभाव की ही पूर्ति नहीं करते, बल्कि वे पूर्णतया एकमेव होकर अपने अहं को विचलित करते हैं। जैनेन्द्र ने काम भावना में शारीरिक से अधिक आत्मिक स्थिति को स्वीकार किया है। कामवासना यदि शरीर तक ही सीमित रहे तो उसमें तृप्ति की भावना नहीं पैदा हो सकती। जब वह शरीर से आत्मा की ओर उन्मुख होती है तभी उसमें वैराग्य और सन्तुष्टि की भावना उत्पन्न होती है।

जीवन में सेक्स की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए जैनेन्द्र ने कथा साहित्य में भी उसकी अपेक्षा स्वीकार की है। इनके अनुसार अगर जीवन में सेक्स को बाहर निकाला जा सकता तो कथा साहित्य, जीवन–मर्म का शोध न कर पाता। 'एकरात' 'रत्नप्रभा' 'निर्मम' 'राजीव' और 'भाभी' आदि कहानियों में उन्होंने स्त्री–पुरुष के निर्वैयक्तिक सम्बन्ध को ही स्वीकार किया है। वस्तुतः जैनेन्द्र के अनुसार काम को वासना मानने में घबराने की आवश्यकता नहीं है। जैनेन्द्र ने काम को यज्ञ के रूप में स्वीकार किया है। काम में व्यक्ति झपटकर भोग लेना चाहता है, यज्ञ में कहीं बिछकर मिट जाना चाहता है।[33] 'सुनीता' उपन्यास तथा 'एकरात' कहानी में आत्मतुष्टि के अनन्तर एक दूसरे से दूर रहने में उन्हें शान्ति ही मिलती है तथा काम–जन्य छटपटाहट समाप्त हो जाती है। डॉ० कुसुम कुक्कड़ के शब्दों मे– 'जैनेन्द्र' ने काम चर्चा को ब्रह्मचर्य के रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि उस अवस्था में व्यक्ति की अहंचर्या पूर्णतः विनष्ट हो जाती है।[34]

---

33 जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 124
34 डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ – 197–198

जैनेन्द्र ने समाज की परिधि के अन्तर्गत विवाह, परिवार और जीवन की विविध समस्याओं पर अपने विचारों को व्यक्त किया है। इन क्षेत्रो मे प्रायः जीवन को संतुलित रखने के लिए अनेक प्रयास करने पडते हैं। जिनका अभाव जैनेद्र के पात्रों का जीवन दूभर करता है और उन्हें आस्था–अनास्था के बीच भटकने को छोड देता है। जैनेन्द्र ने ऐसी विचित्र समस्याओं के कतिपय समाधान भी प्रस्तुत किए है।

विवाह–विच्छेद

जैनेन्द्र ने जिस प्रकार प्रेम–विवाह की मान्यता नहीं दी है, उसी प्रकार विवाह–विच्छेद (तलाक) का भी पूर्ण रूपेण निषेध किया है। कथाकार ने सामाजिक समस्याओं को आध्यात्मिक स्तर पर हल करने का प्रयत्न किया है। पति–पत्नी सामाजिक बन्धनों में बँधे होते हैं। प्रत्येक दम्पत्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे एक विचारधारा के हों, ऐसी स्थिति में दोनों को एक दूसरे के दृष्टिकोण का आदर करना पडता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति पूर्ण रूप से न अच्छा है न बुरा। जैनेन्द्र के अनुसार –

'मेरा मानना है कि दुनिया में कोई दो व्यक्ति ऐसे नहीं हुए जो एक दूसरे के लिए जन्में कहे जा सकें। खिंचाव और तनाव तो स्त्री–पुरुष में प्रकट और सहज है। सामंजस्य इसलिए सहज नहीं है। उसे साधना होता है। उसके लिए संयम और अभ्यास की जरूरत होती है।[35] यदि स्त्री–पुरुष में एक दूसरे के दोषों को देखकर सम्पन्ध–विच्छेद की घटना घटित होती है तो उसे स्वाभाविक नहीं माना जा सकता। जैनेन्द्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या

35 जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 66

पुरुष सदोष है, अतएव समाज और परिवार में समझौते के बिना एक पल भी नहीं चला जा सकता। जैनेन्द्र पति–पत्नी के जीवन भर के सम्बन्ध–विच्छेद को उचित नहीं मानते। उनके अनुसार किन्हीं विषम परिस्थितियो में पति–पत्नी का एक साथ रहना पारस्परिक सहानुभूति को पूरी तरह नष्ट करने वाला हो जाता है, तब उन्हे कुछ समय तक एक दूसरे से अलग रहना चाहिए। अलग रहने में पारस्परिक सहृदयता पूर्णतया नष्ट नहीं होती, केवल वैचारिक तनाव बना रहता है। तनाव में दूरी उपयुक्त है, किन्तु सम्बन्ध तोड़ देने से भविष्य में प्रेम की सम्भावना का प्रश्न नहीं उठता। उनके अनुसार विवाह का मूल प्रेम है। प्रेम के अभाव में वह सुखी जीवन की कामना ही नहीं करते। 'विच्छेद' कहानी में उन्होंने वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होने वाले तनाव से बचने के लिए समझौते को आवश्यक माना है। वस्तुतः जैनेन्द्र के पात्रों को वैवाहिक जीवन में चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाने पड़े, किन्तु वे सम्बन्ध विच्छेद के लिए न्यायालय के दरवाजे नहीं खटखटाते। व्यक्तिगत सम्बन्धों में न्याय को आधार बनाकर वे पारस्परिक निष्ठा को नष्ट करना श्रेयष्कर नहीं समझते। कभी–कभी विवाह उनके समक्ष विवशता बन जाता है, किन्तु वे अपने आदर्शों से विचलित नहीं होते। यही कारण है कि उनकी प्रेमिकाएं पति के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव नहीं रख पाती। उनके पति पात्र भी अधिकतया बहुत नम्र थे। वे आन्तरिक पीड़ा की पूंजी सजोये हुए सारा जीवन व्यतीत कर सकते हैं, किन्तु सम्बन्ध विच्छेद की कल्पना भी नहीं करते। 'सुखदा' में पति–पत्नी एक दूसरे से दूर चले जाते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करते। 'त्यागपत्र' में मृणाल सम्बन्ध विच्छेद को आवश्यक नहीं समझती। पति के द्वारा घर से बाहर निकाल दिये जाने पर ही वह बाहर जाती है। 'व्यतीत' की चन्द्रकला ही ऐसी पत्नी है जो अपने पति से अलग होकर पुनर्विवाह करती है और सुख भोग प्राप्त करती है चन्द्रकला अपने पति से

अलग हो जाती है लेकिन उसके मार्ग में बाधा नहीं बनती। डॉ० मनमोहन सहगल के इस सम्बन्ध में विचार द्रष्टव्य हैं –

'चन्द्री का आदर्श तो इस तथ्य में है कि वह कदापि जयन्त के मार्ग का विघ्न नहीं बनती और न ही अनिता–जयन्त मिलन पर कभी ऑख मैली करती है, बल्कि अवसर आने पर स्वयं रसोईघर में धरती पर सोकर भी वह जयन्त और अनिता का विस्तर साथ लगाकर जयन्त की भावनाओं का आदर करती हैं। चन्द्री उच्च चेतना और दृढ चित्त की उदार महिला है।[36]

वेश्या का स्वरूप

वेश्या नारी का जीवन भारतीय समाज में एक अभिशप्त जीवन की सृष्टि करता है। वैश्यावृत्ति भारतीय समाज की एक गम्भीर समस्या है, जो अत्यधिक प्राचीन काल से समय–समय पर अपने स्वरूप और उद्भव स्रोतों में परिवर्तन के साथ चली आ रही है। लेकिन इसके मूल में प्रायः प्रत्येक काल में आर्थिक आधारहीनता ही रही है। भारतीय समाज में वैधव्य की समस्या, दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा, बहुपत्नीत्व आदि ऐसी सामाजिक कुप्रथाएँ रही हैं जो त्रस्त, निरीह नारी को जीवित रहने तथा आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने के लिए वेश्या बनने को मजबूर करती रही हैं। संयुक्त परिवार के विघटन के फलस्वरूप इस समस्या ने और उग्ररूप धारण किया, क्योंकि उसके द्वारा निराश्रित नारियों की जो आर्थिक सुरक्षा मिलती थी, वह समाप्त हो गयी। पति के मरने के बाद बिधवा नारी आर्थिक दृष्टि से निराधार, परिवार द्वारा उपेक्षित, समाज से लांक्षित पीड़ित तथा प्रताडित एकाकी परिवार की सीमा से निकल कर व्यापक समाज की

---

36 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन, पृष्ठ – 71

सीमा में फेंक दी जाती है। अतः इस अवस्था के अन्तर्गत इच्छा और अनिच्छा, छल तथा कपट से इस जीवन को अपना लेना कोई बहुत अनर्गल नही लगता। इसके अलावा उचित संरक्षण के अभाव तथा अनमेल वैवाहिक सम्बन्धों से असफल जीवन में साम्पत्तिक अधिकारों से अलग रहकर नारी को वेश्या जीवन अपना लेना कोई आश्चर्यजनक नहीं है।

संसार के सभ्य कहलाने वाले देशों में भी, जहॉ उसे जीविकोपार्जन का अवसर भी उपलब्ध है, वैश्या जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियाँ विद्यमान हैं। ऐसी दशा में वहॉ वेश्या समस्या के मूल में मात्र आर्थिक आधारहीनता ही नहीं है, बल्कि वहाँ आर्थिक—विषमता, सांस्कृतिक—गतिरोध, भौतिकतावादी संस्कृति का विकृत रूप तथा नैतिक मूल्यों का विघटन आदि नारी को वेश्या जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि उन देशो का आदमी अधिक भोगवादी है। लेकिन भारत की स्थिति उससे अलग है। डॉ० रमेश तिवारी के शब्दों में —

'जिस देश में नारी के लिए युगों से सतीत्व तथा पातिव्रत्य धर्म सर्वोच्च रहें हो तथा जिस देश की आत्मा ही सतीत्व पर टिकी हुई हो, वहाँ भी वेश्यावृत्ति का अबाध प्रचलन बहुत अधिक लज्जास्पद लगता है।'[37] भारतीय समाज में इस समस्या के कुछ अन्य कारण ही रहे हैं। अन्य देशों में भले ही उसके मूल में नारी की चरित्रहीनता तथा नैतिक पतनशीलता रही हो, लेकिन भारत में नारी की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों ने ही प्रोत्साहित किया है।

जैनेन्द्र के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में नर और नारी दो ही थे। समाज में वेश्या को स्थान तो अर्थ—वृद्धि होने पर ही हुआ था। जैनेन्द्र

---

37 डॉ० रमेश तिवारी — हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ — 148

जी के शब्दों में वेश्या पैसे के आरम्भ से पहले हो ही नहीं सकती–उजरत और कीमत देकर जब भोग के लिए नारी को प्राप्त करते है, तभी तो उसे वेश्या कहते हैं, कीमत पैसे के रूप में चुकाने की विधि ही न हो तो वेश्या की स्थिति नहीं बन सकती है।[38] वे वेश्यावृत्ति के मूल में अर्थासक्ति को साध्य तथा काम वृत्ति को साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। जैनेन्द्र ने समाज में फैली हुई ऐसी वेश्या–संस्थाओं पर प्रकाश डाला है, जिनके संस्थापकों की मनोवृत्ति के प्रति अनिच्छा होती है, किन्तु संस्था के माध्यम से अधिक से अधिक धनोपार्जन की ओर उनकी दृष्टि केन्द्रित रहती है। जैनेन्द्र के अपने शब्दों में–'लेकिन अर्थ व्यापार के विचार से अलग वेश्या के प्रश्न का विचार पल्लव ग्राही होगा यथा मूल ग्राही नहीं होगा, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।[39] वह आगे लिखते हैं –

'वेश्या वह नहीं है जो अनेक को प्रेम करती है। वेश्या वह है जो पैसे की एवज में अपने को देती है।[40] जैनेन्द्र ने वेश्या सम्बन्धी गम्भीर सत्य की ओर इंगित किया है। सामान्यतया वेश्या को अनेक पुरूषों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही हेय माना गया है, किन्तु वेश्यावृत्ति के मूल में निहित नारी की विवशता की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। वह अर्थ के लिए अपने को देती है। वेश्यावृत्ति के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए ज्ञात होता है कि पुरुष की कामुकता ही नारी को विवश बनाती है। जैनेन्द्र वेश्या को किसी भी शर्त पर अमान्य नहीं करते। उनकी दृष्टि में यदि समाज वेश्या को हेय मानता है तो वेश्य (वेश्यावृत्ति में लिप्त) क्यों सम्माननीय हो सकता है? वेश्य की अर्थ लोलुपता वेश्या से कहीं अधिक घातक है, क्योंकि

---

38 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ – 345
39 वही, पृष्ठ – 247
40 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ – 351

वेश्यावृत्ति का स्वरूप तो समाज में प्रकट है, किन्तु वेश्य तो सामाजिक दृष्टि से सम्मानीय बनकर समाज के शरीर में झूठ, चोरी बेइमानी का घातक विष फैलाता है। वस्तुतः जैनेन्द्र की दृष्टि में वेश्यावृत्ति की जड़ में शुद्ध अर्थासक्ति विद्यमान रहती है। वेश्यावृत्ति पूंजीवादी नीति का परिणाम है।

जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानियों में वेश्यावृत्ति का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, उसके मूल में गरीबी ही विद्यमान है। निर्धनता के कारण वेश्या बनी नारी समाज से तिरस्कृत होकर अपने पति की आर्थिक सहायता करती है। 'अन्धे का भेद' शीर्षक कहानी में अन्धा भिखारी गली–गली गाकर भीख मांगता है और उसकी पत्नी परिवार से दूर समाज के कीचड़ में पड़ी गृहस्थी को चलाने के लिए जीविकोपार्जन करती है। वह अपने हाथों से अपने पति की आँखे फोड देती है। जिससे वह उसके कुकर्मो को देखकर दुःखी न हो। उसकी आत्मा पतित नहीं होती, किन्तु बाह्य रूप में वह कुछ भी करती है, किसी तरह ही सहन करती है। जैनेन्द्र ने अपनी इस कहानी में वेश्या नारी का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह हृदय को झकझोर देता है। वस्तुतः जैनेन्द्र की दृष्टि में वेश्या समाज की उपेक्षित होकर भी सहानुभूति की प्रार्थिनी बनी रहती है।

'बिखरी' कहानी में पत्नी निर्धनता के कारण स्वयं को ऐसी संस्था से सम्बद्ध कर देती है, जिसका लक्ष्य उसके माध्यम से धनोपार्जन करना है। 'त्यागपत्र' में मृणाल सामाजिक सुरक्षा के लिए स्वयं को समाज के उस उपेक्षित स्थान पर ले जाती है; जहां मानव जीवन की समस्त संवेदना की पारस्परिक सहानुभूति पूर्णतः समाप्त हो जाती है। नारी केवल जड़ पदार्थ के रूप में उपभोग की जाती है। 'त्यागपत्र' में मृणाल निर्धनता के कारण भी समाज के उस दलित स्थल को स्वीकार नहीं करती है। वस्तुतः जैनेन्द्र के कथा साहित्य में

नारी अधिकतर अर्थाभाव के कारण ही वेश्यावृत्ति स्वीकार करती है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि में सामाजिक सुधार के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति में सुधार किया जाय।

वैधव्य की समस्या

वैधव्य नारी–शोषण का एक अन्य रूप है। सम्भवतः समाज के अन्य किसी विधान के द्वारा नारी का इतना शोषण नहीं हुआ होगा। यह समस्या जहां एक ओर अनेक सामाजिक दोषों का परिणाम है वहीं दूसरी ओर कतिपय समस्याओं की जननी है। रूढ़ियों, परम्पराओं, प्रथाओं और प्राचीन मान्यताओं से ग्रस्त समाज में अनेक समस्याएँ स्वतन्त्र न रहकर कई सामाजिक दोषों की श्रृंखला में बँध जाती हैं। हिन्दू समाज में वैधव्य एक ऐसी ही जटिल समस्या रही है जो अनेक सामाजिक दोषों को आत्मसात् करती हुई व्यक्ति और समाज के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न बनी। विधवा बेचारी वैसे ही दुःख भार से बोझिल होती है, दूसरे अनुदार सामाजिक दृष्टिकोण उसका उठना बैठना, खाना–पीना, ओढ़ना–पहनना सब दूभर कर देता है। पग–पग पर उसे परिवार में अवहेलना मिलती है। सौभाग्वती स्त्रियाँ उनकी छाया से भी दूर रहती हैं। ऐसी दशा में सचमुच उनके लिए पति के साथ सती हो जाना ही अधिक उपयुक्त लगता है, लेकिन यह समाधान ऐसा ही है जैसे अत्याचार सहते–सहते ऊबकर आत्महत्या कर ली जाय।

जैनेन्द्र जी ने इस समस्या को 1929 में 'परख' के प्रकाशन के पश्चात् एक नया मोड़ दिया और इसे बहुत कुछ भिन्न आयामों में प्रस्तुत किया। इसके पहले व्यक्ति के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर ही उसकी समस्याओं पर विचार किया जाता था, लेकिन इन्होंने पहली बार व्यक्ति को प्रमुखता देकर सामाजिक समस्या को

प्रस्तुत किया। इसके पहले के लेखकों के समक्ष इस समस्या से उत्पन्न बुराइयॉ ही प्रमुख थीं। अतएव परिवर्तन की ठोस तथा क्रान्तिकारी भूमिका के स्थान पर इन्होंने सुधारवाद का मार्ग पकड़ा और विधवाओं को विधवा आश्रम तक पहुँचाया। इस प्रकार अबला नारी को समाज में सुरक्षित रखने की व्यवस्था अवश्य की लेकिन नारी स्वयं रूढिगत मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती हुई नहीं दिखलायी पडी।

जैनेन्द्र 'परख' में इस समस्या के तह में गये और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह समस्या सामाजिक ही नहीं वरन् वैयक्तिक स्तर पर भी अपना महत्व रखती है। उन्होंने वैधव्य की समस्या को मनोवैज्ञानिक प्रतिमानों पर परखा तथा उसके समाधान में न केवल सामाजिक बल्कि वैयक्तिक दृष्टिकोण को भी स्वीकृत किया। 'परख' में इस समस्या का बहुत कुछ रूप वैयक्तिक ही है। 'परख' की कट्टों बाल विधवा है। पांच वर्ष की उम्र में ही उसका विवाह हुआ, तब वह अपने पति को जानती तक नहीं थी। इसके तुरन्त बाद उसके पति का देहान्त हो गया, जिसके कारण विधवा का अर्थ जानने के पहले ही कट्टो विधवा बन गयी। उसने अभी तक किसी से प्रेम नहीं किया। फलतः किशोरावस्था में वह जब अपने मास्टर जी के सम्पर्क में आती है तो उनसे प्रेम करने लगती है।

सामाजिक रूढ़ि मान्यताओं के प्रति कट्टों का यह विद्रोह सराहनीय है और पाठकों की सहानुभूति भी लेखक के साथ–साथ उसे प्राप्त है। अन्ततः सत्यधन उसके साथ विश्वासघात करता है। तब प्रथम बार उसे अनुभव होता है कि वह विधवा हो गयी है। वैधव्य का अनुभव कट्टो रूढ़िगत मान्यताओं तथा सामाजिक संस्कारों से प्रभावित होकर नहीं कर सकी, लेकिन वैयक्तिक अनुभव के आधार पर उसे वैधव्य स्वीकार करना पड़ता है। अनुभव करने का यह ढंग

जैनेन्द्र का पूर्णतया अपना है जो सामाजिक संस्कारों की विवशता की अपेक्षा कहीं अधिक तर्कसंगत और समीचीन जान पड़ता है। उपन्यास का यह भाग इतना अधिक प्रभावशाली बन गया है कि उसके आगे की कथा व्यर्थ तथा सिद्धान्तवादिता के लिए कृत्रिम तरीके से जोडी हुई लगती है। उपन्यास का अंत वस्तुतः यही हो जाना चाहिए था, तब कट्टो की वैधव्य की समस्या मनोवैज्ञानिक धरातल पर एक प्रमुख विचारणीय प्रश्न बनकर अपना महत्व स्थापित कर लेती, लेकिन बिहारी जैसे रहस्यमयी पात्र की सृष्टि और कट्टो बिहारी के सम्बन्ध में रहस्यमयी विवाह तथा वैधव्य की प्रतिज्ञा की अबूझ पहेली ने वैधव्य की समस्या की यथार्थता तथा उसके वास्तविक रूप को बहुत कुछ धुंधला कर दिया है। एक विचित्र संयोग ही है कि 'परख' की कथा प्रारम्भ तो होती है, कट्टो के सामाजिक मान्यताओं के विद्रोह से, लेकिन उसका अंत होता है—वैधव्य सम्बन्धी लेखकीय आध्यात्मिक किंवा दार्शनिक व्याख्या से। कट्टों अपने वैधव्य तथा विवाह दोनों की प्रतिज्ञा को स्पष्ट करते हुए कहती है—'हम दोनों वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा में दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बंधते हैं। हम एक होंगे एक प्राण, दो तन। कोई हमें जुदा न कर सकेगा।' कट्टो ने कहा। हम दोनों वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बंधते हैं। हम एक होंगे एक प्राण, दो तन। कोई हमें जुदा न कर सकेगा। बिहारी ने दोहरा दिया। कट्टो ने कहा आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ, वैधव्य सार्थक हुआ।[41]

जैनेन्द्र इस समस्या के सन्दर्भ में अपने युगीन विचार दर्शनों से अलग हैं। गाँधी जी ने बाल—विधवा की समस्या पर अपना विचार व्यक्त किया था—'उनका विवाह कुंवारी लड़कियों की भांति होना

---

41 जैनेन्द्र कुमार 'परख' पृष्ठ—75—76

चाहिए। उन्हें विवाहिता समझना ही अनुचित है।[42] कहने की आवश्यकता नहीं कि विधवा समस्या का इससे बढ़कर अधिक व्यावहारिक समाधान और क्या हो सकता है? लेकिन जैनेन्द्र जहॉ अन्य समस्याओं में गॉधी जी के साथ है, वैधव्य की समस्या के सम्बन्ध में गॉधी जी के विचारों से मेल नहीं खाते। उन्होंने कट्टो से विधवा विवाह का विरोध करवाया है। वह अपने को विधवा मानकर बड़े गौरव के साथ कहती है—'विधवाओं का विवाह होता है छिः।'[43] विहारी के साथ स्थापित अपने नये सम्बन्धों को कट्टों विवाह नहीं, वरन् एक प्रतिज्ञा मानती है।

स्त्री और राजनीति

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में जहाँ स्त्री—पुरुष को प्रकृत रूप में स्वीकार किया गया है, वहाँ जैनेन्द्र के विचारों की मौलिकता तथा नवीनता दृष्टिगत होती है, किन्तु नारी को व्यक्तित्व प्रदान करते हुए उन्होंने उसके स्वरूप को राजनीति, समाज, परिवार आदि विभिन्न परिप्रेक्ष्यों मे, विभिन्न दृष्टियों से देखा है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का अध्ययन करने पर यह मालूम होता है कि अनेक नारी पात्र अत्यन्त स्वतन्त्र विचारों की हैं। उनमें भारतीय संस्कृति और मर्यादा की चेतना नहीं है, किन्तु सत्य यह है कि जैनेन्द्र के पात्र भूत का स्पर्श करते हुए भी वर्तमान में जीते हैं। अपनी संस्कृति, की वे कभी उपेक्षा नहीं करते। जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री की पुरुष से प्रतिस्पर्द्धा उचित नहीं। उनकी दृष्टि में स्त्रियों के नौकरी करने का उद्देश्य स्वतन्त्रता और नौकरशाही का न होकर सहयोग का होना चाहिए। जैनेन्द्र के उपन्यासों और कहानिया में स्त्री—पात्रों में

---

42 महात्मा गॉधी — वोमेन एण्ड सोशल जस्टिस, पृष्ठ — 111
43 जैनेन्द्र कुमार — परख, पृष्ठ — 85

विवाह के घेरे से बाहर उन्मुक्त रूप से सांस लेने की कामना है, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं है। 'सुखदा' मे सुखदा घर से बाहर निकलने पर स्वयं एक हीनता अनुभव करती है। उसे ऐसा आभास होता है कि घर से बाहर राजनीति में आकर उसने अपनी मार्यादा को भंग किया है। जैनेन्द्र के नारी पात्र सार्वजनिक क्षेत्रों में एक कुण्ठा को लिये हुए ही अवतरित हुये हैं। उनके मन की ग्रन्थि उन्हें राजनीति में प्रवेश करने के लिए बाध्य करती है। जैनेन्द्र ने सामाजिक चेतना में अत्यधिक स्वतन्त्रता का विरोध किया है। किन्तु परिवार में पत्नी की दासता का निषेध किया है। 'सुखदा' 'सुनीता' 'विवर्त' आदि उपन्यास उनका यह आदर्श प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त हैं। 'कल्याणी' तथा 'सुखदा' में उन्होंने स्पष्टतया यह स्वीकार किया है कि पत्नी, पति की सम्पत्ति नहीं है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में स्त्री–स्वातन्त्र्य की कामना क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुई है, किन्तु समाज मर्यादा से बँधी नारी कभी भी सामाजिक सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाती। 'त्यागपत्र', 'परख' आदि में जीवन का जो आदर्श कहीं व्यक्त हुआ, वह सामाजिक मर्यादा का पोषक ही है। जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री का राजनीति में प्रवेश उचित नहीं है। उनकी दृष्टि में स्त्री प्रेम और प्रेरणा की मूर्ति और प्रेम शक्ति है। प्रेमिका बनकर वह पुरुष को प्रगति की ओर अग्रसर करती है। 'मुक्तिबोध' और 'जयवर्धन' में उन्होंने राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को बुरा–भला कहा है। उन्होनें कहा है कि अभागिन है वह स्त्री, जो स्त्री है और राजनीति में आती है या उसका विचार भी करती है।[44] स्त्री–राजनीति में प्रवेश वहीं तक स्वीकार है जहाँ तक वह पति अथवा प्रेमी की प्रेरणादायक रहती है। राजनीति स्त्रियों के लिए नहीं है।[45] 'निर्मम' में प्रेम के वश में हुई नारी अपने

---

44 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 92
45 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 275

समर्पण से शिवा के प्रति अपने प्रेम को स्थापित करती है। 'ध्रुवतारा में जैनेन्द्र ने प्रेम और कर्तव्य का अजीब सा आदर्श प्रस्तुत किया है, प्रेयसी प्रेयस को उत्पन्न नहीं करती है, बल्कि स्वयं कष्टों को झेलती हुई उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। वह स्पष्ट कहती है कि मैंने कितनी बार तुमसे कहा कि तुम उससे ज्यादा के लिए हो।[46]

पुरुष के जीवन में कुछ इच्छाएँ होती हैं। स्त्री उनको पूरा करने के लिए सहयोगिनी होती है। 'मुक्तिबोध' में नीलिमा कहती है—'आदमी सपने के लिए जीता है और औरत सपने के आदमी के लिए जीती है।'[47] जयवर्धन की इला प्रत्येक क्षण जय के साथ रहती हुई भी राजनीतिक क्षेत्र में उसके साथ कदम मिलाकर नहीं चलती, वह जय के साथ रहती है, परन्तु आत्मा की तरह ही उसका बाहरी और सक्रिय रूप तो जय स्वयं होता है।

मातृत्व

जैनेन्द्र ने स्त्री के मातृत्व रूप को भी बहुत अधिक महत्व प्रदान किया है। प्रेयसी होने के साथ ही साथ वह माता भी है। प्रत्येक दृष्टि से वह प्रेम, प्यार, त्याग और स्नेह की मूर्ति है। आधुनिक समय में आर्थिक परेशानियों के कारण माता घर से बाहर कमाने के लिए जाती है। इस प्रकार वह अपने मातृत्व के कर्तव्य को पूरा नहीं कर पाती। यही कारण है कि जैनेन्द्र स्त्री को घर से बाहर आर्थिक क्षेत्र में पुरुष की सहभागिनी के रूप में आना उचित नहीं समझते।[48] उनकी दृष्टि में स्त्री की सार्थकता मातृत्व में है। मातृत्व दायित्व है। वह स्वतन्त्रता नहीं है। स्त्री निपट स्वच्छन्द रहना चाहती है, तो उसके मूल में यहीं

---

46 जैनेन्द्र कुमार – ध्रुवतारा, पृष्ठ – 94
47 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 93
48. मै नही चाहूँगा कि माता कमाने के लिए दफ्तर में जाय और धाय बच्चो को अपना दूध पिलाने के लिए आए।

अभिलाषा है कि माता बनने से वह बची रहे और पुरुष के प्रति उसका प्रेयसी रूप ही प्रतिष्ठित रहे।[49]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र की दृष्टि में स्त्री मातृत्व से रहित होकर स्वयं में अपूर्ण रहती है। जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानी में मातृत्व की तीव्र इच्छा दृष्टिगत होती है। पति का अतिशय प्रेम और सहानुभूति प्राप्त करके भी स्वयं अभावग्रस्त रहती है। मातृत्व में ही उसकी पूर्णता है जो रूखे प्यार से उपलब्ध नहीं होता। 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' और 'मास्टर जी' में नारी की विक्षुब्धता वात्सल्य भाव की पूर्ति के बिना ही उत्पन्न हुई है। मातृत्व के साथ ही जैनेन्द्र की कहानियों में वात्सल्य भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से उनकी कई कहानियाँ जैसे – 'फोटोग्राफी' आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र ने व्यक्ति और समाज के विभिन्न पक्षों को अपने कथा साहित्य में स्वयं के विचारों और आदर्शों की छाया में व्यक्त किया है।

---

49 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 71

अध्याय–3

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना

अध्याय–3

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना

(खण्ड–1)

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

संस्कृति : शब्द एवं आशय

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन के सन्दर्भ में यह आवश्यक और समीचीन जान पड़ता है कि पहले हम संस्कृति के स्वरूप पर एक दृष्टि डाल लें। ऐसा करना इसलिए अनिवार्य प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कृति को स्पष्ट किए बिना अध्ययन पद्धति का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं जान पड़ता।

संस्कृति पर विचार करने के साथ ही साथ हमें सभ्यता के स्वरूप पर भी विचार करना अपेक्षित है। वस्तुतः संस्कृति और सभ्यता का सम्बन्ध इतने निकट का है कि एक पर विचार करते समय दूसरे की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'संस्कृति' और 'सभ्यता' इन दोनों शब्दों का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में होता है, लेकिन ये दोनों मनुष्य की प्रगति तथा उसकी उपलब्धियों को संकेतित करते हैं। विद्वानों में इन दोनों शब्दों को लेकर जटिल तथा विवादास्पद स्थिति रही है, जिसमें कभी तो उन्हें अलग–अलग तथा कभी पर्यायवाची तक मान लेने का आग्रह व्यक्त किया गया है। प्रसिद्ध नर विज्ञानी टायलर

संस्कृति तथा सभ्यता को पर्यायवाची मानते हैं।[1] तो मैलिनावस्की उनका अलग–अलग अस्तित्व स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार ऊँची संस्कृति के खास पहलू को सभ्यता कहते हैं।[2] टायलर की तरह हर्स कोविट्स का भी कहना है कि सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे के पर्याय हैं। वह कहते हैं कि संस्कृति के लिए एक शब्द है 'परम्परा' और दूसरा 'सभ्यता'।[3] संस्कृति के द्वारा ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता है। डॉ० राधा कृष्णन के अनुसार संस्कृति, विवेक–बुद्धि से जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।[4] डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में–'संस्कृति जीवन का तरीका है, यह तरीका जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।[5] इस प्रकार सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही, जिसमें वैयक्तिकता विकार मुक्त होकर साधनाओं का श्रेष्ठ आकलन करती है, संस्कृति है।[6]

संस्कृति की परिभाषा

जहाँ तक संस्कृति को परिभाषित करने की बात है, हम निःसंकोच यह स्वीकार करते हैं कि आज तक इस बात पर विद्वानों में मतैक्य नहीं स्थापित हो सका है। जितने तरह के संगठन हैं और जितने तरह के लोग हैं, उन सबों ने उतनी ही तरह से संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः संस्कृति को समझने और परिभाषित करने के लिए संस्कृति की व्याख्या सम्बन्धी लम्बी परम्परा को जानना नितान्त आवश्यक है। बिना उन पूर्व व्याख्याओं

---

1 ई० टाइलर – प्रिमिटिव कल्चर, भाग–1, पृष्ठ – 1
2 इनसाइक्लोपीडिपा आफ द सोशल साइन्सेज, भाग–3, पृष्ठ – 621
3 एम०जे० हर्स कोविट्स – मेन एण्ड हिज वर्क्स, पृष्ठ – 17
4 अनु० विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – स्वतन्त्रता और संस्कृति, पृष्ठ–53
5 डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' – संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–653
6 डॉ० सरनाम सिंह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 14

को जाने समझे हम संस्कृति को सही अर्थों में समझ पाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। संस्कृति पर विभिन्न विद्वानों ने अपने मत प्रकट किए हैं। डॉ० राधा कृष्णन के अनुसार संस्कृति विवेक–बुद्धि से जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।[7] डॉ० रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में, संस्कृति जीवन का तरीका है यह तरीका जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।[8] इस प्रकार सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही, जिसमें वैयक्तिकता विकार विमुक्त होकर साधनाओं का श्रेष्ठ आकलन करती है, संस्कृति है।[9] यह संस्कृति मानव की विविध साधनाओं में निहित होती है।[10] संस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का एक ढ़ांचा है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता रहता है। समाज के बिना संस्कृति जीवित नहीं रह सकती और यही कारण है कि प्रत्येक मानव समाज की अपनी संस्कृति होती है।

संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति और समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। सांस्कृतिक विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम हुआ करते हैं। यही कारण है कि संस्कृति का विकास मन्थर गति से होता है। संस्कृति परम्परागत आचार–विचार और भौगोलिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। यद्यपि परम्परागत उदात्त विचारधाराओं का युगानुकूल संस्कार होता रहता है, तथापि संस्कृति नूतन नहीं है, क्योंकि संस्कृति का अस्तित्व नूतन और पुरातन अनुभूतियों के संस्कारों द्वारा निर्मित समुदाय के दृष्टिकोण में निहित है। संस्कृति

---

7 अनु० विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – स्वतंत्रता और संस्कृति, पृष्ठ – 53
8 डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' – संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ – 653
9. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 14
10. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (निबंध संग्रह), पृष्ठ – 13

हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन में और आनन्द में पाये जाने वाले रहन–सहन और विचारों की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है।[11]

संस्कृति के विकास में आदान–प्रदान का भाव निहित होता है, क्योंकि मानव मात्र के वैयक्तिक व्यवहार संस्कृति का अंग कभी नहीं बन पाते। जब उन्हें दूसरों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तो वे संस्कृति में समाविष्ट हो जाते हैं। संस्कृति व्यवहारों का समूह मात्र नहीं है, अपितु व्यवहारों का अन्योन्याश्रित होकर एक सुदृढ़ व्यवस्था में ढ़ल जाना है। पारस्परिक सम्पर्क संस्कृति के विकास में प्रमुख उपादान हैं। संस्कृति की शाश्वत दीर्घता पारस्परिक संपर्क पर ही अवलम्बित होती है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में' ''हमें किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह अभारतीय है। हमें विदेशी सिद्धान्त भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करना चाहिए।[12]

संस्कृति का क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपादान

संस्कृति शब्द से मानस–पटल पर एक सुनियोजित प्रतिच्छवि व्यापक क्षेत्र को आत्मसात् करते हुए खिंच जाती है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कलागत जीवन के विभिन्न पहलुओं से है। मनुष्य ने विवाह द्वारा परिवार और समाज का निर्माण किया और सामाजिक नियमों के प्रतिपादन द्वारा पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाया है। सामाजिक सम्बन्धों को व्यापक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही उसने अपने निकटवर्ती सम्बन्धों में विवाह निषिद्ध किया। पारिवारिक विस्तार कुल,

---

11 मैकाइवर एण्ड पेज – सोसायटी, पृष्ठ – 449
12. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क, पृष्ठ – 125

जाति, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक विकास होता रहा। राजनीतिक संस्था का विकास आज उस बिन्दु तक पहुँच चुका है, जहॉ मानव मात्र किसी न किसी शासन सूत्र से आबद्ध है। बौद्धिक चेतना के ऊर्ध्व शिखर को स्पर्श करने वाले मानव ने जिस विषय को सामाजिक विकास के लिए उपयोगी समझा, अपना लिया। मनोरंजक आनन्दानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए अपने साहित्य और कला को जन्म दिया और आत्मतुष्टि के लिए धर्म का विकास किया। ये सभी संस्कृति के संस्कारजन्य अंग हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पांच अवयव कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति–रिवाज है।[13] इस सन्दर्भ में डॉ० सरनाम सिंह शर्मा के विचार द्रष्टव्य है – "सभ्यताओं का विकास और विनाश हो सकता है, धर्मों का उत्थान पतन हो सकता है, पर संस्कृति का मौलिक रूप चिरन्तन और चिर स्थायी है।"[14]

संस्कृति और सभ्यता में काफी अन्तर है, परन्तु वे एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जा सकते, क्योंकि राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास में उस देश की सभ्यता का चित्र अंकित रहता है। इस प्रकार संस्कृति और सभ्यता के भेद को स्पष्ट करने के लिए इन दोनों को अलग–अलग जानना अति आवश्यक है।

संस्कृति और सभ्यता

प्राचीनकाल में भले ही संस्कृति और सभ्यता एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हों, परन्तु उनमें आज अन्तर स्वीकार कर लिया

---

13 कल्याण (पत्रिका), हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृष्ठ – 76
14 डॉ० सरनाम सिंह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 21

गया है। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन साधनों तथा सामाजिक–राजनीतिक संस्थाओं से है, जिनके द्वारा मानव–जीवन सरल, सरस और स्वतन्त्र बनता है। परन्तु संस्कृति हमारे चिन्तन, मनन और कलात्मक सर्जन की उन क्रियाओं से सम्बन्धित है जो परोक्ष रूप से जीवन को समृद्ध बनाने वाली हैं।

विश्व चेतना के मानस में मानवीय मूल्यों और आदर्शों की अन्तर्निहित संस्कृति है, जो सभ्यता का अस्तित्व उन आदर्शों और मूल्यों का पालन करने वाले सहायक उपादानों से सम्बन्धित करती है। संस्कृति वह गुण है जो परम्परा से हम में व्याप्त है और सभ्यता जीवन को सँवारने की वह कला है जो हमें श्रम से प्राप्त होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति के मूल में सभ्यता का निवास होता है। रहन–सहन की सभ्य अवस्था का अनुभव होने पर मनुष्य संस्कारवान् बनने लगता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कार ऊपर से आच्छादित आवरण है, अपितु मानव के अन्दर मानस में निहित संस्कार अनुकूल वातावरण में सक्रिय हो जाते हैं। भोजन, वस्त्र, महल, मोटर आदि पार्थिव पदार्थ सभ्यता के साधन हैं, परन्तु भोजन करने एवं वस्त्र पहनने की कला, भवन बनाने और मोटर चलाने के कौशल में संस्कृति समाहित रहती है। संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सूक्ष्म वस्तु होती है। यह सभ्यता के अन्दर उसी तरह लुप्त रहती है जैसे कपास में रूई। इस प्रकार सभ्यता समाज की बाहरी व्यवस्थाओं का नाम है। संस्कृति व्यापक और सभ्यता संकोचशील है।

साहित्य और संस्कृति

साहित्य जनमानस की भीतरी और बाहरी प्रतिच्छवियों का प्रकाशन करने वाला ज्ञान राशि का संचित कोश है। इसलिए वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त

प्रामाणिक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित तो रहते ही हैं, साथ ही साहित्य ने मनुष्य को उस रागात्मक ऐश्वर्य की स्थिति तक पहुँचाया है जहाँ सर्वत्र सुख और शान्ति रहती है तथा मन की कोकिल अपने गीत मधुर स्वरों में गा उठती है।

संस्कृति के अन्तर्गत चेतना और व्यवहार दोनों का सामंजस्य रहता है। व्यवहार आदर्शों का निर्माण करते हैं। चेतना सृजनात्मक क्षमता को सम्प्रेषित करने वाली कला की रचना करती है। सांस्कृतिक चेतना का सृजनात्मक स्वरूप धारण करना विशेष महत्वपूर्ण है। किसी जाति के सृजनात्मक प्रयत्नों का उन्मेष संस्कृति के अन्तर्गत ही होता है। प्रत्येक देश का साहित्य उसके विचारों और भावनाओं के इतिहास से अवगत कराता है।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का कथन है कि 'साहित्य मानव जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारों तथा भावों का वह गुच्छा है जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्धि दोनों ही मन मोह लेते हैं। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं हो सकती, जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में ही हो सकता है।[15]

साहित्य और संस्कृति संश्लिष्ट है। संस्कृति मनुष्य के धर्मगत वातावरण और संस्कारों से प्रेरित हुआ करती है। मनुष्य के मानसिक आयामों में संस्कृति अपना विस्तृत रूप धारण करती है जिसे साहित्य ही प्रकाश में लाने का कार्य करता है। डॉ० सरनाम सिंह शर्मा ने साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिम्बि तथा अनागत का प्रदीप माना है।[16] साहित्य एक ऐसा माध्यम है जो

---

15 डॉ० राजेन्द्र प्रसाद – साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, पृष्ठ – 10
16 डॉ० सरनाम सिंह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 19

देश की संस्कृति को एकसूत्र में बॉधता है। साहित्य संस्कृति के विकास में दिशा को बताता है और संस्कृति निद्रालीन कथाकार की निद्रा भंग कर देती है तथा साहित्य को प्रेरित करती है। किसी राष्ट्र की संस्कृति को जानने के लिए उस राष्ट्र के शास्त्र, विद्या, कला आदि को जानना अति आवश्यक है। साहित्यकार परम्परावादी और प्रयोगवादी होता है। यह युग चेतना से प्रभावित होकर पुरातन में नये युग का निर्माण करता है। परम्परा और प्रयोग के आपस में सन्तुष्टि के माध्यम से मनुष्य जाति ने अपनी संस्कृति तथा साहित्य का निर्माण किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन के लिए संस्कृति और साहित्य दोनों अति उपयोगी हैं, किसी एक के बिना जीवन का सर्वांगीण विकास असम्भव है और मनुष्य जाति के सौन्दर्य बोध एवं मूल्य बोध को आगत के लिए संचित भी नहीं किया जा सकता।

वर्तमान युग की साहित्यिक विधाओं में कथा साहित्य ने अत्यधिक प्रगति की है। इसकी सफलता का केवल एक ही कारण है कि कथा साहित्य ने मनुष्य के जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों को प्रकाशित करने का जो कार्य अपने हिस्से में लिया है, वह जटिल तो था ही, इसके अलावा अन्य किसी विधा की क्षमता के परे भी था। कठिनता के दर्द से व्याकुल मानव जीवन की जटिल संस्कृति का चित्रण, कथा साहित्य करने को प्रस्तुत हुआ और अभिनव मूल्यों को प्रकट करने लगा। साहित्यकार का दायित्व भी अन्य की अपेक्षा अधिक बढ़ गया। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति की व्यापकता अन्य पूर्ववर्ती कथाकारों से किसी प्रकार कम नहीं है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के विवेचन से पूर्व साहित्य के दायित्व की परख करते हुए उसकी सांस्कृतिक संचेतना की संक्षिप्त विवेचना असंगत न होगी।

कथा साहित्य और संस्कृति

द्वितीय महायुद्धोत्तर मानव जीवन सीधे–सादे मार्ग से हटकर संकीर्ण गलियों में गुमराह सा होने लगा तथा जीवन की सरलता, सहजता और सुगमता अपने आप में जटिल, बोझिल और कठिन हो गयी। मानसिक हलचल और कुशल जीवनयापन करने की समस्याओं ने मानव के संगठित व्यक्तित्व को तोड़कर रख दिया। मानसिक उलझन और कुंठाओं ने अस्थिरता का सृजन किया। मनुष्य के जन्मजात संस्कार परिवर्तन क्रम में स्थिर न रह सके और जीवन में मूल्यों का विघटन होने लगा। मानव मूल्यों के विघटन के साथ ही महामानव का अस्तित्व काल्पनिक होकर रह गया और यथार्थ धरातल पर लघु मानव का जन्म हुआ। सांस्कृतिक चेतना परिवर्तन के लिए बाध्य हो गयी, क्योंकि विघटित मूल्यों के साथ यह स्वाभाविक ही था। आशा, निराशा और अनास्था के मध्य झूलते हुए जीवन में कहानी और उपन्यास को महान गौरव प्राप्त हुआ। महामानव के स्थान पर उपन्यास और कहानियों में लघु मानव नायक बनकर दुःख से भरे हुए जीवन पर रूखी हँसी हँस पड़ा। विनाशकारी अस्त्रों के भय और संत्रास से ग्रस्त मानव जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगा।

साहित्य का लक्ष्य होता है–जीवन को अनेक आयामों में उद्घाटित अथवा निरूपित करना। साहित्य में जीवन मूल्य अथवा जीवन दर्शन भिन्न–भिन्न आयामों में विश्लेषित हुआ करते हैं। साहित्य में मानव के मूल्य बोध और सौन्दर्य बोध दोनों का समावेश रहता है। किसी राष्ट्र या जाति के सौन्दर्य बोध की व्यापकता पर कलागत व्यापकता निर्भर हुआ करती है। सौन्दर्य बोध और मूल्यबोध दोनों अलग–अलग होते हुए भी मानव जीवन में संतुलित होते हैं। एक सुसंस्कृत मानव का मूल्य बोध और सौन्दर्य बोध प्रौढ़ होता है। हमारे इतिहास में ऐसे नाम मिलते हैं, जैसे–गाँधी जिनके द्वारा इस सिद्धान्त

को पुष्टि मिलती है। जैनेन्द्र जी ने गाँधी जी के महान व्यक्तित्व को अपने कथा साहित्य में निरूपित किया है, जो युगीन सांस्कृतिक चेतना की झाँकी तो प्रस्तुत करता ही है और साथ ही युगीन दृष्टिकोण की अभिव्यंजना भी करता है।

वर्तमान युग में जीवन की कठिनता और विषमता को कथा साहित्य के अलावा अन्य किसी विधा में निरूपित नहीं किया जा सकता, क्योंकि महाकाव्य और कविता हृदय की सहज भावानुभूतियों की अभिव्यंजना है। जीवन रस की अभिव्यक्ति होने के कारण इसमें बुद्धि नहीं हृदय की प्रमुखता होती है। साहित्यकार युग जीवन और युगीन चरित्रों को प्रतिपाद्य बनाकर उच्च ग्रन्थकारों की श्रेणी में स्थान बना लेता है। आज के मनुष्य तथा उसके जीवन को कथा साहित्य के माध्यम से ही सम्यक रूप से व्यक्त किया जा सकता है। आज का कथा साहित्य युगीन संस्कारों से आक्रान्त ही नंहीं, वरन् संस्कृति से अपना गहरा रिश्ता जोड़कर अपने समय के सांस्कृतिक तत्वों की अभिव्यक्ति में व्याकुल दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि कथा साहित्य को जानने के लिए तत्कालीन सन्दर्भों का विहंगावलोकन करना उपयोगी होता है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य की सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन इसी परिप्रेक्ष्य में किया जायेगा।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रतिपाद्य दीर्घ काल की सांस्कृतिक चेतना को अपने में सँजोये हुए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नवीन सांस्कृतिक चेतना की ज्योति 'परख' उपन्यास में दिखायी पड़ती है। पाश्चात्य शिक्षा ने भारत में शिक्षित और अशिक्षित दो अलग सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया।

एक ओर तो वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न नगरों में रहने वाले और आधुनिक कहे जाने वाले शिक्षित वर्ग की सांस्कृति का विकास हुआ, दूसरी ओर वैज्ञानिक साधनों से विहीन अन्धविश्वास ग्रस्त अशिक्षित वर्ग की सांस्कृतिक चेतना अवरुद्ध हो गयी है। इस प्रकार दो वर्गों की सांस्कृतिक चेतना नागर संस्कृति और ग्रामीण संस्कृति के रूप में विभाजित हुई।

बीसवीं शताब्दी भारतीय समाज में अतीत गौरव तथा देश–प्रेम और प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्था के भाव से पूरित है। युगीन जन अंग्रेजी शासन की भले ही सराहना करता है, परन्तु भारतीय जन पाश्चात्य संस्कृति के संघर्ष में सदैव ही भारतीय संस्कृति का पक्षधर है। जैनेन्द्र जी आचार–विचार, रहन–सहन आदि में पश्चिमी नकल को नहीं मानते हैं। यही कारण है, ऐसे मनुष्य को दुःख देने से नहीं चूकते हैं जो भारतीयता से भिन्न दिखाई पड़ते हैं। आधुनिक युग के धार्मिक–सांस्कृतिक जागरण में मनुष्य के स्थान पर ईश्वरीय शक्ति का प्रभाव था। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में 'पूर्व और पश्चिम के सम्पर्क से नव चेतना उत्पन्न हुई, समाज अपनी खोई हुई शक्ति बटोर कर गतिशील हुआ, नवयुग के जन्म के साथ विचार–स्वातंत्र्य का जन्म हुआ। साहित्य में गद्य की वृद्धि हुई और कवियों ने अपनी परिपाटी विहित और रूढ़िग्रस्त कविता को छोड़कर दुनिया को नई ऑखों से देखना शुरू किया। उपन्यास, नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि ने नवीन चेतना का अनुसरण किया।[17]

कथा साहित्य का अपने युग जीवन की संस्कृति से घनिष्ट सम्बन्ध जुड़ जाता है। कथाकार के लिए यह बड़ी चुनौती का विषय है कि वह अपने युगीन सांस्कृतिक तत्वों को अपने कथा साहित्य में

---

17 डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ – 11

प्रकट कर सकता है या नहीं। इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि युगीन सांस्कृतिक तत्वों की पूर्ण अभिव्यक्ति किए बिना कोई भी साहित्यक कृति महत्वपूर्ण नहीं बन सकती। सांस्कृतिक चेतना के अभाव में कोई भी कथाकार अथवा उपन्यासकार महान रचना नहीं कर सकता। कथा साहित्य सबसे अधिक सशक्त माध्यम है, क्योंकि उसका सम्बन्ध युग की यथार्थ घटनाओं से है। उसका लक्ष्य ही जीवनगत यथार्थ को प्रकट करना है। अतः यथार्थ के धरातल पर कथा साहित्य अनिवार्य रूप से संस्कृति से जुड़ जाता है और वे एक दूसरे को इस प्रकार प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। सांस्कृतिक चेतना कथाकार के लिए उचित वातावरण का निर्माण करती है। कथाकार जहां अपने युग की संस्कृति को प्रभावित करता है वहीं वह उससे अपने सृजन में प्रेरणाएँ भी ग्रहण करता है। दोनों का यह सम्बन्ध आदान–प्रदान का है। कथाकार अपने युग को कुछ देता है, तो उससे कुछ लेता भी है। प्रेमचन्द अथवा जैनेन्द्र की सार्थकता इसी बात में है कि उन्होंने अपने युगीन सन्दर्भों की यथार्थताओं से गहरे स्तर पर अपना सम्बन्ध बनाये रखा, तभी 'गोदान' तथा 'परख' की रचना कर सके।

जैनेन्द्र जी के 'परख', 'सुनीता' 'त्यागपत्र' आदि उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1948 से 1962 का समय भारतीय सांस्कृतिक उपलब्धियों का युग रहा है। 'सुखदा' उपन्यास इसी की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्तिवादी विचारधारा के उन्मेष से प्रत्येक वर्ग की अपनी विचारधारा दूसरे से अलग हो गयी। युगीन परिस्थितियों के प्रभाव से अध्यात्मवाद का स्थान भौतिकवाद ने ले लिया, जिसके कारण व्यक्ति और समाज की चिन्तन पद्धति का आधार भौतिकवादी हो गया। इसके अतिरिक्त फ्रायड् के मनोविज्ञान ने भी भारतीय सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। निराशा, अवसाद, अनास्था और आक्रोश में जीने वाले बौद्धिकों को फ्रायड् के दर्शन का

सहारा मिला और उनकी वैयक्तिक कुण्ठा सेक्स के माध्यम से निःसृत होने लगी। ऐसी युगीन परिस्थितियों में भी जैनेन्द्र कुमार नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने को प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'जयवर्धन' में एक ओर वह मानवीय आस्था और अनास्था के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करते हैं तो दूसरी ओर एक नयी संस्कृति, नयी सम्पदा की अभिव्यक्ति करते हैं, जिससे मानव का हित हो सके। जैनेन्द्र ने अपने युग के आस्था और विश्वास को युगीन जन–जीवन की कसौटी पर जकड़ कर बौद्धिक रूप से नयी सांस्कृतिक चेतना के रूप में स्थापित किया है।

सांस्कृतिक तत्वों का समावेश

सांस्कृतिक पुनर्जागरण में धार्मिक चेतना का अपना विशिष्ट महत्व है। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया तथा पुर्नजागरण को व्यापकता तथा गहराई प्रदान की। धार्मिक भावनाओं में समन्वयात्मक संगठन से सांस्कृतिक चेतना का निर्माण हुआ करता है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना यदि धर्म से आवश्यक रूप से सम्बन्धित रहे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। धर्म मनुष्य तथा समाज के सामाजिक और व्यवहारिक जीवन में सक्रिय होकर संस्कृति का रूप ले लेता है। जैनेन्द्र के साहित्य के पात्र ईश्वर पर विश्वास करते हैं। जैनेन्द्र का जीवन अध्यात्म और भौतिकता का समुच्चय है। भौतिकता यदि शरीर है तो अध्यात्म उसकी आत्मा है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सांस्कृतिक चेतना में धार्मिक चेतना का बहुत महत्व है। धर्म ही राष्ट्र को प्रेरित करता है। धार्मिक संगठन से सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है। उनके साहित्य में धर्म का समावेश स्पष्ट रूप से हुआ है। जैनेन्द्र ने धर्म को ज्ञान से नहीं बल्कि अनुभव से स्वीकार किया है। उनका धर्म मानव धर्म है। सांस्कृतिक चेतना में धर्म का समावेश उसी

प्रकार किया गया है जैसे लोहे में आग। हिन्दू धर्म में धर्म की धारणा शक्ति आत्मा में ही मानी जाती है। जैनेन्द्र जैन धर्म की स्याद्वादी विचारधारा के प्रभाव के कारण ही विविध धर्मों की अनेकता को मिटाने के पक्ष में नहीं हैं। हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म सब सत्य हैं।[18] मानव जीवन के लिए धर्म एक महत्वपूर्ण अंग है। उन्होंने अपने उपन्यास और कहानियों में ऐसे लोगों का चित्रण किया है, जिन्हें धर्म का कोई ज्ञान नहीं; न कोई जानने की जिज्ञासा है। 'विवर्त', 'कल्याणी', 'अनन्तर' आदि उपन्यासों में अर्थ और काम दोनों को प्रमुखता देने वाले व्यक्तियों का वर्णन किया गया है। 'अनन्तर' में जया अति भौतिकता से घबड़ाकर ही शान्ति–धाम की स्थापना करती है। उसके अनुसार जीवन भोगाभिमुख होता जा रहा है। उसने संकल्प बाँधा है कि इस गिराव को रोकना होगा, जीवन को उसकी सही धुरी पर फिर से निष्ठ और प्रतिष्ठ करना होगा।[19] मानव जीवन में धर्म का उद्देश्य मोक्ष भी है। जैनेन्द्र ने 'समय और हम', 'प्रश्न और प्रश्न' से मोक्ष को सफर (यात्रा) मानकर अपने विचारों को व्यक्त किया।

ग्रामीण संस्कृति

भारत वर्ष के अधिकांश लोग गाँव में निवास करते हैं। कृषि कर्म से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें कृषक भी कहा जाता है। कृषकों का सीधा–सादा पवित्र हृदय मनुष्य का मन जीत लेता है, परन्तु पता नहीं क्या कारण है कि हमारे कथा साहित्यकारों की अभिरुचि उनके रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, आदर्श और वैचारिक दृष्टिकोण की ओर नहीं रही, जिससे वह अपने कथा साहित्य में जन सामान्य को प्रतिष्ठित करने में असफल रहे। ग्रामीण जीवन का

---

18. जैनेन्द्र कुमार – मंथन, पृष्ठ – 85
19. जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 56

जीवित चित्र यदि किसी कथाकार के साहित्य में मिलता है, तो वह निश्चित ही जैनेन्द्र कुमार हैं। हम उनके साहित्य में गाँव की सैर कर सकते हैं।

जैनेन्द्र कुमार का ऐसा कोई उपन्यास नहीं है, जिसमें समग्र रूप से सामान्य जन–जीवन और ग्रामीण संस्कृति का चित्रण न हुआ हो। 'परख' का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश की ग्रामीण, भोली–भाली नायिका से है। वह बाल विधवा है। ग्रामीण संस्कृति में जमींदारों, महाजन, किसानों आदि सभी को उन्होंने अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है। 'परख' में बिहारी पढ़ने के लिए शहर जाता है, लेकिन वहाँ के जीवन से ऊबकर फिर गाँव वापस आ जाता है। सत्यधन अपने गॉव में पड़ोसिन बाल–विधवा कट्टो को पढ़ने में सहायता करता है। 'व्यतीत' में जयन्त चन्द्री को साथ लेकर कश्मीर जाता है। अपनी पत्नी से रूठकर वह पहलगाम में अपने को रिझाना चाहता है। जैनेन्द्र जी के 'परख' उपन्यास में ही ग्रामीण संस्कृति और गाँव के वातावरण का सजीव चित्रण मिलता है।

नगर संस्कृति

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में नगरों का भी अत्यधिक वर्णन हुआ है। अधिकतर उपन्यासों और कहानियों में दिल्ली का वर्णन है और इस नगर का उल्लेख कथा साहित्य में कहीं न कहीं अवश्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य जगहों के नाम भी हैं, यथा–'सुनीता' में प्रयाग तथा लाहौर नगरों का उल्लेख है। 'जयवर्धन' तथा 'अनन्तर' आदि परवर्ती उपन्यासों में घटना चक्र में कई अन्य नगर भी चपेट में आ गये हैं, हस्तन बम्बई में उतरता है। मुक्ति 'बोध' तथा 'अनन्तर' में दिल्ली के अलावा बम्बई, नैनीताल, अहमदाबाद तथा माउण्टआबू नगर भी उल्लिखित हैं। इनके बाद इसी उपन्यास 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर'

में आकर यह महानगरों, होटलों, ट्रंक–काल्स, कैड लैक कारों तथा 'एयर कन्डीशन्ड कोच' का हो जाता है। किसी–किसी उपन्यास, जैसे–'त्यागपत्र' में किसी भी नगर का नामतः उल्लेख नहीं है।

अन्त में मुख्य बात यह है कि इन नगरों का नाम आ जाने से भी वर्णन में कोई अन्तर नहीं पड़ता है, जो वर्णन होता है वह किसी भी नगर का हो सकता है, गली मुहल्लों का वर्णन हो सकता है तथा होटल का वर्णन किसी भी बड़े होटल पर लागू किया जा सकता है।

विभिन्न विचार दर्शन

प्रत्येक युग का वैचारिक और बौद्धिक जीवन कुछ विचारधाराओं से नियन्त्रित होकर चलता है। देश एवं काल की सीमा में युगीन परिस्थितियाँ युगचेतना के निर्माण द्वारा नूतन विचारधाराओं को जन्म देती हैं तथा कुछ विचारधाराएँ पुरानी होने से रूढ़िवादी हो जाती हैं। बौद्धिक व्यक्ति के चिन्तन मनन पर युग चेतना का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है, जिससे वह युगधारा में प्रवाहमान विचारधाराओं से असम्पृक्त नहीं रह पाता। व्यक्ति को उस चेतना के प्रति ईमानदार होना भी चाहिए। युग चेतना एक व्यापक केन्द्रीभूत मूल्य है, जिसे युग धर्म का मूल स्वर भी कहा जा सकता है। जैसे युग एक विशाल परिवेश के अन्तराल का परिचायक है, उसी तरह मानव भी विशाल समूह का द्योतक है। युग धर्म से हमारा आशय मानव धर्म से होता है। युग धर्म कभी शाश्वत नहीं हो सकता और न मानवीय धर्म की कोई शाश्वत कसौटी ही होती है। ये दोनों शब्द मानवतावादी विचारधारा के लिए प्रयुक्त होते हैं।

आधुनिक भारत में वैचारिक जगत अनेक प्रकार की विचारधाराओं से आक्रान्त रहा है, जिससे वह आस्था और विश्वास को

आत्मसात करते हुए अतीत की प्रेरक शक्तियों की उछाल में आगे बढता रहा। गाँधीवाद, मानवतावाद, व्यक्तिवाद और समाजवाद इन चारों ने आधुनिक युग के वैचारिक जगत् को प्रभावित किया। गॉधीवादी विचारधारा और मानवतावाद दोनों एक ही हैं। गाँधी जी इस युग के सबसे अधिक प्रभावशाली चिन्तक रहे जिनसे युग, समाज तथा व्यक्ति प्रभावित हुए बिना न रह सका। युग, समाज और व्यक्ति ये तीनों आपस के संघर्ष से नवीन विचारधारा का निर्माण करते हैं। इन्हीं के मध्य मानवतावाद, समाजवाद और व्यक्तिवाद का जन्म होता है। किस युग में किस प्रमुख विचारधारा का जोर रहेगा, यह युगीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जैनेन्द्र जी के साहित्य से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इनके उपन्यासों और कहानियों में विचार–दर्शनों का पूर्ण प्रभाव मिलता है।

मानवतावादी विचार दर्शन–गाँधीवादी विचार दर्शन

आधुनिक युग के जागरणकाल में स्वामी विवेकानन्द ने मानवतावाद का उपदेश दिया था, जिससे संपूर्ण जगत् प्रकाशमान हो उठा था। गाँधी जी मानवतावादी श्रृंखला की श्रेष्ठ कड़ी हैं। गाँधी जी ने मानवतावादी भावधारा को जब अपनाया तो वह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपने प्रमुख नैतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण दर्शन के रूप में ग्रहण किया गया। हिन्दी के उपन्यास लेखक गाँधी जी के महान् व्यक्तित्व तथा उनके विचार–दर्शन दोनों से प्रभावित रहे। उनके उपन्यासों में गाँधीवादी चरित्रों का प्रकाशन हुआ है तथा गाँधीवादी दर्शन के आधार पर नवीन नैतिक तथा आदर्श मूल्यों की स्थापना भी हुई। हिन्दी में जैनेन्द्र कुमार इसके लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों पर, विशेषकर 'सुनीता' पर

आलोचकों ने गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव स्वीकार किया हैं।[20] जैनेन्द्र जी काम–वासना को भी हिंसा की श्रेणी में रखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि असामाजिक तथा अनैतिक काम भाव को ही लेखक हिंसा की कोटि में रखता है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न मित्र की पत्नी सुनीता पर आसक्त होता है तथा उसे सम्पूर्णता में प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करता है, लेकिन सुनीता आकस्मिक ढंग से नग्न होकर हरि प्रसन्न के मन में जुगुप्सा का भाव जागृत करके उसका हृदय परिवर्तन करती है तथा उसकी वासना रूपी हिंसा का परिष्कार करती है। कुछ आलोचकों का यह मानना है कि सुनीता का नग्न होना अहिंसा है, क्योंकि सूनसान जंगल में कोई अकेली नारी हिंसक पुरुष से अपनी रक्षा अन्य ढंग से कर ही नहीं सकती थी, इसलिए सुनीता को नग्न होना पड़ता है। लेकिन आश्चर्य तो इस बात का है कि गाँधी जी ने स्वयं अहिंसा दर्शन का यह रूप कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया, परन्तु फिर भी आलोचक जैनेन्द्र की कला को सराहते नहीं थकते हैं। शिवनाथ जी ने इसे गाँधीवादी दर्शन का साहित्यिक संस्करण माना है–'रात के समय सूनसान जंगल में हरिप्रसन्न के सामने सुनीता के दिगम्बर हो जाने का रहस्य क्या है? यह गाँधी की अहिंसा का साहित्यिक प्रतिपादन है और इसके लिए मैं जैनेन्द्र कुमार का बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ। साहित्य के क्षेत्र में गाँधी जी की अहिंसा का व्यवहार जैनेन्द्र कुमार के अलावा और किसी के द्वारा इतने ऊँचे रूप में नहीं दिखाई पड़ा अथवा यों कहें कि दिखाई ही नहीं पड़ा।[21] लेकिन सत्य तो यह है कि 'सुनीता' के सभी चरित्र काम कुण्ठा के शिकार हैं। श्रीकान्त यह सोचता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उसके प्रति सुनीता का समर्पण केवल पत्नी होने के कारण है। अतः वह सुनीता को परीक्षा में डालने की नीयत से कुछ दिनों के लिए उसे अकेली

20 महेन्द्र चतुर्वेदी – हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ – 19
21. आलोचना – उपन्यास विशेषांक, अंक – 73, पृष्ठ – 115

छोडकर लाहौर चला जाता है। यथार्थ जीवन में श्रीकान्त इसलिए असामान्य पति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी है। परन्तु सुनीता के सम्पर्क में आते ही उसकी देशभक्ति समाप्त हो जाती है। उसके लिए क्रान्तिकारी पार्टी का उद्देश्य देश–सेवा नहीं रह जाता, बल्कि उनका उपयोग अपनी काम दृष्टि के लिये करता है। इसी बहाने वह सुनीता को रात के अंधेरे में सुनसान जंगल में ले जाता है। सुनीता भी अतृप्त है तथा काम कुण्ठा से त्रस्त है। पति के साथ रहकर भी उसके जीवन में उल्लास नहीं है। ऐसी दशा में हरि प्रसन्न सुनीता और श्रीकान्त के बीच प्रवेश करता है, जिसमें सुनीता अधिक दिलचस्पी दिखाती है, उसकी छोटी से लेकर बड़ी बात तक का विशेष ध्यान रखती है।

प्रमुख बात यह है कि सुनीता गाँधीवादी अहिंसा का आश्रय ग्रहण करके नग्न होने के बावजूद मानसिक रूप से अपनी पवित्रता तथा शुद्धता को स्वीकार नहीं कर पाती। वह हरिप्रसन्न के लिये फिर भी चिन्तित है तथा उसके चरणों की धूल लेकर सौभाग्य सिंदूर भरते हुए उसे विदा देती है। स्पष्ट है कि सुनीता मे भी हरिप्रसन्न के प्रति काम वासना है जिसे टाला नहीं जा सकता और इसे अहिंसा के आवरण में ही ढका जा सकता है।

हिन्दी कथा साहित्य के विकास के साथ गाँधीवादी विचार दर्शन का आदर्श भी बहुत कुछ टूटता गया। स्वयं जैनेन्द्र जी अपने उपन्यास 'कल्याणी' (1929) में इस दृष्टि से असफल रहे हैं। कल्याणी अपने पति को असरानी के हृदय परिवर्तन के लिए सत्याग्रह प्रयास तथा आत्मपीड़ा का मार्ग अपनाती है, लेकिन अन्त में असफल ही रहती है। जैनेन्द्र की आस्था अपनी जगह तब भी कायम रहती है। वस्तुतः जैनेन्द्र ने गाँधी दर्शन को संपूर्णता में नहीं अपनाया, केवल कुछ खास रूपों में ही वे उलझे रहे तथा आत्मपीड़ा को ही गाँधी

दर्शन का पर्याय मानते रहे। यही कारण है कि उनके चरित्रों में एक प्रकार की अन्तर्विरोधी स्थिति दृष्टिगत् होती है तथा उनके प्राय· सभी पात्र निर्बल, आत्मपीड़ित तथा कुण्ठा के शिकार है। इस पीड़ा के दर्शन की अंतिम परिणति मृत्यु में होती है। कल्याणी के चरित्र की अंतिम परिणति उदाहरण के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। गाँधी जी ने मानवतावादी भावधारा को ही अपनाया था। जैनेन्द्र भी इसी विचारधारा से प्रभावित थे। उनका संपूर्ण कथा साहित्य मानवतावादी और गाँधीवादी विचार दर्शन से प्रभावित है। गॉधी जी के सत्य, अहिंसा के तत्वचिंतन ने जैनेन्द्र को नैतिकतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है, तभी वे कामवासना को भी हिंसा मानते है। जैनेन्द्र जी ने प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाया है। 'सुखदा' उपन्यास में हरिसदा ने क्रांति दल संगठन को भी गाँधीवादी दर्शन के फैलने से पहले ही भंग कर देना ठीक समझा। जैनेन्द्र के मानवतावादी विचार दर्शन और गाँधीवादी विचार दर्शन में काफी साम्य है। 'त्यागपत्र' में मृणाल वेश्याओं की बस्ती में रहने लगती है। उसके पीछे उसका व्यक्तित्वदर्शन, सामाजिक परिस्थितियाँ प्रधान कारण हैं। अगर उसे अनुकूल परिस्थितियाँ मिल जाती तो वह यहाँ कभी निवास न करती। 'सुनीता' में हरि प्रसन्न क्रान्तिकारी पात्र है, परन्तु उसका प्रत्येक कार्य भावनात्मक है। वह हृदय से पवित्र मनुष्य है और मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा के लिए ही क्रान्ति करता है।

व्यक्तित्ववादी दर्शन

व्यक्तित्ववादी दर्शन का अर्थ है कि समाज में रहते हुए भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अक्षुण्ण रखना चाहता है। संसार की सबसे बडी पहेली है–एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और संसार की सबसे बड़ी समस्या है–व्यक्तित्व की समस्या। एक स्थान में व्यक्ति सबसे पृथक्

होकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है और दूसरे स्थान में परिवार, समाज तथा जाति और राष्ट्र के साथ सम्मिलित होकर सभी के साथ वह ऐसा सम्बद्ध हो जाता है कि किसी भी स्थिति में वह अपने को सबसे पृथक् नहीं कर सकता।[22] व्यक्ति समाज की इकाई है तो उसका व्यक्तित्व सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति है। हर व्यक्ति अपने में अकेला है और शायद यह अकेलापन ही उसकी वैयक्तिक उपलब्धि है। सामाजिक प्राणी होने के नाते इस वैयक्तिक अकेलेपन को लिए हुए भी समाज से जब तक जुड़ा है तब तक 'मैं' स्थित है।[23] जैनेन्द्र ने औपन्यासिक शिल्प पर ही अपना विचार केन्द्रित किया है। मानव के मन और व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके अन्तर्मन के निगूढ़ भावों की अभिव्यंजना अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की है। 'परख' में व्यक्ति प्रधानता के साथ उन्होंने उसके वैयक्तिक जीवन का चित्रण करते हुए, बाहर से भीतर की ओर जाने की प्रवृत्ति अपनायी।[24] जैनेन्द्र जी व्यक्तिवादी चेतना के कथा साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में व्यक्तिवादी चेतना का समावेश किया है। जैनेन्द्र जी के व्यक्तिवादी दर्शन में चिन्तक के नये क्षितिज उत्पन्न हुए हैं। व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप में जीने का अधिकार है। व्यक्ति को समाज में रहकर दया, ममता, करुणा, प्यार और न्याय आदि प्रवृत्तियों का अनुसरण करना चाहिए। 'जयसन्धि' कहानी में एक स्थान पर यशोविजय कहता है – "वह समाज जहां व्यक्ति का कुल इतना प्रधान है कि प्रेम को व्यर्थ करता है, वह समाज जीर्ण है।[25] व्यक्ति की मनश्चेतना की पर्तों में खोई हुई उसकी वास्तविक असहायता और विवशता का चित्रण किया गया है।

---

22 पदुमलाल चुन्नालाल बक्शी – हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ – 86
23 नई धारा – फरवरी–मार्च 1966, पृष्ठ – 115
24 डॉ० सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ – 169
25 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ (जय सन्धि), पृष्ठ – 169

इस प्रकार जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में व्यक्तिवादी विचार दर्शन मिलता है। जैनेन्द्र जी को व्यक्तिवादी विचार–दर्शन का जन्मदाता कहा जा सकता है। जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण साहित्य व्यक्ति के विकास में गतिरोध तथा शून्य स्थिति की अभिव्यक्ति नहीं करता है। जैनेन्द्र जी ने एक प्रकार का जड़वादी विचार दर्शन प्रस्तुत किया है, उनके इस विचार दर्शन को व्यक्तिवादी दर्शन कहना अधिक उचित लगता है। उन्हें केवल सामाजिक सन्दर्भों में ही व्यक्तिवादी कहा जा सकता है।

विविध

सांस्कृतिक अध्ययन एवं विश्लेषण क्रम में अब तक के समस्त विवेचना के बावजूद कुछ आवश्यक बातें बच जाती हैं जिनका संस्कृति से अनिवार्य रूप से सम्बन्ध है। इसलिए सांस्कृतिक चेतना के विवरण में उनकी उपादेयता असंदिग्ध है। खानपान, वेशभूषा, आचार–विचार, रीति–रस्म आदि प्रमुख हैं, जिनका विवेचन यहाँ अपेक्षित है।

खान–पान

संस्कृति जीवन की समग्रता का सामंजस्य है और खान–पान जीवन का आवश्यक अंग है। अतः उसका सम्बन्ध संस्कृति और सभ्यता से अभिन्न रूप से होता है। इतना ही नहीं प्राचीनकाल से लेकर आज तक मनुष्य के जीवन में घटित विकासों का अध्ययन खान–पान के आधार पर किया जा सकता है। वह समय मनुष्य सभ्यता की चरमोपलब्धि का रहा होगा, जब मनुष्य ने शिकार के लिए औजार बनाना सीखा और कच्चे मांस को भूनकर खाना शुरू किया। आज के युग में खाने के विभिन्न पदार्थ हैं और खाने के विभिन्न ढंग

भी। अधिक संख्या होने के कारण इनकी गणना नहीं की जा सकती। विभिन्न संस्कृतियों में जन्मे, पढे–लिखे व्यक्ति के रहन–सहन के जहाँ भेद मिलेंगे वहीं उनके खान–पान में भी कम विभिन्नता नहीं मिलेगी, उनकी यही विशेषता उन मनुष्यों की रूचियों, संस्कारों तथा प्रवृत्तियों में विविधता पैदा कर देती है और विविध संस्कृतियों का निर्माण कर देती है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक विभिन्नता का रूप देखा जा सकता है। जैनेन्द्र के 'परख' उपन्यास में कट्टो के द्वारा बनाये गये भोजन का वर्णन है। कट्टो गरिमा को खाने के लिए आमन्त्रित करती है वह उसके लिए सब्जी और गरम–गरम रोटियाँ सेंकतीं है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ भोजन की सामग्रियों में भी अनेक सुधार हुये और पौष्टिक आहारों का प्रचलन बढ़ा। आज के विकसित युग में खाने–पीने की अनेक वस्तुयें प्रयुक्त होती हैं जिनके नाम नहीं गिनाये जा सकते हैं। भोजन की अनेक सामग्रियाँ आधुनिक समाज में उपलब्ध हैं। जिनका अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक मनुष्य प्रयोग करता है। वैसे जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य में खान–पान को विशेष महत्व नहीं प्रदान किया है।

वेश–भूषा–श्रृंगार प्रसाधन

वेश–भूषा का सम्बन्ध देश की सभ्यता से होता है, क्योंकि देशगत् विभिन्नता के साथ सभ्यता और संस्कृति बदलती है, जिससे वेश–भूषा में भी अन्तर आ जाता है। इसलिए कहा जाता है कि जैसा देश वैसा वेश। प्राचीनकाल के राजकीय वस्त्रों में शुभ तथा मंगल अवसरों पर मुकुट धारण किये जाने का रिवाज था, साधारण जनता सूती वस्त्र पहनती थी पर रईस लोग उत्सवों के अवसर पर रेशमी वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियाँ सुन्दरता पूर्वक बनाये हुए कानों की बालियाँ, मोतियों की मालायें, मेखलायें और रत्नजडित चूड़ियाँ आदि

व्यवहार में लाती थीं। वेश–भूषा एवं साज–सँवार बहुत हद तक पहनने वाले व्यक्तियों की मानसिक अभिरुचि का परिचय देती है।

जैनेन्द्र जी ने 'सुनीता' में साड़ी–ब्लाउज तथा पेटीकोट का उल्लेख किया है। सुनीता जंगल में हरि प्रसन्न के सम्मुख अपनी साड़ी ब्लाउज तथा पेटीकोट उतारकर नंगी हो जाती है। जैनेन्द्र का उद्देश्य वेश–भूषा को साहित्य में प्रस्तुत करना नहीं है।

आचार–विचार और रीति–रिवाज

आचार–विचार और रीति–रिवाज सभ्यता और संस्कृति की व्यापक परिधि में समाहित होते हैं। प्रत्येक संस्कृति के आचार–विचार और रीति–रिवाज के अपने नियम होते हैं जो दूसरी संस्कृति से पृथक् होते हैं। अनेक देशों के विचारकों ने विभिन्न युगों में आदर्श मनुष्यों के विभिन्न रूप व्यक्त किए हैं। 'प्लेटो' का 'दार्शनिक शासक', अरस्तू का 'मनस्वी व्यक्ति, 'गीता' का 'स्थितप्रज्ञ', बौद्धों का 'बोधिसत्व', नीत्से का 'अतिमानव' आदि ये सब आदर्श पुरुष की ही विभिन्न कल्पनाएँ हैं। अन्य कल्पनाएँ कवियों, नाटककारों तथा उपन्यासकारों की कृतियों में मिल सकती है।[26]

जैनेन्द्र आस्थावादी कलाकार है और उन्हें गीता के कर्मयोग पर पूरी आस्था है। यद्यपि कुछ सुविज्ञ समीक्षक जैनेन्द्र जी को अनास्थावादी कलाकार कहते हैं, किन्तु यह उचित नहीं है। जैनेन्द्र जी मनुष्य के जीवन को भगवान की देन मानते हैं और यही कारण है कि जीवन के प्रति उनका उपयोगितावादी दृष्टिकोण समस्त साहित्य में व्याप्त है। यदि हमने मनुष्य योनि पायी है तो उसका पूर्ण सदुपयोग किया जाय। जीवन से जूझने पर भी मनुष्य को अपनी वीरता और बहादुरी से कार्य करते

रहना चाहिये। जीवन कर्ममय है, अतः जैनेन्द्र जी के साहित्य में निष्काम भाव से कर्म करने पर जोर दिया गया है। अधिक विकास का अपने आप में महत्व आवश्यक है परन्तु शारीरिक भूख की पदार्थ जगत् में उपेक्षा नही की जा सकती। 'सुनीता' उपन्यास में स्पष्ट रूप से कर्म और योग के साथ संयम की जो महत्ता प्रतिपादित हुई है उसका उद्देश्य मनुष्य के विकास में योगदान देना है। मनुष्य का कल्याण इसी में निहित है कि वह जीवन की आवश्यकताओं को ठीक प्रकार से समझे और उन्हें जीवन में उचित रूप से ग्रहण करे। जैनेन्द्र व्यक्ति और समाज में सामंजस्य आवश्यक मानते हैं। समाज से सामंजस्य बनाये रखना व्यक्ति का परम कर्तव्य है। व्यक्ति उसी सीमा तक स्वतन्त्र रह सकता है, जब तक कोई सामाजिक हानि नहीं करता, परन्तु जहां पर यह स्वतन्त्रता अराजकता की ओर अग्रसर होने लगे तो नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि परिणाम की चिन्ता किए बिना मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए, होता तो वही है जो विधि ने रचा है।

इस प्रकार जैनेन्द्र यह स्वीकार करते हैं कि कर्म करते रहना चाहिए और फल ईश्वर देता है। यही 'गीता' का 'कर्मयोग' है, जो जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में सर्वत्र अभिव्यंजित हुआ है। जैनेद्र जी के कथा साहित्य में नैतिक मान्यताओं और आचार–विचार का जो स्वरूप दिखायी पड़ता है, वह 'गीता' का सन्देश ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार–विचार संबंधी नियम काल के परिवर्तन क्रम में परिवर्तित होकर रीति–रिवाज तो बन जाते हैं, परन्तु उनका अस्तित्व परम्पराओं के अलावा कहीं भी सुरक्षित नहीं रह सकता।

---

26 डॉ० देवराज – सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ – 296–297

आदर्श जीवन मूल्य : एक मूल्यांकन

जैनेन्द्र कुमार एक आस्थावादी कथाकार हैं जो जीवन में सदाचार और संयम को सदा महत्व प्रदान करते रहे हैं। वे कभी भी अपने कथा–साहित्य में नैतिकता की अवहेलना नहीं करते। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में अनेकोन्मुखी चित्रण के साथ मनुष्य की नैतिकता, सदाचार तथा वैयक्तिक गुणों की उपयोगिता चित्रित है। लेखक का कार्य उपदेश देना नहीं होता, उसको चाहिए कि विभिन्न प्रकार के पात्रों के माध्यम से मनुष्य के जीवन में अनुभूत कष्ट, विपत्ति, वियोग की पीड़ा आदि मानवीय भावनाओं को स्पष्ट करे। अपने इस दायित्व का निर्वाह यदि वह कर ले जाता है तो वह निश्चित रूप से साहित्य साधन है। जैनेन्द्र जी ने अपने इस दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया है।

जैनेन्द्र जी के लेखन कार्य के प्रारम्भ के समय में ही सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनों ने नैतिक रूप ले लिया था। गाँधी जी के अहिंसा, सदाचार, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी विचार,, मनुष्य का परिष्कार करने वाले आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे, जिसका संस्कारगत प्रभाव जैनेन्द्र के मानस पटल पर अंकित हुआ। 'परख' में सत्यधन, 'सुनीता' में हरि प्रसन्न, 'त्यागपत्र' की कल्याणी आदि सभी ऐसे पात्र हैं जो जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य के आदर्श जीवन मूल्यों के युगानुकूल आलोक स्तम्भ कहे जा सकते हैं। निष्कर्ष रूप से स्पष्ट कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य में एक कथाकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए आदर्श जीवन मूल्यों की विशद अभिव्यंजना की है और आदर्श जीवन मूल्य ही हमारी भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं।

(खण्ड–2)

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में धार्मिक चेतना

जैनेन्द्र की धार्मिक दृष्टि

जैनेन्द्र का जीवन अध्यात्म और भौतिकता का सामंजस्य है। धर्म का अस्तित्व जीवन के सत्य में ही संभव है और जीवन की सार्थकता धर्म में लगे रहने पर ही है। जैनेन्द्र का कथा साहित्य उनके व्यक्तिगत अनुभव का ही प्रतिरूप है। उनकी धार्मिक दृष्टि किसी मत या वाद से जुड़ी नहीं है। उन्होंने वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया, किन्तु धर्म का जो रूप आदिकाल से विश्व के सभी धर्मों में प्राप्त होता है, वह सभी उनके साहित्य में सहज रूप में ही देखने को मिलता है। जैनेन्द्र ने धर्म को ज्ञान से नहीं, बल्कि अनुभव से प्राप्त किया है। उनका धर्म मानव धर्म की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। धर्म के इस विस्तृत रूप के अन्तर्गत जीवन के विभिन्न अंगों का समावेश हो जाता है। उनके कथा साहित्य में धर्म का अस्तित्व उसी प्रकार लक्षित होता है जैसे दूध में मक्खन या पुष्प में सुगन्ध।

जैन धर्म

जैनेन्द्र का साहित्य उनके युग की परिस्थितियों और संस्कारों का ही परिणाम है। जबकि जैनेन्द्र स्वयं को सभी बन्धनों से अलग मानते हैं, किन्तु यह सम्भव नहीं है कि मनुष्य नितान्त निरपेक्ष हो जाए। व्यक्ति का जीवन और उसके विचार नितान्त नवीन नहीं हो सकते। उनके धार्मिक विचार किसी नवीन आदर्श की स्थापना नहीं

करते, बल्कि उनका महत्व सत्य की आवश्यकता के अनुकूल नये ढंग से प्रकट करने में है।

जैनेन्द्र का जन्म जैन परिवार में हुआ है। जैने धर्म की आत्मा उनके संस्कारों में व्याप्त है। जैनेन्द्र ने यदि स्वधर्म के रूप में किसी भी धर्म को स्वीकार किया है तो वह जैन धर्म है।जैनेन्द्र ने अपने सम्पूर्ण जीवन को जैन आदर्शों में ही ढालने का प्रयत्न किया है। कथा साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है, अतः जैनेन्द्र के कथा साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव होना समुचित प्रतीत होता है।

धर्म : अर्थ और स्वरूप

जैनेन्द्र जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित हैं। जैनेन्द्र का साहित्य उनके इस प्रभाव का ही परिणाम है। जैनेन्द्र ने जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया है। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य में जैन धर्म के विभिन्न अंगों और उपांगो का वर्णन किया है। कुछ जैन कथाएँ उनके जीवन का अंग बन गई हैं, उसके प्रभाव से उनका हृदय आर्द्र हो उठा है। जैनेन्द्र का जीवन सरलता और निरहंकारिता का आदर्श बन गया। जैन धर्म किसी प्रमुख समय में प्रमुख मनुष्य के माध्यम से नहीं चलाया गया। उनके अनुसार यह तो जीवन धर्म है। ईसाइयों ने ईसा को ही 'गॉड' अथवा 'ईश्वर' माना है, किन्तु जैनियों ने महावीर स्वामी को अपना आदि पुरुष नहीं, बल्कि चौबीसवां तीर्थंकर माना है। उनके अनुसार मनुष्य ही समस्त सांसारिक वासनाओं और दोषों से अलग होकर कैवल्य को प्राप्त करता है। कैवल्य प्राप्त मनुष्य ही ईश्वर के सदृश है। महावीर स्वामी के तपःपूत व्यक्तित्व ने जैनेन्द्र को अत्यधिक प्रभावित किया है। वे उन्हें अमर विभूति मानते हैं। उनकी मृत्यु हमें उनसे दूर नहीं कर सकती।[27]

---

27 जैनेन्द्र कुमार – मथन, पृष्ठ – 221

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। साहित्यकार का भी एक धर्म होता है, उसे साहित्य का धर्म कहते हैं। साहित्य की रचना की कुछ मर्यादाएँ होती हैं, उनसे अलग रहकर साहित्यकार अपने साहित्य के महत्व को अक्षुण्ण नहीं रख सकता। उपदेश देना अथवा प्रचार साहित्यकार का धर्म नहीं है। यही कारण है कि जैनेन्द्र जैन धर्म के समर्थक होते हुए भी प्रचारक नहीं बने हैं। जैनियों की यह बड़ी अभिलाषा थी कि जैनेन्द्र जैन साहित्य की रचना करे, किन्तु जैनेन्द्र के अनुसार जैन साहित्य लिखना ही जैन धर्मावलम्बी होने का सूचक नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है –

"क्या जो मैं लिखता हूँ वह साहित्य जैन नहीं है ××××× क्या जैन धर्म ग्रन्थों में वर्णित नामावली तथा शब्दावली के प्रयोग से कोई जैन बन जाता है। उस सूरत में ऐसा भी तो हो सकता है कि वह साहित्य जैन तो हो साहित्य हो ही न।"[28] जैनेन्द्र के अनुसार जिस कार्य के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा होती है..........उसका प्रभाव अनायास ही साहित्य में परिलक्षित होने लगता है। साहित्यकार को उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, क्योंकि प्रयास में प्रचार का आग्रह रहता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में धर्म के किसी वाद का प्रचार नहीं किया गया है, उनके पात्रों का जीवन इस प्रकार से ढाला गया है कि वे अपने आचरण में अपनी धार्मिकता का आभास देते हैं।

जैनेन्द्र ने जैन धर्म की ही तरह वस्तु के स्वभाव को ही धर्म माना है, किन्तु मनुष्य के स्वभाव को ही कर्म मान लेने से धर्म का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। जैनेन्द्र ने मनुष्य या वस्तु की आत्म प्रकृति को ही धर्म माना है।[29] आत्म तत्व की प्राप्ति ही जीवन का परम धर्म है। जैनेन्द्र के समस्त कथा साहित्य के पात्र उसी आत्मतत्व

---

28 जैनेन्द्र कुमार – परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 42

29 जैन धर्म को भी इतना जानता हूँ कि वह आत्म धर्म है। (जैनेन्द्र कुमार – मंथन, पृष्ठ – 91)

के साक्षात्कार में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। 'जयवर्धन', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'परख' आदि उपन्यासों में अहं के विसर्जन द्वारा आत्मतत्व की प्राप्ति का प्रयास किया गया है। धर्म की पूर्णता अह के विसर्जन में ही सम्भव हो सकती है।

जैनेन्द्र ने धर्म के शास्त्र–सम्मत रूप को भी स्वीकार किया है धर्म शब्द 'धृ' धातु से निःसृत है। 'धृ' का अर्थ है धारण करना। धर्म की धारण–शक्ति के कारण ही सृष्टि टिकी हुई है। मनुष्य का धर्म सांसारिक बन्धनों से संयुक्त होकर ईश्वर की ओर आकर्षित होता है। हिन्दू धर्म में यह स्वीकार किया गया है कि धर्म की धारण शक्ति 'आत्मा' में ही व्याप्त है। अतः प्रत्येक कर्म का मूल आत्मकेन्द्रित होना चाहिए और समस्त कर्मों को ईश्वर की प्राप्ति के हेतु ही किया हुआ समझना चाहिए।[30] सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रहते हुए भी जैनेन्द्र ने स्वधर्म को सबसे महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ माना है।

धर्म और सम्प्रदाय

धर्म अपने विशुद्ध रूप में अव्यक्त है, क्योंकि वह आत्मधर्म है। आत्मा का केवल अनुभव किया जा सकता है, किन्तु उसे देखा नहीं जा सकता। आत्मा की सत्यता शरीर में ही है। नहीं तो वह प्रेत के समान है। आत्मा के बिना शरीर मुर्दा अथवा शव कहलायेगा। अतः दोनों का सहअस्तित्व अनिवार्य है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना सांसारिक दृष्टि से ठीक नहीं है। मनुष्य जीवन में रंग–रूप, गरीबी–अमीरी, ऊँच–नीच आदि विभिन्न बातें मिलती है। मनुष्य अपनी नासमझी के कारण इन बाह्य भेदों को ही सत्य मान लेता है और सारे जीवों के प्राण की समानता के रहस्य को भूल जाता है। इसी

---

30. जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 196–197

अज्ञानता के कारण आपस में संघर्ष उत्पन्न होता है। धर्म एक भावनात्मक स्थिति है। भावना अपने में कमजोर है। जैनेन्द्र के अनुसार कोरी धर्म भावना में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह अपने को स्थायी बनाए रख सके। अतः धर्म की स्थापना के लिए सम्प्रदाय का अस्तित्व अनिवाय है। प्राचीन काल से आज तक यदि मानव धर्म स्थायी रह सका है तो वह विभिन्न धार्मिक संस्थाओं, धार्मिक ग्रन्थों आदि में सन्निहित होकर ही अक्षुण्ण रह सका है। धर्म और सम्प्रदाय आत्मा और देह के सदृश अकाट्य बन्धन से जुड़े हैं। उनके सम्बन्धों को बाह्य प्रहारों द्वारा विनष्ट करना उचित नहीं है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म का संस्थाबद्ध रूप ही सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयुक्त हो सकता है।[31]

जैनेन्द्र की धार्मिक विचारधारा समय के परिवर्तन के साथ बदलती रहती है। जैनेन्द्र को धर्म की व्यापक शक्ति का पूर्ण ज्ञान है। उनके अनुसार धर्म कर्मकाण्ड में ही सीमित नहीं रह सकता। धर्म का स्वरूप युग विशेष की आवश्यकता पर ही निर्भर करता है, किन्तु धर्म के अस्तित्व का कभी भी निषेध नहीं किया जा सकता। धर्म आत्म धर्म है, जीवन धर्म है, अतः उसका रूप शाश्वत है। आत्मा के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। सभी सम्प्रदाय आत्मधर्म से युक्त होकर ही सही माने जा सकते हैं। धर्म रहित सम्प्रदाय उसी प्रकार निरर्थक हैं जैसे प्राणविहीन शरीर। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म के संस्थापक रूप को स्वीकार करने के लिए अहिंसा धर्म का पालन आवश्यक है। 'अनन्तर' में वनानि द्वारा जिस शान्ति धाम की स्थापना की योजना बनाई गयी है वह धर्म संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक न होकर विश्वव्यापी मानव धर्म की स्थापना का प्रयत्न प्रतीत होता है।[32] सम्प्रदाय में रहकर ही

---

31 जैनेन्द्र कुमार – मंथन, पृष्ठ – 166

32 वनानि एक सस्था स्थापित करना चाहती है, शांति धाम। देश–विदेश का प्रश्न उसमें न होगा, न किसी खास धर्म या मन्तव्य का। उनका विचार है कि अपनी–अपनी संस्कृतियों ने भी मनुष्य की परस्परता में बाधा डाली है। – (जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 67)

धर्म–भावना प्रगति के रास्ते पर चल सकती है। जंनेन्द्र की धार्मिक चेतना अत्यन्त उदार है। उनके कथा साहित्य में जहॉ कहीं भी उनकी धार्मिकता के दर्शन होते है, वे उनके विचारो की उच्चता और व्यापकता के ही दर्शन कराते हैं। उनका साहित्य उनके धर्म का ही अभिव्यक्त रूप है।

जैनेन्द्र के अनुसार यद्यपि परम धर्म मानव धर्म या अहिंसा धर्म है, किन्तु सामान्य रूप में किसी भी को किसी विशिष्ट मार्ग पर चलने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। ,'अनन्तर' में जैनेन्द्र ने अपनी इसी सहृदयता का परिचय दिया है। जैनेन्द्र ने कहा है कि हम अपने मन से सबको नापते हैं, शायद हम विवश हैं। इसलिए हममें से हर एक को चाहिए कि स्वयं को लेकर जो भी चाहे हों, दूसरों को उस जैसा न रहने दे।[33] धर्म व्यक्ति के अहं को नष्ट कर देता है, उसे अधिक से अधिक उदार बना देता है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' में अपने शब्दों में कहा कि है धर्म जिसे गला देता है मत उसी को फुलाने लगा।[34] जैनेन्द्र ने धर्म के सम्प्रदाय को स्वीकार किया है, किन्तु उनकी आत्मा मानव हित में ही केन्द्रित रहती है। धर्म सामंजस्य उत्पन्न करता है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म वह है, जिसे मानकर बुद्धि में नम्रता आती है और विद्रोह नहीं रहता।[35] अर्थ और काम से युक्त हो जाता है। यद्यपि अर्थ और अर्थ और काम भी जीवन के पुरुषार्थ हैं, किन्तु उनका भी धर्म से युक्त होना आवश्यक है।

धर्म और विज्ञान

जैनेन्द्र ने धर्म और विज्ञान के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण अपनाकर कथा साहित्य की रचना की है। उन्होंने धर्म और विज्ञान

---

33 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 67
34 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 85
35 जैनेन्द्र कुमार – समय, समस्या और सिद्धान्त, पृष्ठ – 131

के मध्य की खाई को भरने का प्रयास किया है।[36] उनके अनुसार यदि धर्म आत्मा की वस्तु है तो विज्ञान शरीर की वस्तु हैं। दोनों का अटूट सम्बन्ध है जैनेन्द्र के अनुसार आधुनिक युग में एक मात्र गॉधी ही धर्म के महान वैज्ञानिक हुए हैं।[37] विज्ञान जीवन से ही सम्बद्ध है। मानव उपयोगिता से पृथक होकर विज्ञान का कोई महत्व नहीं है। जैनेन्द्र ने धर्म को विज्ञान से युक्त बनाने के लिए उसकी आत्मा को ही ग्रहण किया है। कर्म के प्रति निष्ठा ही विज्ञान का धर्म है। धर्म का यही स्वरूप जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास 'कल्याणी' में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। जैनेन्द्र ने कहा है कि 'उपयोगी कर्म में अपने को भूलकर लगे रहना ही धर्म है।[38]

जैनेन्द्र के अनुसार वैज्ञानिक यदि मानव धर्म की ओर बढ़ेगा तो एक ऐसी आस्था का जन्म होगा जो सामान्य अर्थ में भिन्न होगी। विज्ञान की सार्थकता आस्थापरक होने में है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म आस्था का विषय है, किन्तु कभी–कभी उसमें इतना तर्क –वितर्क उत्पन्न हो जाता है कि धर्म की मूल संवेदना नष्ट हो जाती है। जैनेन्द्र ने इस सत्य को अपनी एक कहानी में कोयले में आग के अस्तित्व के आधार पर दर्शाया है।[39] उनके अनुसार मुक्का–मुक्की द्वारा तत्व निर्णय ही काल ज्ञापन का एक उपाय नही है अन्य भी अनेक कर्म हैं, जीवन उनसे भी चलता है, बल्कि बहस की जगह उन कार्यों को करना कुछ कहला सकता है।

---

36 जैनेन्द्र कुमार – इतस्ततः, पृष्ठ – 189
37. वही, पृष्ठ – 190
38 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ –54
39 डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ – 69–70

धर्म और राजनीति

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रथम काल राजनीतिक उथल–पुथल का काल था। चारों ओर गाँधी का प्रभाव फैला हुआ था। जैनेन्द्र ने अपने जीवन की आध्यात्मिकता को राजनीति में ढालने का प्रयास किया है। जैनेन्द्र गाँधी के युग में ही हुए थे। वे गॉधी के वाद से विशेष जुड़े नहीं है, किन्तु युगीन चेतना से वे स्वयं को पूर्ण रूप से अलग नहीं कर सके। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म निरपेक्षता के दो रूप मिलते हैं एक वह रूप जिसमें धर्म के प्रति पूर्ण उपेक्षाभाव रहता है और दूसरा वह जिसमें किसी धर्म विशेष को न स्वीकार करते हुए भी सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना मिलती है। राजनीति में जैनेन्द्र ने धर्म के जिस स्वरूप का समावेश करना चाहा है, वह उसका विज्ञान–समस्त रूप ही है। उसमें पूजा–व्रतादि को स्थान न देकर धार्मिक श्रद्धा का विशेष महत्व दिया गया है। 'जयवर्धन' और 'मुक्तिबोध' में तथा उनकी कुछ कहानियों में उनके इसी विचार के दर्शन मिलते हैं। जैनेन्द्र मनुष्य की सार्थकता धर्ममय होने में ही स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि गाँधी के बाद हमने भौतिकता पर ध्यान दिया है और नैतिकता की उपेक्षा की है, फिर भी उस नैतिक भाषा का उच्चार और उद्घोष करते आए हैं। उससे बाहर और अन्दर की स्थितियों में फर्क पड़ा और हमारी साख टूट रही है।[40]

जैनेन्द्र की दृष्टि में अहिंसा

जैनेन्द्र के साहित्य की आत्मा अहं विसर्जन और अहिंसा में ही सीमित है। जैनेन्द्र के अनुसार अहिंसा एक अखण्ड सत्य है और यह आत्मिक धर्म है। अहिंसा धर्म के लिए अपवाद नहीं है, क्योंकि वह

---

40 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 50

परम श्रेष्ठ धर्म है। परम श्रेष्ठ धर्म तो निरपवाद होता है ही, व्यक्ति, परिस्थिति और देशकाल आदि के भेद से उसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैनेन्द्र ने स्वधर्म के पालन के लिए विशेष बल दिया है। स्वधर्म पालन के मूल में उनकी अहिंसक नीति ही विद्यमान है। जैनेन्द्र की अहिंसा शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित न होकर मन की अहिंसा में भी व्याप्त है।

अहिंसा जैनेन्द्र के धार्मिक विचार का मूल आधार है। अहिंसा वह प्राणतत्व है जिससे अलग होकर धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। जैन धर्म में अहिंसा पर बहुत जोर दिया गया है। उनकी अहिंसा नीति पूरे विश्व में व्याप्त है। जैन धर्म में अहिंसा का बड़ी कठोरता से पालन किया गया है। जैनेन्द्र ने अहिंसा को मानव धर्म मानकर ही रचना की है। 'जयवर्धन' में जैनेन्द्र ने व्यक्त किया है "देह के जीने–मरने से उसका सम्बन्ध नहीं है। मैं सबको बार–बार मारूँ या सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों में – इन सबसे अहिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है। पर अपने भीतर के प्रेम को मरने दूँ तो मुझसे बड़ा अपराधी कौन होगा।[41]

जैनेन्द्र ने स्वधर्म पालन में होने वाली हिंसा को पाप नहीं माना है। उन्होंने जीव–हिंसा को बहुत बड़ा पाप माना है। जैनेन्द्र ने विकासवाद में, देवत्व को हिंसा में अहिंसा की स्थिति के आधार पर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार हिंसा वह प्रक्रिया है, जिसमें स्वकीय के लिए 'पर' पर प्रहार होता है। यदि 'स्व' के पास 'स्वकीय' न हो तो प्रहार की प्रेरणा का अन्त हो जाय। वस्तुतः प्रहार की हिंसा में भी स्वकीयता अर्थात् अहिंसा की आधार स्थिति आवश्यक है। जैनेन्द्र की 'निर्मम' कहानी में इस बात को स्पष्ट किया गया है–

---

41 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 148

'जो चीज तुम्हें दुःख पहुँचाती है, हिंसा वही करने के लिए तुम्हें बाध्य करती है। यश–प्रतिष्ठा जिससे तुम भागना चाहते हो, वे ही तुम्हें चिपटानी पड़ती है, किन्तु मैं समझता हूँ शिव का वह विराट् उत्सर्ग का अवसर है। × × × × × तब जो तुम जैसे विरलों को मिलता है, तुम खोओगे नहीं।[42]

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में कर्म निष्ठा को प्रधान माना गया है। जैनेन्द्र के साहित्य में अहिंसा विविध रूपों में मिलती हैं। उन्होने उपने साहित्य में पात्रों के चित्रण में अपनी पूर्ण अहिंसक नीति का समावेश किया है। जैनेन्द्र के पात्र किसी को दुःख पहुँचाना नहीं चाहते। उनके पात्र स्वयं कष्ट झेलकर मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु अपने कारण किसी को कष्ट नहीं देते। 'परख' में कट्टो तथा 'त्यागपत्र' में 'मृणाल'' उनके ऐसे ही पात्र हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन कष्टों में उलझा ही रहा। 'परख' में कट्टो अपने प्रेमी की खुशी के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती है। वह यह कदापि पसन्द नहीं करती कि उसके कारण उसके प्रेमी को कष्ट का अनुभव हो। 'त्यागपत्र' में मृणाल का सम्पूर्ण जीवन दुःख से पूर्ण है, किन्तु वह अपने दुःखों को बाँटना नहीं चाहती। वह यह कदापि स्वीकार नहीं करती कि उसके पीछे उसके भतीजे प्रमोद को कष्ट हो। इन दोनों उपन्यासों में जैनेन्द्र ने निज की व्यथा को सहने में ही अपनी अहिंसक नीति का परिचय दिया है। 'सुखदा', 'विवर्त' में भी जैनेन्द्र ने सुखदा और भुवनमोहिनी के पति को उनके प्यार की रक्षा के हेतु कष्ट सहते हुए दिखाया है, किन्तु उपरोक्त उपन्यासों में तथा इन उपन्यासों की स्थिति में अन्तर है। उनमें बलिदान की चरम सीमा थी, वह बलिदान सहर्ष था, किन्तु इन उपन्यासों में पुरुष पात्रों की दुर्बलता का परिचय मिलता है।

42 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ (निर्मम), पृष्ठ – 46

'सुखदा' और 'विवर्त' के पुरुष पात्र बहुत कायर और बुजदिल प्रतीत होते हैं। अहिंसा साहस में है, विवशता में नहीं।

अपरिग्रह

जैनेन्द्र अपने जीवन और साहित्य में मध्यम मार्ग को अपनाकर चले हैं। उनके अनुसार ईश्वरोन्मुखता को छोड़कर किसी भी मार्ग की एकोन्मुखता स्वाभाविक नहीं है। धर्म ह्रदय की वस्तु है। अतः अपरिग्रह की भावना ह्रदय में होनी चाहिए, क्योंकि प्रायः वाह्य जीवन में अपरिग्रही दिखाई देने से व्यक्ति की वस्तु के प्रति बहुत अधिक आसक्ति होती है। अनासक्ति भाव से प्राप्त की गयी कोई भी निधि व्यक्ति को उसके धर्म से अलग नहीं कर सकती। जैनेन्द्र के अनुसार 'अपरिग्रह की कृतार्थता वस्तु के अछूते रहने में नहीं है, वस्तु के मध्य खुले रहने में है।[43] जैनेन्द्र के अनुसार हमारी प्रवृत्ति सहज होनी चाहिए। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में उनकी अपरिग्रहिता का समावेश मिलता है। वे हमेशा कम से कम में कार्य करने में सन्तुष्ट रहते हैं। उनका जीवन दिखावे से दूर नितान्त सादा है। उनके अनुसार त्याग में अहं का समावेश नहीं होना चाहिए। प्रत्येक सुख का त्याग करने वाले व्यक्ति में अपने कर्म का बोध बना रहता है और वह यह सोचता है कि मैंने यह त्याग किया है, तो कभी अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। 'बाहुबली' कहानी में सम्पूर्ण राज्य–सुखों को त्यागकर कैवल्य बाहुबली नहीं प्राप्त कर पाता, किन्तु उसका भाई चक्रवर्ती मरत राज्यभोग करता हुआ भी सहज ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। किन्तु बाहुबली को अपने त्याग और तप का बोध बना रहता है।[44] लाल सरोवर कहानी में वैरागी अत्यधिक विनम्र है, वह अपने महत्व से

---

43 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न, पृष्ठ – 110
44 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ (बाहुबली), पृष्ठ – 171

अनभिज्ञ है। त्याग, सेवा और पराहित की भावना उसमें कूट–कूट कर भरी हुई है। उसे धन की आवश्यकता नहीं है, अतः धन की प्राप्ति उसे कष्ट देती है, क्योंकि धन समस्त अनर्थों का मूल है।[45]

जैनेन्द्र के धन के प्रति अनासक्ति में ही अपरिग्रह के आदर्शो की कल्पना है, किन्तु भावना की पवित्रता के साथ ही कर्मण्यता की भी आवश्यकता अपरिग्रह है। कश्मीर की वह यात्रा उनकी अपरिग्रह प्रवृत्ति का उदाहरण है। संसार में रहकर जीवन व्यतीत करने के लिए धन आवश्यक है, किन्तु जैनेन्द्र एक स्थल पर कहते हैं कमाई एक चिन्ता का चक्कर है। सोचा कि जीवन वहाँ जीकर देखना चाहिए, जहाँ स्वयं जीविका प्रश्न न हो और आस्तिक चिन्ता का विषय न हो वह जीवन बन्धन से हीन होगा और मुक्ति का क्या अर्थ है?[46] किन्तु जीवन से उबकर संसार से मुक्ति लेने वाला व्यक्ति कभी महान नहीं हो सकता। मनुष्य का पुरुषार्थ कर्मशील होने में है। 'अनन्तर' में जैनेन्द्र जी के विचार द्रष्टव्य है कि "तुम जैसी कोई जो पैसे से समर्थ हो और उसकी सेवा पर होकर सर्वथा अपरिग्राही बन जाऊँ[47] जैनेन्द्र के विचारों से स्पष्ट है कि 'अनन्तर' में प्रसाद को धन के प्रति आसक्त होते हुए अपरिग्रही होने हेतु प्रयत्नशील बनाया है।

जैनेन्द्र के साहित्य का सैद्धान्तिक पक्ष उनके गम्भीर चिन्तन मनन का परिणाम जान पड़ता है। अपरिग्रह धर्म का अनिवार्य आवश्यक अंग है। आदिकाल से ही ऋषियों के जीवन और उस समय के साहित्य में अपरिग्रही प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु समय के साथ–साथ उसके उपयोग में अन्तर आना स्वाभाविक था। जैनेन्द्र के अनुसार जिस प्रकार मानव शरीर की सार्थकता समष्टि की सेवा और कल्याण

---

45. जैनेन्द्र कुमार – लाल सरोवर, पृष्ठ – 178
46. जैनेन्द्र कुमार – कश्मीर की वह यात्रा, पृष्ठ – 67
47 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 61

मे सन्निहित होने में है, उसी प्रकार व्यक्ति का धन समष्टि की पूर्ति का साधन होना चाहिए। जैनेन्द्र के अनुसार धन का संग्रह पाप नहीं है, यदि व्यक्ति को उसके प्रति कोई वासना न हो। धन का संग्रह सार्वजनिक हित के लिए चाहिए। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' में व्यक्त किया है कि 'आप लोग सार्वजनिक पैसा रखते हैं, जिसमें मेरा हम नहीं पहुँचता और इसलिए पैसा मुझे पास लेना पड़ता है।[48]

जैनेन्द्र के अनुसार अपरिग्रह धर्मनीति का अनिवार्य अंग है। अपरिग्रही आचरण द्वारा जीवन के सत्य का बोध हो सकता है। संसार में कोई न कुछ लेकर आया है न कुछ लेकर आता है और न कुछ लेकर जाता है। वस्तु या धन के संचय में मनुष्य का 'मैं' प्रबल हो उठता है। 'यह तेरा' 'वह मेरा' यह भावना संघर्ष की प्रेरक बनती है। जैनेन्द्र ने मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना के लिए अपरिग्रह को महत्वपूर्ण माना है। जैनेन्द्र के अनुसार संसार मिथ्या है, मानव शरीर नश्वर है। अतः संचय की प्रवृत्ति निरर्थक ही सिद्ध होती है।[49]

परहित

जैनेन्द्र के अनुसार मानव धर्म परहित की भावना पर आधारित होना चाहिए। उसमें अहं–विसर्जन के भाव सन्निहित होने चाहिए। जैनेन्द्र जी की धारणा है कि शरीर को अधिक कष्ट देकर व्यक्ति इन्द्रियों को संयमित कर लेता है, उसकी सांसारिक विषयों में वासना नहीं रहती। जैनेन्द्र के अनुसार जो मनुष्य संसार से विरक्त होकर धार्मिक होने का प्रयास करते हैं, वह उनका बाहरी दिखावा है।

---

48 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 141

49 पदार्थों को बटोर कर उनके बीच हमने रुकना चाहा, यही हमारी भूल है। क्या कोई कभी रुक सका है? (जैनेन्द्र कुमार – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ – 234

जैनेन्द्र के अनुसार काया–क्लेश के द्वारा हम अपनी आत्मा के रस को सूखा देते हैं। बूँद का अस्तित्व समुद्र की अपेक्षा में ही सम्भव है। समुद्र से पृथक होकर उसका अस्तित्व स्थिर नहीं रह सकता।[50] जैनेन्द्र ने 'बाहुबली' को मनुष्यधर्मी बनाने के हेतु उसे तपस्या से विमुख कर जनहित की ओर केन्द्रित किया है कि मैं सबके प्रति सदा सुप्राप्त होने के स्थिति में अब रहूँगा.... बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रन्थियाँ सब खुल गयी थीं। अब उन्हें किस ओर से बन्द रहने की आवश्यकता थी? वे चहुँओर खुले सबके प्रति सुगम रहने लगे थे।[51]

जीवन में धर्म की उपादेयता

जैनेन्द्र के अनुसार धर्म जीवन का आवश्यक अंग है। मानव–जीवन के सभी कर्मों की सार्थकता उसके धर्ममय होने में है। वर्तमान परिस्थितियों में धन और उसका भोग ही उसके जीवन का अंग बन गया है, धर्म से उसका जीवन दूर होता जा रहा है। बड़े–बड़े अमीर लोग धन की ओर आकर्षित होते जा रहे हैं और धन उनके पास खिंचता भी आ रहा है, परन्तु उनकी आत्मा सूखती जा रही है। जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य में ऐसे पात्रों का चित्रण किया है, जिनके लिए अर्थ और काम की प्रधानता है, धर्म से वे लोग बिल्कुल अनिभिज्ञ हैं और न ही उन्हें उसको जानने की जिज्ञासा ही है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि ये धाम (शांति धाम) मैं नहीं समझता, जिसमें रहता हूँ वही समझता हूँ रूपया समझता हूँ यह भी समझता हूँ कि सब मुझे उसी के लिए समझते हैं। मुझे और कुछ से मतलब नहीं है।[52] 'विवर्त', 'कल्याणी', 'अनन्तर',

---

50 जैनेन्द्र कुमार – इतस्ततः, पृष्ठ – 199
51 जैनेन्द्र कुमार – बाहुबली, पृष्ठ – 179
52 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 70

'मुक्तिबोध' आदि उपन्यासों में जैनेन्द्र ने अर्थ में डूबे व्यक्तियों का चित्रण किया है। 'अनन्तर' में जया अति मौलिकता से परेशान होकर 'शान्तिधाम' की स्थापना करती है। उसके अनुसार जीवन भोगाभिमुख होता जा रहा है उसने संकल्प बॉधा है कि इस गिराव को रोकना होगा। जीवन को उसकी सही धुरी पर फिर से निष्ठ और प्रतिष्ठ करना होगा।[53] जैनेन्द्र के अनुसार सत्य धर्म वही है जिसमें अन्तश्चेतना और आन्तरिकता बढ़ती हुई महसूस हो। जिसमें चित्त सिकुडता, सिमटता हो वही अधर्म है।[54] धर्म का भाव आत्मा के साथ ही पनपता है। अतएव जैनेन्द्र के विचारानुसार जीवन में जिन कामों से आनन्द और सुख की अनुभूति होती है वही धर्म के नाम से पुकारा जाता है। धर्म का मूल परहित में घुल मिल जाना चाहिए।

जैनेन्द्र की दृष्टि में मोक्ष

मनुष्य के जीवन में धर्म का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। धर्म जीवन का केन्द्र है, आधार है, जिस पर मनुष्य जीवन यात्रा का प्रारम्भ और अन्त करता है। मोक्ष की प्राप्ति ही उसका उद्देश्य है। मोक्ष मनुष्य के जीवन की अन्तिम पहुँच है। जहां पर मनुष्य जाकर शीघ्र ही सारे कर्म—बन्धनों से अलग हो जाता है। जैनेन्द्र ने जीवन की यायार्थता से विमुख होकर किन्हीं सिद्धान्तों की स्थापना नहीं की है।

जैनेन्द्र मोक्ष को ठिकाना न मानकर यात्रा के रूप में मानते हैं। यात्रा का सुख तभी तक होता है जब तक कहीं ठिकाने का पता न हो। ठिकाने को जानकर चलने में यात्रा ठिकाने तक ही समाप्त हो जाती है। जैनेन्द्र ने 'समय और हम', 'प्रश्न और प्रश्न' में इन्हीं विचारों को स्पष्ट किया है। जैनेन्द्र का विचार है कि सफर जिसका काम है

---

53 वही, पृष्ठ – 56
54 जैनेन्द्र कुमार – समय, समस्या और सिद्धान्त, पृष्ठ – 131

वह मुसाफिर मंजिल को माने नहीं बैठेगा। मुझे तो यह लगता है कि जो मंजिल को जान गया वह कभी भी मंजिल तक पहुँचा नहीं।[55]

जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति संसार के त्याग में नहीं वरन् उसके सहर्ष स्वीकार में है। जैनेन्द्र के अनुसार 'ज्ञान', 'कर्म' और 'भक्ति' साधना के ये तीन वर्ग समझे जाते हैं। ये तीन रहते होंगे तब मुक्ति कैसे मिलती होगी, मैं नहीं जानता।[56] ज्ञान, कर्म और भक्ति की समग्रता में ही जीवन का लक्ष्य पूर्ण होता है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष का अभिप्राय संसार से मुक्ति नहीं, बल्कि अहं से मुक्ति पाना है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष में कर्म से मुक्ति नहीं बल्कि कर्म के लिए प्रेरणा मिलती है। जैनेन्द्र ने अपने संग्रह 'समय', समस्या और सिद्धान्त' में स्पष्ट स्वीकार किया है कि मुक्ति वास्तव में अहं से मुक्ति है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष के रास्ते में मुक्ति बाधा नहीं है। वह सिर्फ रूकावट मात्र है। जन्म–मरण के क्रम में मोक्ष के लिए यात्रा निरन्तर चलती रहती है, क्योंकि मोक्ष के सम्मुख सब निरर्थक है। जैनेन्द्र मोक्ष के ठिकाने पर पहुँचने के लिए धीरे–धीरे चलना आवश्यक मानते हैं।

जैनेन्द्र मोक्ष की प्राप्ति के लिए चारों पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में धर्म के द्वारा अर्थ और काम के रास्ते से चलकर ही मोक्ष का ठिकाना प्राप्त हो सकता है। जैनेन्द्र जीवन के संघर्ष से भागकर मिलने वाले मोक्ष को ठीक नहीं मानते। 'बाहुबली' कहानी में बाहुबली अपने तन को तपस्या के माध्यम से अस्थि मात्र कर लेने पर भी कैवल्य नहीं प्राप्त कर पाता है। जबकि उसका भाई राज्यभोग करते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति करता है। वस्तुतः जैनेन्द्र के जीवन, धर्म, दर्शन सबका सार है–अहं से मुक्ति। अहं से मुक्ति पाने पर ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। यही जैनेन्द्र की धार्मिक चेतना का तत्व है।

---

55 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ – 209
56 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न, पृष्ठ – 48

(खण्ड–3)

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में आर्थिक चेतना

समाज के निर्माण में आर्थिक चेतना का अत्यधिक महत्व है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक जीवन के विकास में आर्थिक चेतना का अपना निजी महत्व होता है, क्योंकि आज के युग में अर्थ का महत्व ही अधिक है। समाज में व्यक्ति के उचित स्थान का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से किया जताा है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि किसी देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक प्रभावशाली उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं।

साहित्य का प्रमुख स्रोत समाज है। कथाकार वैसे तो साधारण व्यक्ति होता है, परन्तु उसकी चिन्तन शक्ति एवं संवेदनों को ग्रहण करके उनके अभिव्यक्ति की कला सामान्य जन से भिन्न हुआ करती है। कथाकार समाज में रहते हुए समाज से प्रभावित होकर समाज के लिए सृजन करता है। समाज व्यक्ति रूपी इकाइयों का एक संगठन है तथा व्यक्ति और समाज के विकास का आधार आर्थिक चेतना ही है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में आर्थिक चेतना का भी विशिष्ट महत्व है। जैनेन्द्र जी अमीरी और गरीबी के भेद को स्वीकार करते हैं, उनका विश्वास है कि समाज में यह कदापि सम्भव नहीं है कि प्रत्येक को समान आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकें क्योंकि इसके मूल में व्यक्ति प्रकृति की एक दूसरे पर अधिकार करने की भावना विद्यमान है। जैनेन्द्र जी का आर्थिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। जहां वह अमीरों पर व्यंग्य करते हुए गरीबों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते दिखायी पड़ते हैं, वहीं वह किसी वाद से प्रभावित नहीं है। जैनेन्द्र जी ने किसी आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि सामाजिक जीवन में

आर्थिक विषमता एवं पैसे के महत्व को अपने उपन्यासों और कहानियों में अभिव्यंजित किया है।

आर्थिक विषमता

जैनेन्द्र जी का युग आर्थिक वैषम्य का युग था। सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में यह विषमता बढ़ती जा रही थी। अतएव जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में आर्थिक विषमता से प्रताड़ित मानव अनेक रूपों में दिखायी पड़ते हैं। उनके कथा साहित्य में सामाजिक और आर्थिक विषमता का स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने निकट की परिस्थिति से आत्मसात होकर उसमें निहित सत्य के उद्‌घाटन का प्रयास किया है। बड़े–बड़े शहरों में जहाँ चारों ओर चहल–पहल तथा भव्य आकर्षण के दृश्य दिखायी देते हैं, वहीं गरीबी भी परिलक्षित होती है। 'दिल्ली' के बाजार में जहां अमीरी तन कर अपना प्रदर्शन करती फिरती है और जहाँ गरीबी अपने को अमीरी वाणी में छिपाए, शर्माए चलती है।[57] जैनेन्द्र जी की कृतियों में अमीरी व गरीबी के वैषम्य का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र प्राप्त होता है, जिससे मनुष्य के जीवन के प्रति उनकी अटूट निष्ठा का परिचय मिलता है। 'अपना अपना भाग्य'[58] शीर्षक कहानी इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण तथा उपयुक्त है। इस कहानी में जैनेन्द्र जी ने आर्थिक विषमता से उत्पन्न गरीबी के कारण मृत्यु पाने वाले बालक का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है जो मानव हृदय को द्रवित कर देता है। इस कहानी में जैनेन्द्र जी ने साम्राज्यवादी अंग्रेजों के शासनकाल की सभ्यता और संस्कृति का चित्र प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि में मनुष्य का हित ही प्रधान है। इस दृष्टि से उन्होंने मानव–पीड़ा के

---

57 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, भाग–2, पृष्ठ – 139

58 हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ – सं० गणेश पाण्डेय, पृष्ठ – 80

विभिन्न स्रोतों की ओर दृष्टिपात किया है। मनुष्य को जानवर समझने वाली अंग्रेज जाति की ओर भी उन्होंने इंगित किया है। इस कहानी मे कथाकार ने विषमता का वह चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें सम्पन्नता के कारण आवश्यकता से अधिक सुख सुविधा प्राप्त करने वाले कुछ व्यक्ति हैं और कुछ ऐसे हैं जो या तो साहब की मार से मर जाते हैं अथवा नैनीताल की पहाडियों में ठंडक से सिकुड़कर प्राण त्यागने को विवश होते हैं।[59] जैनेन्द्र जी की दृष्टि में व्यक्ति के बीच अप्रेम और घृणा की गहरी खाई उत्पन्न करने का एक मात्र कारण धनी वर्ग का झूठा दिखावा और प्रतिष्ठा है। यही कारण है कि जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य में प्रतिष्ठित माने जाने वाले व्यक्तियों को ही विशिष्टता नहीं प्रदान की, उनकी दृष्टि में गरीब व्यक्ति भी अपने आत्मा की उच्चता के कारण प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है। अमीरी पाप नहीं, किन्तु अमीरी के मार से व्यक्ति की नैतिकता और आत्म–चेतना का पतन हो जाना पाप है। धनिक समाज में चोर, बेईमान, चरित्रहीन व्यक्ति की सही पहचान नहीं हो पाती, क्योंकि वे पैसे के बल पर ईमानदार और चरित्रवान बने रहते हैं।

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में ऐसे समाज मिलते हैं जहां सज्जनता के पीछे दुष्कर्मों की गन्ध मिलती है। जैनेन्द्र जी की 'एक टाइप' तथा 'आतिथ्य' कहानी में इस प्रकार के समाज मिलते हैं। 'एक टाइप' में एक ऐसे व्यक्ति का परिचय मिलता है, जो सचमुच टाइप ही है। वह रेल में सफर करते हुए पूरे समय तक 'शान्तकारम् भुजगशयनम्' का पाठ अपने ढंग से करता है।[60] उसको देखकर कोई भी यह विश्वास नहीं कर सकता कि उसकी सज्जनता के पीछे कोई दुष्कर्म हो सकता है। जैनेन्द्र जी ने अपने साहित्य में ऐसे व्यक्तियों के

---

59 वही, पृष्ठ – 89
60 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 37

जीवन का उद्घाटन किया है जो हर तरह से सम्भ्रान्त दीखते हैं, जिन्हें देखते ही उन पर आदर आना स्वाभाविक है। उनके जीवन में, उनके मन में शंका का भाव नहीं प्रकट होता, बल्कि थोडी आमदनी होने पर भी वे ऊपरी आमदनी के सहारे लम्बे खर्च करते हैं और बडे गर्व के साथ कहते है कि तनख्वाह बीस रूपये से ही शुरू हुई थी, लेकिन उसी के भरोसे कौन रहता है।[61] ऐसे व्यक्तियों के प्रति जैनेन्द्र जी के हृदय में घृणा और घोर वितृष्णा है जो उनके कथा साहित्य में व्यक्त हुई है। 'आतिथ्य' कहानी में जैनेन्द्र ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जिसकी दृष्टि में मुनाफा और स्वार्थ प्रमुख हैं और मित्रता गौण है वह अपने आमंत्रित अतिथि (मित्र) को अपनी गौशाल (डेरी) आदि के सम्बन्ध में सविस्तार परिचय देता है, किन्तु अतिथि सत्कार के नाम पर मित्र के बच्चों को छटाँक भर दूध देने में वह अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। प्रस्तुत कहानी द्वारा जैनेन्द्र जी ने व्यक्ति की स्वार्थी मनोवृत्ति का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।[62] जैनेन्द्र जी ने आर्थिक वैषम्य का व्यापक चित्रण अपने उपन्यास 'कल्याणी', 'सुखदा', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर और 'अनामस्वामी' में भी किया है। 'कल्याणी' में आर्थिक परिवेश कल्याणी एवं डॉ. असरानी के बीच 'केरीज्म' की विषमता में, सुखदा की पुत्र को पढ़ाने की महत्वाकांक्षा में चित्रित है। आर्थिक वैषम्य का परिवेश पीढ़ी भेद के रूप में 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' उपन्यासों में उपलब्ध होता है। आर्थिक वैषम्य का परिवेश प्रकारान्तर से 'सुखदा' उपन्यास में सुखदा की गृहस्थी का विघटन करता प्रतीत होता है। आर्थिक वैषम्य का दूसरा चित्रण 'मुक्तिबोध' में वीरेश्वर के माध्यम से और 'अनन्तर' में प्रकाश के माध्यम से प्रकट होता है। 'अनामस्वामी' में शंकर उपाध्याय के आश्रम के लिए कुमार और रानी वसुन्धरा अपनी जमीन देते हैं।

---

61 जेनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ, पृष्ठ – 34–36
62 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ, पृष्ठ – 115

अर्थ और व्यक्ति

जैनेन्द्र जी की दृष्टि में समाज के स्तर को बढ़ाने के लिए स्नेह, दया, प्यार व ममता की आवश्यकता है। उनके कथा साहित्य का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि जब तक अमीरी के प्रति हमारा व्यर्थ का गर्व समाप्त नहीं होगा, तब तक आपस में स्नेह, प्यार व ममता की कल्पना करना व्यर्थ है। जैनेन्द्र जी के हृदय में मनुष्य की अवहेलना और अर्थ के सत्कार को लेकर गहरा दुःख था, क्योंकि संसार में प्रायः ऐसा घटित होते हुए देखा जाता है कि रास्ते में पड़ा हुआ धन उठा लिया जाता है और दुःख से द्रवित व्यक्ति को छोड दिया जाता है। अर्थ की शक्ति की जानकारी अबोध बच्चे को भी होती है, क्योंकि अर्थ से मनुष्य का स्वार्थ जुड़ा होता है, अर्थ की शक्ति ने ही गरीब और अमीर में भेद उत्पन्न कर दिया है जिससे मनुष्य—मनुष्य को पहचानने में असमर्थ है। जैनेन्द्र की दृष्टि में जब तक हमारी मानसिकता के स्वरूप में अन्तर नहीं आयेगा तब तक मानव जीवन यों ही तिरस्कृत होता रहेगा।[63] उनकी दृष्टि में मालदार बनने की इच्छा मनुष्यता की निधि में सेंध लगाकर चोरी करने की इच्छा से कम या भिन्न नहीं है।[64]

पूँजीवादी दृष्टि

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में पूँजीपतियों के प्रति उनका गहरा आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है। समाज में उत्पन्न आर्थिक वैषम्य का दायित्व पूँजीपतियों पर ही है। पूँजीपति वही कहलाता है जो पूँजी बढ़ाने की कला जानता हो और खर्च करने की नहीं। जैनेन्द्र के

---

63 जैनेन्द्र कुमार – सोच विचार, पृष्ठ – 88
64 वही, पृष्ठ – 93

अनुसार जिस प्रकार शरीर के स्वास्थ्य के हेतु रक्त का समुचित प्रवाह अनिवार्य है, उसी प्रकार समाजरूपी शरीर के स्वास्थ्य के हेतु धन का समुचित वितरण आवश्यक है। सरकारी मोहर लगने पर ही पूँजी की सार्थकता निर्भर करती है, अन्यथा वह स्वयं में जड़ है। जैनेन्द्र ने अपनी कृतियों में 'सरकारी मोहर' शब्द का बार–बार प्रयोग किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि धन के सरकारी संरक्षण को वे उचित नहीं मानते। 'विवर्त' 'सुखदा', सुनीता', 'जयवर्धन' में पूँजीपतियों की कटु आलोचना की है।[65] उनके अनुसार पूँजी स्वय में दोष नहीं है, किन्तु उसकी वृद्धिकारक प्रवृत्ति समाज के अन्दर व्याप्त है। पूँजीपतियों की दृष्टि में स्वार्थ की भावना बहुत अधिक होती है। प्रतिष्ठा के सम्मुख देश का हित भी उनकी दृष्टि में गौण होता है। जैनेन्द्र ने भौतिकता के रंग में रंगे हुए अर्थ वृद्धि के लिए सचेष्ट रहने वाले समाज का चित्रण करते हुए स्पष्ट किया है कि ऐसे मनुष्यों को श्रम भी नहीं करना पड़ता और पूँजी बढ़ती जाती है। सामाजिक संस्थाओं को दान स्वरूप कुछ सम्पत्ति देकर वे प्रेम को बहुत प्रतिष्ठित समझने लगते हैं। 'अनन्तर' में आदित्य ऐसा ही व्यक्ति है जिसका लक्ष्य जीवन स्तर को बढ़ाना है। धर्म, नैतिकता, परमार्थ आदि भावनाएँ उसकी दृष्टि में निरर्थक हैं।

'विवर्त' में जैनेन्द्र जी ने ऐसे ही परिवार का चित्रण किया है जहाँ सारा समय सुख भोग में व्ययतीत होता है। उनके जीवन में अभाव नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। वे अपने सुखमय जीवन में कभी अपनों से नीचे देखने का कष्ट नहीं करते। जैनेन्द्र जी ने इस प्रकार के व्यक्तियों पर गहरा व्यंग्य किया है। एक तरफ आवश्यकता से अधिक धन होने के कारण जीवन क्रीड़ा बन जाता है। दूसरी तरफ थोड़े धन के लिए बेटी बेची जाती है। समाज में यह भेद धन के

---

65 वही, पृष्ठ – 143

कारण होता है। उनकी दृष्टि में पूँजीपतियों की स्वार्थमयी दृष्टि ने समाज में ऐसा जहर घोल दिया है जिसे समाप्त किए बिना समस्त मानव सस्कृति का विनाश निश्चित है। ऐसी विषम स्थिति में जागरूक क्रान्तिकारी समाज के भीतर व्याप्त अर्थ की शक्ति का विस्फोट करने के लिए विवश हैं। 'सुखदा' में लाल ऐसा ही क्रान्तिकारी व्यक्ति है, जिसकी दृष्टि में पैसे ने अपने दाँत से काट—काट कर जगह—जगह समाज के शरीर में जो घाव कर रखे हैं उन घावों का धोना और बहा देना ही उनका प्रमुख शौक है।[66] अर्थ के इस प्रकार पूँजीकृत होने से गरीब, गरीब होते गये और अमीर अधिक अमीर होते गये हैं। इस प्रकार गरीबी और अमीरी दो ऐसे किनारे बन गये हैं जिनमें मिलन अर्थात् पारस्परिक प्रेम की कोई सम्भावना ही नहीं दृष्टिगत होती है। जैनेन्द्र के अनुसार पूँजी ने मनुष्य को आदमियत से अधिक हैसियत से जोडकर झूठी मर्यादा और प्रतिष्ठा को बढ़ाने में ही सहयोग दिया है। जैनेन्द्र के साहित्य द्वारा धनी वर्ग के प्रति उनकी घोर वितृष्णा का भाव लक्षित होता है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में पूँजीपतियों के विरूद्ध हिंसात्मक वृत्ति भी लक्षित होती है, किन्तु इस वृत्ति के माध्यम से जैनेन्द्र का उद्देश्य पूँजीपतियों के प्रति अपने आक्रोश को ही व्यक्त करना है। 'विवर्त' और 'सुखदा' में जैनेन्द्र के इन्हीं विचारों की झलक मिलती है। जैनेन्द्र की दृष्टि में पूँजीवादी सभ्यता में व्यक्ति की नहीं बल्कि पैसे की पूजा होती है। इस प्रकार जैनेन्द्र के साहित्य क। अध्ययन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धनी वर्ग की झूठी और छली सभ्यता के प्रति उनके मन में तनिक भी सम्मान नहीं है। उनका आदर्श मानव—मानव के सौहार्द में ही पूर्ण होता है। उन्होंने अपने

66 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 107

कथा साहित्य द्वारा समाज के इस दोष को दूर करते हुए प्रेममय भावों के प्रसार का प्रयत्न किया है।

अन्त में, यह स्पष्ट है कि जैनेन्द्र साधन की शुद्धता के आधार पर प्राप्त होने वाले साध्य को ही स्वीकार करते हैं। वे रक्त क्रान्ति के द्वारा लायी जाने वाली समानता के पक्ष में नहीं थे। उनकी दृष्टि में इस प्रकार की समानता ऊपर से थोपी गयी होगी। इसलिए कभी न कभी उसकी प्रतिक्रिया की सम्भावना बनी ही रहेगी। इसलिए जैनेन्द्र परिस्थिति और समस्या को लेकर किये जाने वाले सुधार के पक्ष में नहीं थे। जैनेन्द्र ने अर्थ को महत्वपूर्ण माना, किन्तु उनकी दृष्टि में अर्थ ही साध्य नहीं हो सकता। इस प्रकार वे अर्थ और काम को मार्ग मात्र मानते हैं। उनके अनुसार धर्म पूर्वक उपार्जित अर्थ द्वारा अपना तथा अपने समाज का हित करते हुए मोक्ष की ओर उन्मुख होना ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

अध्याय–4

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दार्शनिक चेतना

अध्याय–4

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दार्शनिक चेतना

कथा साहित्य और दार्शनिक चेतना:अन्तर्सम्बन्ध

कथा साहित्य का सृजन करने वाला साहित्यकार एक ओर तो कल्पना द्वारा बनाये गये विशाल भवन का कारीगर है तो दूसरी ओर विद्वान, चिन्तक, विचारक एवं दार्शनिक है, लेकिन दर्शन परक चिन्तन एक दार्शनिक से अलग होता है। दार्शनिक जहाँ सत्यता को प्रकट करने के लिए शास्त्रीय मानदण्डों का प्रयोग करता है, साहित्यकार वहीं शास्त्रीय कसौटी से अलग अपने स्वानुभूत जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयोग करता है। यह स्वानुभूत जीवन उसके कथा साहित्य का दर्शन बन जाता हैं, जिसे जीवन–दर्शन भी कहते हैं। इसी जीवन–दर्शन को दार्शनिक चेतना की संज्ञा से विभूतिषत किया जाता हैं। दर्शन को संवृद्धि प्रधान माना गया है। कथा साहित्य में दर्शन की अभिव्यक्ति होती है। डॉ० भागीरथ मिश्र ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि–दर्शन काल्पनिक तथ्यों के आधार पर विश्व का रहस्य–उद्घाटन करने का प्रयत्न करता है।[1]

साहित्यकार और दार्शनिक दोनों मंगलमयी भावना से प्रेरित होकर जीवन की व्याख्या करते हैं, जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं तथा कथा साहित्य में मानव के मन की समस्त धारणाएँ एवं जीवन–दर्शन के सत्य स्वरूप का उल्लेख करते हैं। साहित्य जीवन की समीक्षा करता है तो दर्शन जीवन के चिरन्तन रूप का विश्लेषण।

---

1. डॉ० भगीरथ मिश्र – काव्य शास्त्र, पृष्ठ – 42

डॉ० उदय भानु सिंह के इस विषय में विचार द्रष्टव्य हैं—'दर्शन तथ्यों की सूची न प्रस्तुत करके उनके विहित और नियमित रूप में तर्क संगत उपस्थापन करता है, उसी प्रकार काव्य अस्त—व्यस्त वैविध्यपूर्ण जीवन के तथ्यों का अनुकरण करके उनकी व्यवस्थित एवं रमणीय अभिव्यंजना करता है।[2] चिरन्तन शक्ति के प्रति जिज्ञासा साहित्य एवं दर्शन दोनों का आधार है। भारतीय साहित्यकार एवं दार्शनिक दोनों ही अपने—अपने ढ़ंग से सत्य के रहस्य का उद्घाटन करते हैं। दार्शनिक का यह चिन्तन बुद्धि परक होता है, परन्तु जब वह कथा साहित्य मे परिलक्षित होता है तो भावना परक हो जाता है, और भावना से जो सन्तुष्टि मिलती है, वही आनन्द है। दार्शनिक जीवन और जगत् के रहस्य का उद्घाटन करता है, साहित्यकार भी यही करता है, परन्तु दोनों की क्रियायें भिन्न—भिन्न हैं।

प्राचीन भारत में दर्शन का विषय अपने आप में स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर था। कौटिल्य का कथन है कि दर्शनशास्त्र अन्य सब विषयों के लिए प्रदीप का कार्य करता है। यह समस्त कार्यों का साधन और समस्त कर्मों का मार्ग दर्शन करता है।[3]

कथा साहित्य भाव—प्रधान और विचार—प्रधान दोनों प्रकार का होता है। दर्शन सृष्टि के विभिन्न रहस्यों का उद्घाट न करता है, उसी प्रकार कथा साहित्य में साहित्यकार अन्तदृष्टि के माध्यम से जीवन के विविध रूपों की झाँकी प्रस्तुत करता है। जिस कथाकार की कृति में इन दोनों का समन्वय होता है, उसकी रचना सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। सफल और श्रेष्ठ साहित्य में आदर्श, कल्पना एवं जीवन दर्शन का समावेश होता है। कथा साहित्य के जगत् में जैनेन्द्र कुमार जी इसी प्रकार के साहित्यकार हैं; जिनके कथा साहित्य में तथाकथित विशेषताएँ सफल रूप में समाविष्ट हुई हैं।

---

2. डॉ० उदयभानु सिह – तुलसी—दर्शन – मीमासा, पृष्ठ – 26
3. डॉ० राधाकृष्णन – भारतीय दर्शन (प्रथम भाग), पृष्ठ – 19

जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना का स्वरूप

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में चित्रित दार्शनिक चेतना का स्वरूप जानने से पहले दार्शनिक क्या है, जान लेना अति आवश्यक है। जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण साहित्य उनकी अन्तश्चेतना का ही परिणाम है। जैनेन्द्र आस्थावादी साहित्यकार हैं। इनके साहित्य में जो दार्शनिकता दृष्टिगत होती है, उसमें उनकी आस्था की हार्दिकता ही अन्तर्भूत है। उनके साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य–सृजन के लिए उनका प्रमुख आदर्श सत्य के साथ साक्षात्कार करना रहा है। सत्य आत्मा में है। दर्शन–शास्त्र का उद्‌देश्य सत्य के प्रति व्यक्ति की जिज्ञासा को शान्त करना है। जैनेन्द्र दार्शनिक होने के साथ ही साथ साहित्यकार भी है। स्पष्ट होता है कि वे लेखक होने के कारण ही दार्शनिक के रूप में जाने जा सकते हैं। उनका समग्र साहित्य सत्य की खोज और उसकी अभिव्यक्ति का ही प्रतिफल है। जैनेन्द्र चाहे साहित्यकार हों अथवा दार्शनिक किन्तु उन सबसे परे वह एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। उन्होने मानव–जीवन के शाश्वत सत्यों को उसके व्यवहारिक धरातल पर उतारने का प्रयास किया है। जीवन और जगत् के मिल जाने से उन्हें एक नितान्त मौलिक दृष्टि उपलब्ध हुई, वही उनका दर्शन है और दार्शनिक होने का सूचक है।

ईश्वर, ब्रह्म, जीव, जगत् के परस्पर सम्बन्ध तथा उनके रहस्य को समझने के लिए वे संसार से अलग नहीं गए बल्कि प्रतिदिन के जीवन में ही उन्होंने सत्य को खोज निकाला। अपनी आन्तरिक सहानुभूति और संवेदना से उन्होंने गम्भीरता और जटिलता में भी सरलता का समावेश किया है। जैनेन्द्र जी के प्रयास से साहित्य जगत में एक क्रान्तिकारी प्रभाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। उनकी समन्वयात्मक दृष्टि ने मानव को श्रद्धा और विश्वास का अपूर्व सम्बल प्रदान किया।

जैनेन्द्र के अनुसार मानव–जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए बुद्धि के साथ भावना का योग भी अनिवार्य है। भागवत व्यवहारिकता में मानव–जीवन का प्रत्येक पहलू समाविष्ट हो जाता है। उन्होंने विज्ञान और अध्यात्मवाद में सामंजस्य स्थापित करके जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न की है। यहीं से उनके जीवन दर्शन के–मूल तत्व–अभेद तत्त्व अथवा अद्वैतवाद का आरंभ होता है। उन्होंने जीवन के सत्य को ग्रहण कर उसे जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यक्त किया है। उनके अनुसार व्यक्ति का अहं उसके जीवन का उद्‌गम स्थल है, जहां से उसके समस्त विचारों, भावों और कार्यों को दिशा–निर्देश प्राप्त होता है। उनके सम्पूर्ण साहित्य में अहं का विवेचन हुआ है। उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों में अहं विसर्जन की समस्या मुख्य रूप से प्रकट हुई है।

जैनेन्द्र के जीवन–दर्शन का प्राणतत्व व्यक्ति के अहं में निहित है। उनके अनुसार अचेतन में व्यवस्थित व्यक्ति की दमित वासना ही उनके कार्यों का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार अहं मूल प्रवृत्तियों का पुंज है।[4] जैनेन्द्र जी ने स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य के मर्मातिमर्म में भागवत् पड़ी हुई है और जो अहं के एक–एक पटल को भेदकर और चुका कर भागवत् भाव तक पहुँच पाता है, वह अंशता से उठकर सर्वता को प्रकट करने लग जाता है।[5]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में आत्मोत्सर्ग की भावना इतने व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुई कि जैनेन्द्र का साहित्य उनके आत्म–विसर्जन का एक मात्र साधन प्रतीत होने लगता है । 'रत्नप्रभा', 'गंवार' और 'बाहुबली' आदि कहानियों के पात्र अपने अहं से इतने प्रभावित हो जाते हैं कि वे 'स्व' को 'पर' में खो देने के लिए प्रेरित हो जाते हैं

4. जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ–571
5. जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ – 567

ताकि उनका जीवन निर्जीव हो जाये और उनमें सजीव होने की सम्भावना ही न रह जाये। जैनेन्द्र प्रकृति के क्रिया–कलापों मे एक भावना के दर्शन करते हैं। सूर्य के प्रकाश, वृक्ष की छाया, धरती की शरण में मानव के सम्मुख जो आत्म समर्पण का भाव निहित है, उसे मानव–समझ नहीं पाता, इसलिए उसे अपना अकेलापन भारी लगने लगता है। इस भावना को समाप्त कर देने के लिए ही इनमें अहं को मिटा देने की भावना जागृत हुई। उनके अनुसार अहं–विसर्जन की भावना व्यक्ति के अकेलेपन से मुक्ति प्राप्त करने तथा समष्टि में 'स्व' को समाहित कर देने की भावना से ही जुड़ी है।

जैनेन्द्र ने स्त्री–पुरुष दोनों को साहित्य में व्यक्त किया है। स्त्री अपने स्त्रीत्व में तथा पुरुष अपने पुरुषत्व में नितान्त एकाकी तथा अपूर्ण है। स्त्री पुरुष में अपने अभाव को खोजती है और पुरुष स्त्री में अपना विकास पाता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में यह भावना अर्द्धनारीश्वर के रूप में अभिव्यक्त हुई है। 'फाँसी', 'एक रात', 'रानी महामाया', 'दिन–रात' में स्त्री–पुरुष का अकेलापन उन्हें अलग कर देता है। वे अपने जीवन की व्यवस्था में भी मन की बुझाने का रास्ता ढूँढती हैं।

इनके कथा साहित्य के अधिकांश पात्र अपने जीवन में अधिक से अधिक कष्ट सहकर समाज की मंगलाकांक्षा में लीन रहते हैं। 'त्यागपत्र' की मृणाल और 'कल्याणी' में कल्याणी पीड़ा को सहकर ही स्वयं को समाज के प्रति समर्पित करती हैं। वैसे जैनेन्द्र ने आत्मोत्सर्ग को जीवन का प्रधान लक्ष्य माना है, किन्तु उनके पात्रों के स्वाभिमान को कोई ठेस नहीं पहुँचती। उनके पात्र पीड़ा को तो सहते हैं, किन्तु अपने व्यक्तित्व पर आँच नहीं आने देते। 'वह रानी' कहानी में रानी दुर्भाग्य के थपेड़े खाती हुई कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है, किन्तु अपमानित होकर अपने प्रेमी की सहानुभूति नहीं ग्रहण कर सकती।

'त्यागपत्र' की मृणाल भी कम स्वाभिमानी नहीं है। वह जज की बुआ होने के कारण सुख से जीवन व्यतीत कर सकती थी, किन्तु वह समाज की दृष्टि में कॉटा बनकर अपने आत्माभिमान को खण्डित नहीं करना चाहती।

जैनेन्द्र ने अहं–विसर्जन के द्वारा जीवन के अति उपेक्षणीय विषय पर विशेष रूप में अपने विचारों को व्यक्त किया है। स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण के मूल में उनकी आत्म–विसर्जन की भावना ही विद्यमान है। जैनेन्द्र सर्वप्रथम कथाकार हैं जिन्होंने स्त्री–पुरुष के प्राकृतिक सम्बन्ध पर विशेष विवेचन किया है। जैनेन्द्र ने स्त्री को उसकी निर्वैयक्तिकता और गुणहीनता में ही समझा है। इन्होंने स्त्री–पुरुष के निर्वैयक्तिक रूप की अस्पष्टता को दूर करने के लिए इन्हें विभिन्न सामाजिक एवं परिवारिक सम्बन्धों में प्रस्तुत किया। 'सुनीता' में जैनेन्द्र जी की यह भावना परिलक्षित हुई हैं–'तुम शायद स्त्री होने को इसी तरह जानते हो, जैसे पदार्थ के होने को। स्त्री को स्त्री की संज्ञा देकर पुरुष को न छुटकारा है न होगा। उसे कुछ न कुछ और भी कहना होगा । माता कहो, बहिन कहो, पत्नी कहो, प्रेमिका कहो कुछ न कुछ अपनापन जतलाए बिना 'स्त्री संज्ञा का प्रयोग करके उस स्त्री'–द्रव्य से छुट्टी तुमको नहीं मिलेगी।'[6] जैनेन्द्र काम को पाप नहीं समझते। काम और योग में सृष्टि की कामना निहित है। जैनेन्द्र के पुरुष पात्र अपने अहं को अलग करने के लिए स्त्री के प्रति स्नेह मार्जित कर रहे हैं। अतएव संभोग में व्यक्ति की अहंता की हार है। उनके अनुसार पूर्ण समर्पण एकमात्र ईश्वर के प्रति ही सम्भव हो सकता है। अतः स्त्री–पुरुष के सम्मिलन–भाव को भूलकर अद्वैत अथवा अखण्डता की प्राप्ति द्वारा ही काम में मोक्ष तथा भोग में योग की कल्पना की जा सकती है।

---

6. जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 15

आत्म–समर्पण की भावना से सम्बन्धित होकर ही वे काम, प्रेम, भोग आदि भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके हैं। जैनेन्द्र ने कहा है कि हमने प्रेम को खानों में बाँट दिया है और शरीर जहॉ उपस्थित है वहाँ अपवित्र और अनुपस्थित है वहाँ पवित्रता की भावना को विठा दिया है। मै मानता हूँ कि जो अधूरा है वह तृष्णार्थ है।[7] 'एकरात कहानी' तथा 'सुनीता' उपन्यास में उसकी समर्पण भावना निहित है।

जैनेन्द्र ने पशु–पक्षी तथा जड प्रकृति के क्रिया कलापों में अन्तर्निहित प्रेम की अभिव्यक्ति की है। पशु–पक्षी में उन्होंने मानवीय संवेदनाओं को प्रतिष्ठित करके प्रेम का उच्चादर्श व्यक्त किया है। 'एक गौ' तथा 'दो चिड़ियाँ' कहानियों में सात्विक तथा रोमान्टिक प्रेम की अत्यधिक मार्मिक अभिव्यक्ति है।

जैनेन्द्र जी के अनुसार जीवन संघर्ष–पूर्ण है। संसार रणभूमि है। मनुष्य अपने भाग्य और परिस्थिति से जूझता हुआ अपनी जीवन–यात्रा को पूर्ण बनाने का प्रयास करता है। उन्होंने अपने शब्दों मे कहा है–'जीवन एक सहादत है। शास्त्र कहते हैं कि यज्ञ है।[8] 'कल्याणी', 'जयवर्धन' आदि उपन्यासों मे जीवन के यज्ञ में स्वयं को हुताहन बना देना ही उनका लक्ष्य हैं।[9] उनके अनुसार जीवन की सार्थकता उससे चिपटे रहने में ही नहीं है।[10] उनके अनुसार महान लोग मृत्यु से नहीं घबराते है और प्रसन्नता से मौत को गले लगा लेते हैं। 'फाँसी' में शमशेर अपनी मौत द्वारा जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करता है। वह मृत्यु को प्रधानता न देकर यह मानता है कि जीवन के लिए कभी–कभी मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर होता है। जैनेन्द्र मौत में जीवन को समाप्त नही मानते, क्योंकि जीवन तो अनन्त यात्रा है।

---

7. जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 33
8. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 110
9. जीवन ही जलना है। वह है, यज्ञ मे उससे बचना क्यो चाहें – जैनेन्द्र कुमार
10. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 126

जैनेन्द्र के अनुसार जिनके मार्ग में कठिनाइयॉ आती ही नहीं हैं, सब सुगमता ही सुगमता रहती है, वे जीवन में बहुत दूर तक और ऊॅचे तक नहीं जा पाते। देखा जाता है कि कठिनाई और अवरोधों ने ही अमुक जीवन के मार्ग को दिशा और स्वरूप दिया।[11]

जैनेन्द्र जीवन की परिवर्तनशीलता में ही विश्वास करते हैं। पराजित होकर जड़बद्ध हो जाना तथा प्रगति को रोकना वे उचित नहीं मानते। उनके अनुसार परिवर्तन जीवन का नियम है, जीवन प्रेम है और प्रेम का भी नियम परिवर्तन है।[12] 'कल्याणी' में एक स्थान पर जैनेन्द्र ने जीवन की गतिशीलता पर कहा है 'रुकना नाम जिन्दगी का नहीं है, जिन्दगी का नाम चलने का है।'[13] जीवन में सुख–दुख, उतार–चढ़ाव आते रहते हैं किन्तु जीवन निरन्तर अपनी गति से चलता रहता है । खिन्न होकर रुक जाना जीवन का आदर्श नहीं है। जैनेन्द्र ने व्यापक रूप में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि मानव चलता जाता है। 'त्यागपत्र' में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि–'मानव चलता जाता है और बूँद–बूँद दर्द उसके भीतर इकठ्ठा होकर मरता जाता है। वही सार है, वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस मणि है, उसके प्रकाश में मानव व्यक्ति–पथ उज्ज्वल होगा।[14] उनके सम्पूर्ण साहित्य का आधार है–व्यथा । व्यथा के रस से पूरित होकर ही उनके पात्र अपनी जीवन यात्रा सम्पन्न करते हैं।

नियतिवादी दार्शनिक चेतना

जैनेन्द्र ने अपने जीवन की लम्बी अवधि में नियति की हिलकोरों में बहते हुए, संघर्षों से जूझते हुए संसार के विविध अनुभवों द्वारा जो

11. प्रभाकर माचवे – जैनेन्द्र के विचार, पृष्ठ – 82
12. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 70
13. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 5
14. जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 45

जीवन–सत्य प्राप्त किया, उसे उन्होंने एक विद्वान साहित्यकार की भाँति अपने साहित्य में व्यक्त किया। जैनेन्द्र जी नियतिवादी दर्शन से प्रभावित थे। नियतिवादी विचारकों के अनुसार यदि व्यक्ति के जीवन के भूत और वर्तमान को ज्ञात कर लिया जाये तो उसके भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय दिया जा सकता है। व्यक्ति के चरित्र की समस्त जानकारी कर लेने पर उसके आचरण के बारे में कहा जा सकता है। नियतिवादी विचारक व्यक्ति के आचरण और प्रकृति को एक नियम द्वारा ही चलाते है।

जैनेन्द्र के विचारों और नियतिवादी दार्शनिकों में प्रमुख भेद यह है कि जैनेन्द्र के पात्रों की सम्भावनाएँ नियति के कारण विनष्ट नहीं होतीं। उनके साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता यही है कि वे पात्रों को भाग्य के सहारे छोड़ देते हैं और भविष्य के सम्बन्ध में, व्यक्ति के चरित्र के सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी नहीं करते। नियतिवादी भविष्य की घोषणा कर देते हैं, किन्तु जैनेन्द्र जी के अनुसार भविष्य में क्या होने वाला है–यह कोई नहीं जानता। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वव्याप्त है और वही भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता है। इस प्रकार उनके पात्र भाग्यवादी होते हुए भी अपने जीवन की सम्भावनाओं का शोषण नहीं करते।

आस्थामूलक भाग्यवादिता

जैनेन्द्र जी आस्तिक, विचारक और लेखक हैं। उनके साहित्य मे अटूट ईश्वरीय आस्था का परिचय मिलता है। मनुष्य का निर्माण करने वाला ईश्वर है। ईश्वर से ही मनुष्य परिचालित होता है। उनके अनुसार जीवन के सम्बन्ध में व्यक्ति का समस्त मन्तव्य समुद्र के तट पर कौड़ियों से खेलने वाले बालकों के निर्णय की भाँति है। फिर भी बालकों को मस्तिष्क मिल गया है। वे दोनों निष्क्रिय होकर तो रहते

नहीं। इसी से जो जानने के लिए नहीं है, उसे जानने की चेष्टा चली है।[15] उनकी दृष्टि में मनुष्य निर्जीव, जड और यंत्र नहीं है । उसमें विवेक, बुद्धि, तथा पुरुषार्थ है। अतएव ईश्वर मनुष्य की गति को रोकता नहीं है बल्कि उन्नति प्रदान करता है। उनके साहित्य में पात्रों की ईश्वर पर दृढ़ आस्था है। उनकी दृष्टि में सब कुछ करने वाला ईश्वर ही है। ईश्वर की महान शक्ति के समक्ष मनुष्य बहुत ही तुच्छ है। अतएव जैनेन्द्र के पात्र अत्यधिक भाग्यवादी हो गए हैं । उनके जीवन में सुख–दुख और उतार–चढाव भाग्य की परिधि में ही सम्भव हुआ है।

जैनेन्द्र के साहित्य में जगह–जगह भाग्य अथवा ईश्वर की पुकार से ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्र के पात्रों को भाग्य का ही सहारा है और कहीं–कहीं तो ऐसा आभास होने लगता है कि अतिशय भाग्यवादिता कहीं पात्रों के जीवन में निष्क्रियता न उत्पन्न कर दे। उनकी कुछ कहानियों में बार–बार ईश्वर के नाम की पुनरावृत्ति हुई है। 'राजीव और भाभी' में दो–चार बार विधाता के समक्ष व्यक्ति की विवशता का उल्लेख किया गया है। जैनेन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि 'जब राजीव ने मोटर की बात मन में पक्की कर ली, तब सब प्रपंचों के रचयिता बाबा विरंचि ऊपर बैठे–बैठे मुस्काराए होंगे, कहते होंगे– देखो लडके की बात – अरे हम फिर कुछ ठहरे ही नहीं। जो ये दुनिया के छोकरे हमें बिन बूझे ही सब करने लगेंगे तो हो लिया काम।'[16] वहीं से भाग्य देव भी पलट कर बरस पड़ने लगे।[17] जीवन में भाग्य का सहारा तो लिया ही जाता है, परन्तु छोटी–छोटी बातों पर बिधाता का अनुसरण करना उचित नहीं प्रतीत होता। उनके साहित्य में किसी प्रमुख परिस्थिति में ही विधाता का सहारा लेकर व्यक्ति की विवशता

---

15 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 18
16 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ, पृष्ठ – 31
17 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ (राजीव और भाभी), पृष्ठ – 32

को स्पष्ट किया गया है। 'कल्याणी' में कल्याणी किसी के घर जाने में अपनी इच्छा पर विश्वास नहीं करती और कहती है—'अच्छा! भाग्य होगा तो क्यों न आऊँगी।'[18]

जैनेन्द्र ईश्वर को सर्वप्रथम मानते हैं। अगर ईश्वर की इच्छा न हो तो व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। ईश्वर की आस्था में व्यक्ति के अहं का विगलन हो जाता है । अहं का भाव व्रत को सर्वप्रथम प्रमाणित करता है। व्यक्ति तो केवल माध्यम है। किन्तु कर्म का फल भाग्य पर ही आधारित होता है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो व्यक्ति कर्म करता जाता है, परन्तु निराश नहीं होता, क्योंकि वह वर्तमान तक ही सीमित है, भविष्य में उसकी कोई भी पहुँच नहीं है।

जैनेन्द्र के अनुसार भाग्य का लेखा संसार में व्यवस्था स्थापित करने का साधन है। जैनेन्द्र ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है कि 'भाग्य का तर्क यदि कठोर है तो ऐसा अकारण नहीं है। × × × × × यहाँ जो जैसा करता है वैसा ही भरता है।[19] ईश्वर पक्षपात नहीं करता, उसके लिए संसार में सब लोग बराबर हैं, न कोई छोटा है न कोई बड़ा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है। भाग्य व्यक्ति के संचित कर्मो का ही अभिव्यक्त रूप है। भाग्य व्यक्ति के पूर्व जन्मों के कर्मों से बनता है । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि भाग्य कोरी भावना का प्रतीक है।

जैनेन्द्र के जीवन और साहित्य का प्रमुख आदर्श ईश्वरोन्मुख है। उनकी दृष्टि में भाग्य पर रहने वाला व्यक्ति कर्म की अवहेलना नहीं करता। कर्म करना तो उसका कर्तव्य है, किन्तु फल की प्राप्ति न होने पर वह ईश्वर को दोषी नहीं ठहराता, बल्कि दुख में भी सुख की प्राप्ति का अनुभव करता है। जैनेन्द्र जी की रचनाओं के पात्र भाग्य के

---

18. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 79
19. जैनेन्द्र कुमार – वह रानी, पृष्ठ – 47

चक्र पर क्रोधित नहीं होते और न ही भाग्य से विद्रोह करना उचित समझते है। 'त्यागपत्र' में प्रमोद अपनी बुआ की स्थिति पर बहुत दुखी होता है, किन्तु बुआ को उस राह से मोड नहीं पाता। वह जानता है कि ईश्वर जो कुछ करता है, सोच–समझकर कर ही करता है। ईश्वर की इच्छा के विरूद्ध व्यक्ति कार्य करता है तो वह आत्मा के सन्तोष से भी पराजित हो जाता है। इसलिए वह कहता है कि 'जो कुछ हुआ ठीक हुआ, ठीक इसलिए कि उसे अब किसी भी उपाय से बदला नहीं जा सकता।' जैनेन्द्र भाग्य और दु:ख के मध्य व्यक्ति की पारस्परिकता के हेतु बहुत सतर्क रहे हैं। जैनेन्द्र के अनुसार व्यक्ति स्नेह के आदान–प्रदान के द्वारा अतिशय पीड़ा को झेलता हुआ भी स्वर्ग का अधिकारी होता है। अतएव भाग्य में जो होना है, उसे टाला तो नहीं जा सकता। होनी होकर रहती है और उसको टालना व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं है बल्कि उसका परिवर्तन ईश्वर द्वारा ही सम्भव है। जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' में स्पष्ट शब्दों में लिखा है– 'स्नेह – क्या वह स्वयं में इतना पवित्र नहीं है कि स्वर्ग के द्वार उसके लिए खुल जाएँ।'[20]

'विवर्त' में भी भुवनमोहिनी रेल–दुर्घटना के लिए जितेन को दोष नहीं देती । उसका विश्वास है कि 'होता होनहार है और सब काल कराता है।[21] मोहिनी जितेन को समझाती हुई कहती है–'जो हुआ हो गया। होनहर कब टला है।'[22] 'सुखदा' में सुखदा अपने पति को किसी कार्य के लिए दोष नहीं देती और कहती है–'उन्होंने कुछ नहीं किया। सब भाग्य के आधीन हुआ है।'[23]

---

20 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–46
21. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 29
22. वही, पृष्ठ – 30
23 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 204

जैनेन्द्र के कथासाहित्य में व्यक्ति का समस्त सोच–विचार व्यर्थ ही है। अतएव जैनेन्द्र के पात्र जीवन से जटिल परिस्थितियों में निराश होकर समाप्त नहीं होते, बल्कि स्नेह और प्रेम के द्वारा ही वह जीवन का विकास करने में समर्थ होते हैं।

निष्काम कर्मयोग

जैनेन्द्र के विचारों पर गीता के निष्काम कर्मयोग का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'गीता' में अर्जुन को कर्मशीलता का उपदेश देते हुए कृष्ण ने कहा कि 'जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिप्त नहीं होता।'[24] जैनेन्द्र जी के अनुसार विधाता ही सर्वोपरि है। जैनेन्द्र ने बार–बार अपने साहित्य में इस सत्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है कि 'मैं नहीं हूँ × × × × × क्योंकि शून्य है × × × × × मै कुछ नहीं हूँ–यह अनुभूति ही मेरा सब कुछ है।'[25] उनके अनुसार इस प्रकार की भावना मनुष्य को कर्म से विचलित नहीं करती, बल्कि उसे कर्तव्य के अहंकार से अलग करती है। अतएव जैनेन्द्र की दृष्टि में भाग्य का निर्णय मनुष्य की प्रगति में बाधा नहीं उत्पन्न करता, बल्कि उन्नति की ओर ले जाने का प्रयास करता है।

जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य में पुरुषार्थ को भी प्रश्रय दिया है। भगवान को ही एक मात्र सत्य मानने के कारण जैनेन्द्र के पात्रों में मनुष्य के अहं भाव के दर्शन नहीं होते। उनके कर्म सम्बन्धी विचारों पर गीता की निष्काम–कर्म–साधना तथा कर्म–अकर्म की भावना परिलक्षित होती है। जैनेन्द्र के अनुसार 'कर्म' में 'अकर्म' की भावना

---

24. 'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सगत्यक्त्वा करोति य.। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।–श्रीमद्भगवद्गीता–5 / 10
25. जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ (तृतीय भाग), पृष्ठ – 126

व्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख करती है तथा व्यक्ति स्वार्थ को भूलकर परमार्थ हेतु अपना जीवन अर्पित करता है। उनकी दृष्टि में मनुष्य का कर्मशील होना ही आवश्यक बात नहीं है, कर्मशीलता के साथ ही उसमें कर्म के प्रति अनासक्ति होना भी आवश्यक है। 'जयवर्धन' में जैनेन्द्र ने एक स्थान पर 'अकर्म' की आवश्यकता पर अपना दृष्टिकोण बताया है– 'कर्म ठीक है, किन्तु वह अकर्म के साथ ही ठीक है, नहीं तो बचाव और भरमाव होगा।'[26]

पुनर्जन्म, मृत्यु और अमरत्व

जैनेन्द्र पुनर्जन्म को भी अपने कथा साहित्य में स्वीकार करते हैं। वे यह स्वीकार करते है कि मनुष्य मृत्यु के बाद नवीन जन्म को प्राप्त करता है। जैनेन्द्र ने 'कल्याणी', 'रूकिया बुढ़िया' तथा 'मौत की कहानी' आदि में जगह–जगह पुनर्जन्म का उल्लेख किया है। वे कर्म की सापेक्षता से पुनर्जन्म को मानते हैं। इनके अनुसार जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म– यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। संसार कर्म और भाग्य की आस्था पर चलता है। जीवन में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा पुनर्जन्म के संचित कर्मों अर्थात् भाग्य के द्वारा ही उपलब्ध होती है।

जैनेन्द्र के पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार मौलिक प्रतीत होते हैं। 'सुखदा' उपन्यास में जैनेन्द्र ने लिखा है कि 'मरने के पहले जो होता है उसे जीना कहते हैं। × × × × × हम तुम नहीं जीते, जीता खुद जीवन है, वह इतिहास में जीता है । वह मेरा तुम्हारा नहीं है, मुझसे तुमसे नहीं है, बल्कि हम उससे हैं। वह है, हम नहीं हैं।'[27] उनके अनुसार व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती। वह यह

26 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 12
27. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 171

स्वीकार करते हैं कि पूर्वजन्म की स्मृति होने पर मनुष्य का वर्तमान जीवन बहुत दुखपूर्ण हो जायेगा। सत्य को सफल करने के लिए क्या एक ही घटना उपयोगी है। सब कुछ क्या सत्य को ही नहीं सफल कर रहा है। 'रूकिया बुढ़िया' कहानी में उन्होंने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है कि भारतीय दर्शन में पुनर्जन्म की परम्परा स्वीकार की गई है। आधुनिक युग में ऐसी अनेक घटनाएँ घटती हैं, जिससे पुनर्जन्म की सत्यता का प्रमाण मिलता है, किन्तु जैनेन्द्र दो–तीन घटनाओं को सत्य की सिद्धि के लिए उपयुक्त नहीं मानते। उनकी दृष्टि मे जो कुछ है, सब सत्य है, सत्य में घुल–मिल गया है।

जैनेन्द्र यह स्वीकार करते हैं कि इस जीवन के बाद क्या होगा–यह कोई नहीं जानता। वर्तमान में तो व्यक्ति यही सोचता है कि जो जैसा करेगा उसे उसका वैसा फल अवश्य मिलेगा।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मृत्यु–सम्बन्धी धारणाओं में उनके गहन चिन्तन की छाप है । जीवन और मृत्यु के रहस्य को उद्‌घाटित करते हुए जैनेन्द्र ने व्यवहारिक जीवन में व्यक्ति की मृत्यु–सम्बन्धी धारणाओं को अपनी रचनाओं द्वारा व्यक्त किया है । उन्होंने अपने साहित्य में कई घटनाओं को प्रस्तुत किया है, जबकि परिवार में कई सदस्य एक के बाद एक मौत को प्राप्त होते हैं। जहाँ मौत का दारुण दृश्य देखकर यह मानना पड़ता है कि मृत्यु अकाट्य सत्य है। संसार मिथ्या है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' में सत्यता के विषय में बतलाया है कि 'मौत एक द्वार मात्र है, केवल ईश्वर सत्य है। एक चला जाता है और दूसरा जाने के लिए तत्पर है, किन्तु मनुष्य का कर्म हमेशा जीवित है और लोगों को तो मृत्यु पाना ही है। अतएव एक मात्र वही सत्य है और वह सत्य है– ईश्वर।'

उनके अनुसार मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है। उसकी कल्पना से जीवन को बहुत शान्ति मिलती है। 'इतस्ततः' में जैनेन्द्र ने

कहा है कि 'मैं मृत्यु का कायल हूँ। जीवन से अधिक उसका कायल हूँ। वह परमेश्वर का वरदान है। मैं मृत्यु को समाप्त करना नहीं चाहता हूँ। उसके बिना जीवन असत्य हो जायेगा।'[28] जैनेन्द्र ने 'मौत की कहानी' में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए बताया है कि 'मौत का सिलसिला बन्द हो जायेगा तो जन्म का सिलसिला भी रोक देना पड़ेगा, नहीं तो धरती पर ऐसी किचमिच मचेगी कि सॉस लेने को भी जगह न रहेगी।'[29] गरीबी और अमीरी का भेद भी मौत में समाप्त हो जाता है। जैनेन्द्र ने जीवन में केवल एक मात्र प्रेम और स्नेह को ही महत्व प्रदान किया है, क्योंकि वे स्वीकार करते हैं कि मौत के पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रहता, केवल प्रेम और स्नेह की स्मृति ही सदैव अपना स्थान बनाए रखती है। स्मृति के सहारे मनुष्य मर कर भी अमर रहता है। 'विवर्त' में जैनेन्द्र ने इस सत्य पर प्रकाश ड़ाला है कि 'यों हम कब एक दूसरे के हैं, कोई केवल अपना नहीं है, लेकिन क्षण आते हैं कि हम आपस के रह ही नहीं पाते, कहीं किसी ऊपर के हो जाते हैं। तब मालूम होता है कि आपसीपन खिसक कर ओढ़े कपड़े के मानिन्द हमसे नीचे उतर गया है। हम किसी के भी नहीं रहे; अपने भी नहीं रहें, माने सिर्फ नहीं के हो गए हैं। क्या यही कृत–कृत्यता है? कि यह मृत्यु है।'[30]

जैनेन्द्र कुमार मृत्यु को सार्थक बनाना चाहते हैं। व्यक्ति मृत्यु की चेतना द्वारा स्व केन्द्रित होकर अधिक सुख–भोग का प्रयत्न करता है तो मृत्यु उसके लिए कष्ट दायक सिद्ध होती है। उनके अनुसार जब मनुष्य निर्भीक होकर कर्म करते हैं, तो मृत्यु का भय उनके लिए बाधक नहीं सिद्ध होता है। वे व्यक्ति मृत्यु के आने पर प्रसन्नता के साथ मौत को गले लगा लेते हैं। 'मौत की कहानी' में उन्होंने कहा है

---

28 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत:, पृष्ठ – 113
29. जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉं, पृष्ठ – 68
30. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 217

कि 'जीवन का कुछ अर्थ ही नहीं अगर मौत उसके आगे फुल स्टाप की तरह बैठ जाय। इसलिए मृत्यु स्थायी वस्तु नहीं है।'[31] उनके अनुसार मौत के माध्यम से ही व्यक्ति को रास्ता मिलता है।

'दर्शन की राह' और 'तौलिए' कहानियों में जैनेन्द्र जी ने मृत्यु के सत्य को उद्‌घाटित किया है। जैनेन्द्र जी के अनुसार मरना जीवन को राह देता है। हम कहीं बन गये होते हैं, काम आ चुके होते है।[32] संसार में कुछ समय व्यतीत करने के बाद मृत्यु अनिवार्य होती है। इस प्रकार जैनेन्द्र ने स्पष्ट कर दिया है कि मृत्यु अनिवार्य है।

जैनेन्द्र के अनुसार शहीद होने वाले मनुष्यों को मौत की कोई चिन्ता नहीं रहती। वह कर्तव्य में लीन रहते हैं। उनके कथा साहित्य में जीवन की बलि देने वाले पात्र प्रसन्नता से मृत्यु का आलिंगन करते हैं, किन्तु मौत के लिए जिज्ञासु नहीं होते। 'फाँसी' कहानी में शमशेर मौत से नहीं बचता, किन्तु जब मौत के माध्यम से ही परमार्थ सम्भव है तो वह उसकी उपेक्षा भी नहीं करता और कहता है कि 'मेरी मौत में दुनिया की अर्थसिद्धि है, मेरी भी परमार्थसिद्धि है। विश्व का अर्थ सिद्ध करने वाले व्यक्ति की मौत आती है। परमात्मा उसे भेजता है। व्यक्ति क्यों न उसे साथ ले और आगे बढ़े।'[33] यही जैनेन्द्र के कथा साहित्य का अभीष्ट है। 'कहानी की कहानी' में लेखक ने गाँधी जी की मृत्यु द्वारा उनकी अमरता की ओर इंगित किया है।[34]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में पात्रों के मन में मृत्यु का भय नहीं रहता है। जैनेन्द्र के अनुसार 'मौत कैसी होती है, कोई नहीं जान सकता।'[35] 'मौत की कहानी' में लेखक ने यम का बहुत ही डरावना

---

31 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 69

32 जैसे एक दिन होकर और कुछ दिन रहकर हम बिसर जाते है, कि यह होना रहना काल का ही खेल था, उस खेल के लिए हमारा न होना संगत हो गया है। (जैनेन्द्र कुमार – इतस्ततः, पृष्ठ 109)

33 जैनेन्द्र कुमार – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ – 24

34 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, भाग–8, पृष्ठ–52

35. जैनेन्द्र कुमार – मौत की कहानी, पृष्ठ – 68

चित्र प्रस्तुत किया है– 'यम नाम का देव है, सचमुच बडा डरावना है। वास्तव में वह किसी अस्त्र–शस्त्र से आदमी को नही मारता, दरअसल वह मारता ही नही, आदमी उसे देखकर डर के मारे स्वयं ही मर जाता है।'[36] 'पत्नी' शीर्षक कहानी में भी लेखक ने मृत्यु के भय को बताया है कि 'हर व्यक्ति इस कल्पना से भयभीत होता है, और यह जानता है कि एक–न–एक दिन उसको मरना अवश्य है।' जैनेन्द्र ने इस कहानी में लिखा है कि 'यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है– उसको मरना है–उसके पति को मरना है, पर उस तरफ भूल से छत पर देखती है तो भय से मर जाती है।'[37]

मौत से बचने वाला मनुष्य जीवन से सदैव चिपटा रहता है। 'जयवर्धन' उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि 'मौत को सतत् भीतर लेकर जीना असल जीना है। यह जीना मरकर होता है।'[38] जैनेन्द्र के साहित्य का आदर्श त्याग और परमार्थ के रूप में ही घटित होता है।

जैनेन्द्र के विचारों में दार्शनिकता का भाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। जैनेन्द्र ने जन्म–मृत्यु के आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक पहलू को बहुत व्यापक रूप से विवेचित किया है। उनके साहित्य में ईश्वरीय आस्था पर भी बल दिया गया है। जैनेन्द्र इस सत्य से अवगत हैं कि मृत्यु के आने पर व्यक्ति का सर्वस्व यहीं रह जायेगा[39] और वह भी अपनी मंजिल पर पहुँच जायेगा। जीवन के सारे रिश्ते–नाते तथा समस्त सम्पदा मौत के आने पर व्यर्थ हो जायेंगे।

इस प्रकर यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्र की नियतिवादी दार्शनिक चेतना में एक ओर भाग्यवाद है और दूसरी ओर कर्मवाद है।

---

36 जैनेन्द्र कुमार – मौत की कहानी, पृष्ठ – 68
37. जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 70
38 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 11
39 एक दिन मौत आयेगी और सब कुछ रह जाएगा – जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 167

जैनेन्द्र ने भाग्य, कर्म तथा जीवन–मृत्यु के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया है। उनके पात्र अतिशय भाग्यवादी हैं। उनकी परम आस्तिकता उन्हें किसी भी समय भाग्य के घेरे से अलग नहीं करती। जैनेन्द्र ने कर्म परम्परा को पूर्व जन्म अथवा पुनर्जन्म की श्रृंखला से नहीं जोड़ा है। उनके अनुसार पुनर्जन्म तो होता है–यह बात सत्य है किन्तु यह कोई नहीं जानता कि पुनर्जन्म का पूर्व जन्म के कर्मों से सम्बन्ध होता ही है। उनकी दृष्टि में पुनर्जन्म की सत्यता केवल व्यक्ति के बार–बार जन्म होने में ही है। जैनेन्द्र के अनुसार मनुष्य के कर्म मृत्यु के पश्चात् उसके साथ नहीं जाते, वरन् यहीं व्याप्त हो जाते हैं। उनके अनुसार मृत्यु से जीवन की समाप्ति नहीं होती।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैनेन्द्र जी की दार्शनिक चेतना अत्यन्त उच्चकोटि की और महत्वपूर्ण है। दार्शनिक चेतना के परिणामस्वरूप उनकी कृतियों में नारी–पुरुष सम्बन्धों, अन्तःबाह्य परिवेशों तथा प्रेम और विवाह आदि सभी विचारधाराओं का समावेश हुआ है। जैनेन्द्र जी ने दार्शनिक चेतना के अन्तर्गत शाश्वत् सत्यों–ईश्वर, जन्म–मृत्यु, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में आत्मानुभूत सत्य का प्रकटीकरण किया है। उनकी दृष्टि में ईश्वर सत्य ही नहीं वरन् वही एक मात्र सत्य है। जैनेन्द्र जी की ईश्वरीय आस्था उनके समस्त कथा साहित्य में श्रद्धा और आत्म–विश्वास तथा भाग्य–निर्माता के रूप में लक्षित होती है। उनकी दृष्टि में मोक्ष जगत् से मुक्ति नहीं है वरन् अहं से मुक्ति है। वस्तुतः संसार में रहकर भी व्यक्ति मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

अध्याय–5

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना

अध्याय–5

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना

कथा साहित्य और मनोविज्ञान : अन्तर्सम्बन्ध

आधुनिक युग में मनोविज्ञान का साहित्य के विभिन्न अंग–प्रत्यंगों में समावेश हो गया है। विशेष रूप से कथा साहित्य में तो मनोविज्ञान के सिद्धान्तों, दर्शनों तथा उसके निष्कर्षों तक को भी ग्रहण किया गया है। अतः हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तथा कहानियों की एक लम्बी श्रृंखला है जिनमें मनोविज्ञान के निष्कर्षों को आधार बनाकर कथानकों तथा चरित्रों का विकास प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तथा कहानियों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

मनोवैज्ञानिक दर्शन का मूल सिद्धान्त यह है कि मनुष्य की समस्यायें ज्यों की त्यों रहती हैं, परिवर्तन केवल रूप में होता है, क्योंकि मनुष्य मात्र में आदिम प्रवृत्तियाँ जैसे–घृणा, काम, अहं आदि आज भी उसी रूप में बने हुए हैं, जिस रूप में यह सृष्टि के आदि में थे। इन प्रवृत्तियों से ही मनुष्य का जीवन परिचालित होता है। तात्पर्य यह है कि बाह्य समस्याओं के प्रति मनोवैज्ञानिकों की ही तरह अनेक मनोवैज्ञानिक कथाकार उपेक्षा भाव रखते हैं। बाह्य परिस्थितियाँ उन्हें गतिशील नहीं दिखाई पड़तीं, क्योंकि उनका निदर्शन करने वाली शक्तियाँ ,सहज वृत्तियाँ स्थिर हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिक कथाकार राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति किसी को भी महत्व नहीं

देता, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि राजनीति, समाज, अर्थ व्यवस्था तथा संस्कृति से निर्मित युग तथा वातावरण का चित्रण न करके यह मनोवैज्ञानिक कथाकार किसी अन्य लोक तथा वातावरण का चित्रण करता है। इस प्रकार उनकी कृतियों में इन तत्वों की सम्पृक्ति की अनिवार्यता होती है, लेकिन इन तत्वों को अन्य कथाकारों की तुलना में कुछ भिन्न ढंग से ग्रहण किया जाता है। अन्तर्मन की स्थितियों का उद्घाटन करने के लिए ही मनोवैज्ञानिक कथाकार बाह्य सृष्टि के व्यापारों का चित्रण करता है। इसमें अगर किसी लेखक के मन में कोई राजनैतिक आग्रह होता है तथा वह देश या समाज के प्रति कर्तव्य भावना से प्रेरित होता है तो उसके चिन्तन का केन्द्र भी सामाजिक शक्तियाँ न होकर व्यक्ति ही होता है।

तात्पर्य यह है कि मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य का विवेच्य विषय व्यक्ति तथा उसकी मानसिक गतिविधियाँ होती हैं। राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को वह इस दृष्टि से देखता है कि उसने व्यक्ति का निर्माण किन रूपों में किया है, क्योंकि यह प्रामाणिक तथ्य है कि व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का बहुत कुछ सहयोग तो होता ही है। मनोवैज्ञानिक साहित्यकार प्रायः राजनीतिक पात्रों को हिंसा दर्शन का समर्थक तथा क्रान्तिकारी विचारकों के रूप में चित्रित करते हैं, क्योंकि हिंसा उनकी दृष्टि में मूल प्रवृत्ति है। जैनेन्द्र की 'सुनीता' का हरि प्रसन्न, 'सुखदा' का लाल तथा 'विवर्त' का अजित सभी मनोवैज्ञानिक दर्शन से ही उत्पन्न क्रान्तिकारी हैं। उनकी कुछ मनोग्रन्थियाँ हैं जो उन्हें क्रान्तिकारी बनने की ओर अग्रसर करती हैं।

दूसरी बात यह है कि मनोविज्ञान ने कथा साहित्य में राजनीति को, स्त्री–पुरुष को मिलाने के माध्यम के रूप में बहुधा ग्रहण किया है। अतः मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य कोई स्वस्थ राजनैतिक दृष्टिकोण

व्यक्त नहीं भी कर सकता, क्योंकि राजनैतिक पक्ष से वह बहुत कुछ दूर रहकर व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों को ही अपना विषय बनाता है। ऐसी दशा में उसके लिए सम्भव नहीं है कि वह स्वस्थ राजनैतिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर सके। यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य जब अपने मूल प्रतिपाद्य विषय से उतर कर अन्य पक्षों का विश्लेषण करता है, तो मात्र भ्रान्त धारणाओं का निरूपण करने के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं कर पाता। मूल प्रतिपाद्य से अलग अन्य विषयों को विवेचित करने वाले प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक कथा साहित्यकारों की नियति यही होती है। जैनेन्द्र कुमार में स्त्री–पुरुष दोनों का ही मनोवैज्ञानिक चित्रण दृष्टिगत होता है। जिसकी विस्तृत विवेचना करना आवश्यक है।

जैनेन्द्र के पुरुष पात्रों में मनोवैज्ञानिक चेतना

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता है, इसलिए इनके पात्र व्यक्तिपरक हैं, उनका मूल्यांकन उनकी निजी चिन्तन पद्धति और उनकी निजी परिस्थितियों और अलग प्रकार के आचरण पर आधारित है। जैनेन्द्र के पात्रों को एक दूसरे के समक्ष रखकर देखना अथवा एक को दूसरे पर प्राथमिकता देना, जैनेन्द्र निर्मित पात्रों के सम्बन्ध में कठिन पड़ेगा। इतना ही नहीं, दो पूर्णतया एक जैसे पात्रों को भी तराजू के पलड़ों पर रखा जाये तो उनमें भी समरूपता नहीं मिलेगी, बल्कि दोनों में अपना कुछ न कुछ निजत्व तो देखने को अवश्य मिलेगा। ऐसा लगता है कि कथाकार ने पात्रों को गढ़ने में तीन विशेष बातों पर ध्यान दिया है, एक विशेष चिन्तन पद्धति, विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लक्षण तथा एक असाधारण व्यक्ति परक पृष्ठभूमि–'परख' से लेकर 'अनामस्वामी' तक सभी उपन्यासों में पुरुष मात्र इसी तथ्य को उद्‌घाटित करते दिखायी पड़ते हैं। इनमें से मुख्य

पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना हमारा लक्ष्य है। 'परख' में दो पुरुष पात्र हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं—सत्यधन और बिहारी। सत्यधन काल्पनिक आदर्शो से गुजरता हुआ यथार्थ की कठोर धरती पर अवतरित होता है और सांसारिकता में अपने को लीन कर लेता है। बिहारी जीवन की विविधता में से आदर्श को अपना आधार बनाता है और आजीवन उसी आदर्श को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए अपने को बलिदान कर देता है। दोनों के जीवन में आने वाले इन परिवर्तनों की पृष्ठभूमि सामाजिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। सत्यधन भावुक है, उसमें उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं है, केवल भावुकता के आकस्मिक वेग में बहकर वह आदर्श के आवरण को ओढ़ लेता है। आदर्श उसकी चमड़ी में है उसका खून, मांस, मज्जा आदर्श का नहीं। इसके विपरीत बिहारी के भीतर उत्सर्ग की शक्ति है, उसने अपने पर आदर्श का आवरण नहीं ओढ़ा है, वह जब कट्टो की स्थिति को देखता है और समझता है तो उस लड़की के उत्सर्ग बल को परखता है, उसके अन्तर को पहचान लेता है। वह अपने पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर भी अपना अधिकार त्याग कर स्वयं परिश्रम पूर्वक जीवन व्यतीत करने और कट्टो से दूर रहकर भी अपनों जैसा व्यवहार करने की सौगन्ध लेता है। यह आदर्श उसके भीतर की प्रेरणा है जिसमें वह नीचे से ऊपर तक डूब जाता है। इन दोनों पात्रों में सत्यधन का आदर्श से यथार्थ की ओर झुकाव सामाजिक परिवर्तन है, जबकि बिहारी का आदर्श अभियान एक मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन। विश्लेषण करने से ज्ञात होगा कि सत्यधन वकालत पास करके वकील बनना चाहता है। वकीलों के मिथ्या व्यवहार से दुःखी होकर अपने सत्यरूपी धन की रक्षा हेतु उसने उस विचार का त्याग किया, जब त्याग युक्तिपूर्ण न होकर यौवन की तरंग मात्र ही था, क्योंकि जब भगवत दयाल ने उसे जीवन के यथार्थ का ज्ञान कराया तो वह कट्टो की ओर आकर्षित होता

हुआ भी गरिमा को अपनाने तथा गरिमा के साथ कुछ और सम्भावित उपलब्धियों से विरत नहीं हो सका। वह कट्ओ से छुटकारा पाने की इच्छा से कभी कट्टो को तो कभी बिहारी को एक दूसरे के प्रति प्रेरित करता रहा। कट्टो ने जब उसके पावो में लिपट कर रोना आरम्भ किया तब एक बार वह विचलित हो उठा। स्पष्ट ही उसकी बुद्धि अस्थिर है, उसका आदर्श बाहरी आवरण है, यथार्थ की वायु के पहले झोंके में ही उड़ने लगता है। दूसरा झोंका गरिमा तथा जीवन की कुछ सम्पादित उपलब्धियो का था, जिसने पूर्ण रूप से उस आवरण को उडा दिया। यह सब सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। विवाह के बाद कट्टो से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद के मार्ग की तलाश सामाजिक प्रतिक्रिया ही कही जा सकती है।

बिहारी ही 'परख' का एक मात्र ऐसा पात्र कहा जा सकता है जिसमें मानसिक चेतना सजग है और यह पूरे उपन्यास में अन्तर्मुखी हुआ दिखायी पड़ता है। जहाँ लेखक सत्यधन की परिस्थिति का बहिर्मूल्यांकन करता रहा है, वहीं बिहारी आदि से अन्त तक न केवल अन्तर्मुखी बना रहा, बल्कि प्रेम के क्षेत्र में भी आत्मोत्कर्ष करता है।

श्रीकान्त और हरिप्रसनन्न 'सुनीता' उपन्यास के पुरुष पात्र हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोनों ही कुंठित है। सामाजिकता उनमें नहीं है। व्यक्ति जीवन की प्रधानता के कारण उनके व्यवहार में सामाजिक मान्यताओं के सन्दर्भों का अभाव है। अपनी–अपनी लीक पर चलते हुए दोनों अग्रसर होते हैं। हरि प्रसन्न का जीवन अकेला है। नारी उसके जीवन में कभी भी आकर्षण का केन्द्र नहीं बन पायी थी। किन्तु शनैःशनैः घनिष्ठता बढ़ने से मामी की गरिमा में उसने 'नारीत्व' के दर्शन करने आरम्भ किए। एक जिज्ञासा और उत्सुकता उसके अन्तश्चेतना में पनपने लगी थी, इसलिए उसने सुनीता को हरि प्रसन्न की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने का आदेश दिया था। श्रीकान्त शायद

यह समझता था कि हरि प्रसन्न के सन्यासी जीवन व्यतीत करने का प्रमुख कारण स्त्री सम्पर्क का अभाव ही था। सुनीता के एकान्त सम्पर्क के लिए वह कहीं दूर जाने का बहाना बनाकर घर से चला जाता है। उस एकान्त में सुनीता का यौवन एवं मादकता उसमें पौरुष उत्पन्न करने का माध्यम बनता है, किन्तु वह इस स्थित से बचने के लिए और साहस न कर पाने के लिए सुनीता को क्रान्ति दल की विजयी शक्ति बनाकर एकान्त जंगल में अपने स्थान पर लाता है। जंगल में उसके स्थान पर पुलिस आ जाने के कारण, हरि प्रसन्न और सुनीता वही कहीं छिप जाते हैं। चाँद की रोशनी में सुनीता का सौन्दर्य हरि प्रसन्न को विचलित कर देता है और सुनीता पति के आदेश का पालन करती हुई निर्वस्त्र होकर उसके प्रति समर्पण के लिए तत्पर हो जाती है। यह बिडम्बना हरि प्रसन्न की कठोरता को पराजित कर उसमें सामान्य पुरुष के भावों की स्थापना करती है और वह सुनीता को भोग्या न बनाकर सामाजिकता के लज्जायुक्त परिवेश में मुँह छिपाकर भाग खड़ा होता है।

मनोवैज्ञानिक चेतना के आधार पर हम हरि प्रसन्न की असाधारणता का कारण काम अमुक्ति न मानकर काम का परिचय मानते हैं। स्त्री की वासना से परिचित न होने के कारण उसमें स्त्री की कोमलता, करुणा, उदारता, त्याग आदि के लिए कोई लगाव न था। यही असाधरणता का आधार था। सुनीता की निकटता और समर्पण ने उसे धीरे–धीरे सामान्यता प्रदान की। वह समय भी आ गया जब वह सुनीता का सम्भोग चाहने लगा, किन्तु सामान्यता का विकास होने से हरि प्रसन्न वैसा साहस न कर सका। यहीं उसमें समष्टि चेतना पनपी थी। 'सुनीता' में रिवाल्वर प्रसंग एक विशेष प्रतीक सिद्ध हुआ है। सुनीता के द्वारा हरि प्रसन्न से पूछना कि क्या रिवाल्वर तुम्हारे पास है, क्या तुम चलाना जानते हो, यदि हां तो चलाकर दिखाओ, आदि बातें अपने आप में नारी के माध्यम से पुरुष

के पौरूष को ललकारने का प्रतीक हैं। हरि प्रसन्न में 'स्त्री सम्बन्धी नपुसंकता' को दूर करने के लिए सुनीता का यह संकेत विशेष मनोवैज्ञानिक महत्व लिए हुए है।

'त्यागपत्र' में मृणाल प्रधान पात्र है, उसके पुरूष पात्रों में केवल प्रमोद ही मुख्य है। प्रमोद में बुआ के लिए आत्मीयता है, उसी सूत्र में बॅधा हुआ वह कभी अपनी माँ से और कभी फूफा से लड़ने को तत्पर हो जाता है। वह महसूस करता है कि दोनों पात्रों का स्वभाव उसकी बुआ के लिए अच्छा नहीं है। उसकी बुद्धि में बुआ की खातिर कुछ करने के विचार बारम्बार आते हैं, किन्तु सामाजिकता में जकड़े होने के कारण प्रमोद मनोवैज्ञानिक धरातल पर मृणाल की कहीं भी सहायता नहीं कर पाता। बचपन में माता–पिता के भय के कारण बुआ पर होने वाले अत्याचारों को देखकर भी सहन करता है। उस परिस्थिति में वह दौड़–दौड़कर बुआ का कोई भी कार्य कर देने में राहत महसूस करता है। शायद इसी से बुआ को कुछ सन्तोष प्राप्त हो सके। शीला के भाई से डॉट खाकर भी चुपचाप सह लेता है। दूसरी बार कोयले वाले के यहाँ जब वह बुआ से मिलता है, तो बुआ को असामाजिक कृत्यों के कारण उबार सकने का साहस नहीं जुटा पाता और तीसरी बार विवाह के सिलसिले में, जिस में लड़की देखने जाता है, वही बुआ सामान हो जाने पर वह उसे पुनः अपने अच्छे समाज में ले चलने का प्रस्ताव करने की हिम्मत करता है, तो आत्मव्यथा तथा सत्याग्रह की भावनाओं में मग्न संसार के सभी दुःखों को अपने अन्दर खींच लेने की साध लिए स्वयं मृणाल प्रमोद के साथ जाने को प्रस्तुत नहीं होती। वास्तव में प्रमोद की बुआ के प्रति आत्मीयता की मनोवैज्ञानिक चेतना तो बारम्बार मृणाल को उबार लेने को कचोहटी है, किन्तु जीवन का सामाजिक यथार्थ सदैव उसकी चेतना पर प्रतिबन्ध लगा देता है। मन के इसी द्वन्द्व से परेशान होकर वह अपने पद से त्यागपत्र दे देता है।

इसमें अन्य पात्रों में शीला का भाई, मृणाल का पति और कोयले वाला ये तीनों पात्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। शीला का भाई यौवन की भावुकता का, मृणाल का पति सन्देह का तथा कोयले वाला वासनाभिभूत यथार्थ के प्रतीक हैं। शीला का भाई मृणाल से प्रेम का दम भरने पर भी उसके लिए त्याग करने का साहस नहीं करता। मृणाल का पति शक्की स्वभाव और निष्ठुर व्यक्ति है। मृणाल विवाह के पश्चात् पतिव्रत्य धर्म के नाते पति–पत्नी के एकत्व को स्थापित करते हुए अपने और पति के मध्य के सब आवरणों को हटाने का प्रयत्न करती है। परन्तु उसका पति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत स्वार्थी और बेईमान प्रकृति का है। वह उसे कभी भी शान्ति नहीं देता, बल्कि मारता–पीटता है। कोयले वाला वासनाग्रस्त व्यक्ति है। मृणाल की कमजोरी का लाभ उठाकर उसे सहारा देने के बहाने उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। मृणाल स्थिति के प्रति चैतन्य है, क्योंकि उसने कभी यह आशा ही नहीं की थी कि वह कोयले वाला उससे निभा पाएगा, किन्तु फिर भी वह उसके प्रति आभारी है, परन्तु कोयले वाला मक्कार पुरुष है। कुछ कारणों से अपने परिवार से दूर वह मृणाल का भोग करता है और मौका पाकर वह चुपचाप अपने परिवार में लौट आता है। मृणाल ने उससे कोई छल नहीं, किया, पर वह छली सिद्ध होता है।

डॉ० असरानी 'कल्याणी' का एक मात्र प्रभावी पुरुष पात्र है। प्रारम्भ से ही वह बड़ा दम्भी और लम्पट है। स्वार्थ और अविश्वास में लगातार जलता हुआ वह सन्देह में फँसा सदैव अपनी अति सफल डॉक्टर पत्नी के विषादोन्माद का कारण बनता है। सर्वप्रथम उसने कल्याणी पर झूठे आरोप लगाकर बदनाम किया और फिर स्वयं सहानुभूति का बहाना करते हुए कल्याणी के माता–पिता के पास विवाह का प्रस्ताव रखता है। मनोवैज्ञानिक चेतना के कारण डॉ० असरानी हीनता–ग्रन्थि का शिकार था। उसकी लम्पटता, दम्भ, स्वार्थ

या सन्देह की संवेदनाएँ सब इसी ग्रन्थि की देन थीं। वह कलयाणी से इतना प्रभावित था कि विवाह में उसे प्राप्त करने की इच्छा उसके मन में बदवती हो उठी थी। हीनता ग्रन्थि के कारण वह समझता था कि कल्याणी उसे पति के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। तभी उसने उसे बदनाम करने का प्रयत्न किया। यदि स्वयं वह भी एक सफल डॉक्टर होता तो वह ऐसा व्यवहार कभी नहीं करता। कल्याणी को बाजार में पीटने के पीछे उसे अपमानित करने की धारणा भी डॉ० असरानी की हीनता का प्रमाण है। जैनेन्द्र जी ने 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध' और 'अनामस्वामी' आदि सभी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चेतना का प्रस्तुतीकरण किया है। कथा साहित्यकार ने अनेक पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। सामान्य दृष्टि से मिलते–जुलते लगने वाले पात्र भी किसी न किसी सूक्ष्म रेखा से अलग होते हैं। पुरुष पात्रों के निर्माण में जैनेन्द्र अपने आधुनिक उपन्यास 'अनामस्वामी' में सफल कहे जा सकते हैं। अनाम और शंकर उपाध्याय दोनों अद्वितीय निर्माण हैं।

इस प्रकार जैनेन्द्र के सभी पुरुष पात्रों को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कथाकार ने प्रत्येक पात्र को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। अन्य पुरुष पात्रों में कही अहं है, कहीं गर्व, कहीं दम्भ तो कहीं लम्पटता कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो आशाओं के अपूर्ण होने पर कुण्ठित हुए हैं तथा कुछ असफल मानसिक उपचार भी हुआ है।

वर्गीकरण करते हुए हम श्रीकान्त, नरेश और मिस्टर पुरी को एक वर्ग में रखते हैं तथा सत्यधन, हरि प्रसन्न, मृणाल के पति, डॉ० असरानी, लाल सहाय को दूसरे वर्ग में रख सकते हैं। तीसरा वर्ग आदर्शवादी पात्रों का हो सकता है जिसमें बिहारी, जयवर्धन तथा अनाम के नाम लिए जा सकते हैं। चौथे वर्ग में किसी कारणवश

उत्पन्न होने वाली कुण्ठा से पीडित जितेन, जयन्त आदि आ सकते है। भिन्न–भिन्न वर्गों में रहकर भी वे सब अलग व्यक्तित्व के हैं और जीवन संघर्ष मे अकेले जूझते है।

जैनेन्द्र के नारी पात्रों में मनोवैज्ञानिक चेतना

जैनेन्द्र की नारी पात्र विविध रूपों में दृष्टिगत होती हैं। पहला वर्ग उन स्त्रियों का है जो समाज के अत्याचार का विरोध पूर्ण ढंग से न करके गॉधीवादी सत्याग्रह युक्त ढंग से करती हैं। सामाजिक दृष्टि से सत्याग्रह के माध्यम से वे समाज को नवीन मार्ग दे रही हैं और मानसिक दृष्टि से असमर्थ प्रतिशोध भाव से जलती हुई अपने निकटवर्ती आत्मीयों को क्षुब्ध करने में सन्तोष पाती हैं। वे आत्मपीडक साधिकाएं हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि सत्य के आग्रह से भोगा हुआ दारूण दर्द भी चेतना को जगाने में सहायक होता है। ऐसे स्त्री पात्रों में मृणाल, कल्याणी, इला और वसुन्धरा के नाम लिए जा सकते हैं। इन चारों की प्रमुख समस्या सेक्स की है। समाज उन्मुक्त भोग की अनुमति नहीं देता, परिणामतः इनके जीवन में जो तूफान आते हैं, उन्हीं से उनका मन विद्रोही होता है। विद्रोहवर्ती होकर भी वे समाज भंग का सहारा नहीं लेती, सभी दु:खों को स्वयं सहकर भी कष्ट का अनुभव नहीं करती। जैनेन्द्र की उपलब्धि यह है कि वे सहकर भी पर–पथ को आलोकित करती हैं। त्याग, बलिदान, उत्सर्ग और समर्पण की बलवती प्रवृत्तियाँ उनकी सहयोगिनी होती हैं और सहानुभूति पूर्वक चिन्तन करने वाले के लिए एक नवीन जीवन पथ का उद्घाटन होता है।

'त्यागपत्र' में मृणाल का सेक्स सर्वाधिक उभर कर आया है। शीला के भाई से उसके रागात्मक सम्बन्ध इतने गर्हित समझे गये कि मामी ने उसे छड़ी से पीटा। उसके व्यवहार में पाप की दृष्टि कहीं न

थी फिर भी उसकी पिटाई की गई। इस प्रकार सेक्स के मार्ग में प्रथम ग्रन्थि का उदय हुआ। विवाह हुआ, एक सती पतिव्रता के नाते सर्वस्व सौंपते हुए उसने अपने पति से कुछ भी नहीं छिपाया। परिणामतः उस पर लांछन लगा और पिटाई हुई, यहॉ पर उसमें दूसरी ग्रन्थि ने जन्म लिया। विवाह अनमेल था। पति अधिक आयु का था, शीला का भाई समव्यस्क होने के कारण आकर्षण का स्वाभाविक केन्द्र रहा होगा। आखिर क्यों वह अपनी इच्छा के पुरुष को तन नहीं दे सकती? पुनः ग्रन्थि, सबका निष्कर्ष यह कि तन देना स्त्री की नियति है, इच्छा का पुरुष विसंगति। यहीं से मृणाल का विद्रोह आरम्भ होता है। अत्याचारी और अन्यायी समाज से बदला लेने में वह अपने को असमर्थ पाती है। विद्रोही का पथ सत्याग्रह का मार्ग बन जाता है। वह समाज की जगह अपने को तोडने का संकल्प लेती है। मैं समाज को तोड़ना—फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।[1] मृणाल आत्मपीड़ा की जीवन पद्धति अपना कर इस जलन से दूसरों का पथ आलोकित करने लगती है। दूसरी ओर सेक्स क्षेत्र में उसका निष्कर्ष उसे धीरे—धीरे वेश्यावृत्ति की ओर धकेलने लगता है। तन देकर धन पाने की प्रवृत्ति तथापि उसमें नहीं आयी, तो भी उसकी स्थिति सोचनीय है। उसका निजी विश्लेषण है। जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है। यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मै समझ सकती हूँ, तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसा? दान स्त्री का धर्म है।[2] मृणाल के विषय में डॉ० मनमोहन सहगल के विचार द्रष्टव्य हैं —

---

1 जैनेन्द्र कुमार — त्यागपत्र, पृष्ठ — 73
2 जैनेन्द्र कुमार— त्यागपत्र, पृष्ठ—64

वह दान के लिए तत्पर है, पात्र कुपात्र से उसे क्या लेना। पति ने उसके धर्म को नहीं पहचाना, किन्तु उसने पातिव्रत्य का पूर्ण पालन किया। पति की आशा शिरोधार्य कर वह घर से चली आई। रुचि का पुरुष तो जीवन की विसंगति है, जो भी उसे भोगे, उसे अब कोई इनकार नहीं।[3] मृणाल के जीवन में सेक्स की समस्या का यह रूप सामाजिक दृष्टि से दूषित दीख पड़ता है, किन्तु जैनेन्द्र जी ने मृणाल को इतनी सहानुभूति दी है कि उसके वर्णन में बौद्धिक युक्तिवाद के सहारे उन्होंने उसे सती–पतिव्रता दिखाया है, जिसको पढकर पाठक मृणाल के प्रति घृणा न करके करुणा से भर जाता है। कल्याणी भी इसी वर्ग की साधिका है। कल्याणी का लगातार शोषण हुआ है। उस पर चारित्रिक लांछन लगाकर बदनाम करने का षड्यन्त्र किया गया है। विवाह के लिए तैयार हुई तो पति ने हर तरफ से उसका शोषण किया। उसकी संवेदनाओं की न केवल हत्या की गयी बल्कि उसे सामाजिक अपमान का भी सामना करना पडा। कल्याणी के मन में अनेक बातों ने जन्म लिया, किन्तु वह तो शान्त भाव से अपने पति द्वारा किए गए समस्त अत्याचारों को सहती रही। इसी प्रकार इला और वसुन्धरा भी आत्मपीड़क वर्ग की स्त्रियां है, किन्तु इनकी सैक्स समस्या मृणाल आदि से भिन्न है। कथाकार ने उक्त स्त्रियों का मनोवैज्ञानिक हल खोजने की अपेक्षा उन्हें समाज में असाधारण असंभाग एवं उदान्त एवं उदात्त बनाने में अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग ऐसी स्त्रियों का है जो विवाहिता हैं, किन्तु अपने पूर्व प्रेमियों के प्रति अब भी उनमें कुछ आकर्षण शेष है। वे पत्नीत्व और प्रेयसीत्व के बीच में फँसी हुयी हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि में वे पति परायणा है और सतीत्व के बोझ को

---

3. डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन, पृष्ठ – 64

लादे चल रही हैं। सुनीता सुखदा, भुवन मोहिनी, अनिता और कुछ सीमा तक नीलिमा की गणना इसी कोटि में की जा सकती हैं। सुनीता पति परायणा है, पति की आज्ञा से बँधी उसके मित्र हरि प्रसन्न को जीवन की नीरसता से दूर लाकर सरसता में ले जाने का प्रयास करती है। पति को उस पर अडिग विश्वास है। सुनीता श्रीकान्त की पत्नी बनकर रहे या हरि प्रसन्न की प्रेयसी, इस दुविधा से पीडित वह परेशान और दुःखी होकर हरि प्रसन्न के सम्मुख समर्पण के लिए मन को स्थिर करने लगी और एक रात वीरान जंगल में हरि की आंखों में छलकती वासना देखकर वह दिगम्बर हो अपने को समर्पित कर देती है। सुनीता का यह साहस हरि को पराजित करता है और वह हमेशा के लिए वहां से चला जाता है। सुनीता को सफलता मिलती है। सुनीता जानती है कि उसी घर की चहारदीवारी में उसका स्थान है, वह पति–निष्ठ है और पूर्ण आस्था के साथ पति की कामना का बोझ लादे जीवन संघर्ष में सफलता पा जाती है। बहुत बड़ा साहस करके अविचलित मन से उसने अपने सतीत्व की रक्षा की है। यही सुनीता की उपलब्धि है।

'सुखदा' की नायिका सुखदा स्वयं ही पति के घर में अपनी कल्पनाओं को तड़पता देखकर मानसिक सन्तोष का दूसरा मार्ग खोजती है। सुनीता घर से सन्तुष्ट है, पतिनिष्ठ है, किन्तु सुखदा को पति की आर्थिक स्थिति, पति की निस्साहसी, अन्तर्मुखता और सुखदा की अनुचित स्वतन्त्रता के प्रति उसका मौन आदि बातों से चिढ़ है। सुनीता में बाहर का प्रवेश घर में होता है और 'सुखदा' में घर की चहारदीवारी से निकल स्वयं सुखदा बाहर आती है और अपने व्यवहार से मानसिक द्वन्द्व का कारण स्थापित करती है, पतिगृह के सब अभाव उसे लाल के कृत्रिम व्यवहार में पूरित होते प्रतीत होते हैं। उसका पति उसे अच्छे मार्ग पर लाने के लिए प्रेरित करता था परन्तु सुखदा वासना में डूबे होने के कारण अपने पति की बात जानने के लिए

तैयार नहीं थी। सुखदा के चित्रण में जैनेन्द्र ने घर के अभावों के प्रति विद्रोह अंकित किया है, पति की कारा को भी नकार दिया है। इसे हम जैनेन्द्र का आदर्शोन्मुख यथार्थ ही कह सकते हैं, किन्तु कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के नीतिपरक शिल्प में सुनीता अपना कोई विशिष्ट स्थान नहीं बना सकी है। भुवनमोहिनी (विवर्त) तथा अनिता (व्यतीत) पत्नी ओर प्रेयसी के बीच उठती हुई नारियॉ हैं। सुनीता या सुखदा की भाँति इनमें घर और बाहर अभाव और तृप्ति की समस्याएं नहीं, दोनों अपने पति के घर में सुखी हैं। अपने पति पर उन्हें अदम्य निष्ठा है। किसी भी मोड़ पर वे पति से अलग होने की कल्पना नहीं करतीं परन्तु पूर्व के प्रेमी के प्रति के अपना कुछ कर्तव्य समझती हैं। वे महसूस करती हैं कि प्रेमी की निराशा की दशा का कुछ कारण वे भी हैं। इसलिए उनका कर्तव्य है कि ये पूर्व प्रेम की आस्था के ही नाते उनकी निराशा को सुधारें। इस दृष्टि से वे दोनों यद्यपि पत्नीत्व में बधकर प्रेयसीत्व के असामाजिक कृत्य की पूर्ति का साहस करती है, तथापि वे पातिव्रत्य से विचलित नहीं होती। इसी वर्ग में नीलिमा में पत्नीत्व और प्रेयसीत्व का कोई द्वन्द्व नहीं है। न मिस्टर दर को नीला के प्रेयसीत्व पर ईर्ष्या या सन्देह है। मुक्त वातावरण में विचरण करती हुई आधुनिका नीलिमा जहाँ पत्नी है, वहाँ आजीवन पत्नी ही है। प्रेयसीत्व तो केवल मुंह का जायका बदलने के लिए आता दीख पड़ता है।[4] नीलिमा जैनेन्द्र के किसी आदर्श का प्रतीक मालूम होती है। नीलिमा से जैनेन्द्र ने प्रेम के प्रति आस्था प्रकट करने का सफल प्रयास किया है।

नारी पात्रों का तीसरा वर्ग उन स्त्रियों का है, जो अनुगता पत्नियाँ है। वे अपने पति के प्रति पूर्णतः समर्पिता हैं, उन्हें पति की प्रसन्नता में प्रसन्नता है, दुःख में दुःख। राजश्री (मुक्तिबोध), गरिमा

4 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन, पृष्ठ – 70

(परख) ऐसी ही स्त्रियाँ हैं। दोनों क्रमशः सहाय और सत्यधन की रुचि और इच्छा पर आत्मसमर्पण किए अगाध निद्रा में लीन रहना चाहती हैं। राजश्री को नीलिमा से या गरिमा को कट्टो से कोई ईर्ष्या द्वेष नहीं हैं। गरिमा भी गौरवमयी पत्नी है कट्टों का स्नेह पाकर उसकी ईर्ष्या लुप्त हो जाती है। इन दोनों नारियों में जैनेन्द्र की उपलब्धि पत्नी धर्म की स्थापना की है। यों यही स्थापना जैनेन्द्र मृणाल (त्यागपत्र) कल्याणी (कल्याणी), सुनीता (सुनीता), मोहिनी (विवर्त) आदि के माध्यम से भी करते रहे हैं। जैनेन्द्र के पत्नी पात्रों में केवल चन्द्रकला (व्यतीत) ही ऐसी आधुनिका है, जो पति से अलग होकर पुनर्विवाह करती है और सुख भोग करती है। यहाँ पर जैनेन्द्र ने चन्द्रकला को दोष न देकर जयन्त को दोषी ठहराया है।

चौथा वर्ग है आदर्श और त्यागशील प्रेमिकाओं का, जिसमें कट्टों (परख) तथा तिन्नी (विवर्त) के नाम लिए जा सकते हैं। कट्टो ने सत्यधन से सच्चे मन से प्यार किया और तिन्नी ने जितेन से। दोनों में त्याग और समर्पण की भावना है। दोनों में से किसी ने भी कभी अपने प्रेमी से प्रतिदान की कामना नहीं की बस मौन प्रेम की साधना में लीन रहीं। आदि, मध्य और अन्त इन्होंने मात्र प्रेमार्पण में ही देखा, जैनेन्द्र ने अपने सभी उपन्यासों में केवल उदिता (अनामस्वामी) में एक नया प्रयोग किया है। समस्या यहाँ भी यौन की है। किन्तु मुक्त भोग के कारण जीवन में सार्थकता का नितान्त अभाव है। डॉ० मनमोहन सहगल ने लिखा है—''बालक का पिता कौन है, यह माँ भी नहीं जानती—प्रेम होना, छूटना, फिर होना, फिर छूटना यही जिन्दगी का क्रम है। अनव्याहे गर्भ का बोझ होना भारतीय जीवन की दृष्टि में पराजय है।[5] उदिता के चरित्र में यह सब हुआ, सेक्स के असंयत

---

5 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन, पृष्ठ – 72

सूत्रों के कारण ही तो। जैनेन्द्र के यह सब मान्य नहीं रहा, 'अनाम स्वामी' में इसका संकेत मान्यता का द्योतक नहीं है।''

जैनेन्द्र ने नारी को व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए उसके स्वरूप को राजनीति, समाज, परिवार आदि विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में विभिन्न रूपों में देखा है। जैनेन्द्र पर यह आक्षेप किया जाता है कि उनके नारी पात्र अत्यन्त सोचनीय हैं। उनमें भारतीय संस्कृति और मर्यादा की चेतना नहीं है, किन्तु सत्यता यह है कि जैनेन्द्र के पात्र अतीत का स्पर्श करते हुए भी वर्तमान में जीते हैं। अपनी संस्कृति की कभी वे उपेक्षा नहीं करते हैं। भौतिकता के युग में स्त्री पुरुष से आगे बढने के लिए तत्पर है। स्त्री पुरुष में होड़ लगी हुई है, किन्तु जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री की पुरूष से प्रतिस्पर्धा उचित नहीं है। 'त्यागपत्र', 'परख' आदि में जीवन का जो आदर्श व्यक्त हुआ है, वह सामाजिक मर्यादा का पोषक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य में पुरुष और नारी पात्रों में मनोवैज्ञानिक चेतना का समावेश किया है। उन्होंने सभी उपन्यासों और कहानियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है। जैनेन्द्र जी का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक चेतना से प्रभावित होता प्रतीत होता है और उन्होंने मनोवैज्ञानिक चेतना को कथा साहित्य के स्तर पर जिस रूप में स्वीकार किया है, वह व्यक्ति के मन की सत्यता का उद्घाटन करने में सक्षम है।

अध्याय–6

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में शिल्पगत चेतना

अध्याय–6

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में शिल्पगत चेतना

कला और शिल्प तथा युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध

हमारे साहित्य में अनादिकाल से ही कला और शिल्प का समादर किया गया है, किन्तु 18वीं शताब्दी में उसका स्वरूप कुछ और निखार के साथ हमारे समक्ष आया है। कोई भी कला युगीन सामाजिक–सांस्कृतिक और दार्शनिक गतिविधियों से अछूती नहीं हो सकती। मानव जीवन से अलग रहकर कला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए नहीं रख सकती। यही कारण है कि सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ जनता की अभिरुचि और सौन्दर्य चेतना में परिवर्तन होता है। कला की जननी सौन्दर्य चेतना है। अतः यह स्पष्ट है कि युग–चेतना से कला और शिल्प संश्लिष्ट हैं। हड़प्पा कालीन मूर्तियाँ, खजुराहो की कलाकृतियाँ, आगरा का ताजमहल और इलाहाबाद का किला अपने–अपने युग की कला और शिल्प की अभिव्यंजना करते हैं।

कला का स्वरूप

'कला' शब्द यद्यपि संस्कृति की मूल धातु 'कल् (कल्+कच्+टापू) से निर्मित हुआ है तथापि पाश्चात्य पर्याय शब्द 'आर्ट' के द्वारा अर्थ विकास और उसके मूलार्थ को सरलता से हृदयंगम किया जा सकता है। 'आर्ट' शब्द के साथ सौन्दर्य बोध जुड़ा हुआ है जिसने इन्हें आधुनिक अर्थ प्रदान किया है। 'आर्ट' शब्द

प्राचीन लैटिन के 'आर्स' शब्द से बना है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इसे 'कला' की संज्ञा दी गयी थी और कला के लिए 'शिल्प' तथा कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का प्रयोग होता था। उस समय शिल्पियों के चार प्रकार मान्य थे–स्थपति, सूत्रग्रही, बर्धकी, तथा तक्षक। तक्षक शिल्पी काष्ठ कला, वस्तुकला, मूर्तिकला तथा लौह कला में कुशल होता था। शेष शिल्पी वेद शास्त्र ज्ञान में निपुण होते थे, जिसमें स्थपति सर्वश्रेष्ठ शिल्पी माना जाता था। प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषा के 'आर्ट' शब्द में केवल शिल्प बोध था। उसमें काव्य–कला प्रभृति ललित कलाओं को आत्मसात करने की गरिमा न थी।[1] यूरोपीय सौन्दर्य–चेतना के प्रभाव से 'आर्ट' शब्द ने नूतन अर्थ ग्रहण किया। 18वीं शताब्दी के सौन्दर्य–शास्त्रियों ने शिल्प और उसके दर्शन पर विचार किया तथा उसका विभाजन उपयोगी एवं ललित कला के रूप में हुआ। 19वीं शताब्दी तक आते–आते 'ललित–कला' के लिए 'कला' शब्द का व्यवहार होने लगा और सौन्दर्य बोध के प्राबल्य में अभीप्सित अर्थ घोषित करने लगा।[2]

साहित्य में शिल्प प्रयोग एवं उसका आशय

जब हम साहित्य के सन्दर्भ में शिल्प का प्रयोग करते हैं तो साधारणतया हमारा अर्थ कलात्मक सौन्दर्य से होता है, परन्तु साहित्यिक कला के सन्दर्भ में शिल्प का अर्थ बहुत व्यापक है। शिल्प विधि भी है और विधान भी। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपाय, विधियाँ–प्रविधियाँ, क्रियाएँ–प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा कलाकार कलात्मक सौन्दर्य सिद्धि करता है। शिल्प वस्तु (विषय अथवा अनुभूति) को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है। कलाकार साक्षात्कार किए गए सौन्दर्य तथा रूप (भाव परक) को न

1. डॉ० कमल विमल – काव्य विवेचन, पृष्ठ – 25
2. आर०जी० कलिंगवुड – दि प्रिन्सिपल्स ऑफ आर्ट, पृष्ठ – 7

केवल अभिव्यक्त करना चाहता है, अपितु उसे इस प्रकार से अभिव्यक्त करना चाहता है कि वह एक सम्पूर्ण सफल, सार्थक तथा सुन्दर कलाकृति बने। कलाकृति की अभिव्यक्ति की सम्पूर्ण सार्थकता तथा सौन्दर्य के लिए किए गए सभी विधान, व्यस्थाएँ, विधियॉ, आयास और प्रयास, रूप–गठन और रूप–योजनाएँ शिल्प में सम्मिलित हैं।[3] शिल्प–संगठन, संश्लेषण तथा अन्विति की प्रक्रिया है। शिल्प का प्रयोग इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उद्‌भूत सौष्ठव तथा कलात्मक सौन्दर्य के लिए भी किया जाता है। संक्षेप में अनुभूति शिल्पित होकर ही कला बनती है। कला शिल्प की सिद्धि है। कलाकृति तक का मार्ग 'शिल्प' है। मार्क शोरर ने इसी भाव को बड़े सरल परन्तु सुन्दर शब्दों मे बाँधकर शिल्प की सीधी सी परिभाषा खड़ी कर दी है–'शिल्प, वस्तु (अथवा मूल अनुभूति) तथा सिद्ध वस्तु (अथवा कला) का अन्तर है।'[4] वस्तुतः अनुभूति को प्रस्तुत करने के लिए कलाकार अनेक–रूप योजनाओं की व्यवस्था करता है। शिल्प के अन्तर्गत वस्तु को मॉजना, संवारना, संशोधन, परिशोधन, परिष्कार, प्रस्तुतीकरण तथा अभिव्यंजना सभी कुछ आ जाता है। अभिव्यंजित तथा रूपायित होने से पूर्व की मानसिक प्रक्रियाओं का, जो कलाकार के मन में घटित होती हैं, यहाँ अभिप्राय नहीं है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यंजना के पक्ष से ही है, उससे पूर्व की सृजन प्रक्रिया इसके विचार से परे है। शिल्प सक्रिय होता है। शिल्प समस्त सृजन प्रक्रिया नहीं है, सृजन के निमित्त के बाद ही शिल्प सक्रिय होता है। उससे पूर्व की प्रक्रियाओं संवेदना–ग्रहण, उसका भाव–सत्य में विकास तथा कल्पना के सहयोग से बिम्बों के निर्माण को शिल्प की विवेचन परिधि से बाहर जाना पड़ता है। यह अनुभूति के व्यक्त रूपायन की प्रक्रिया है।

---

3 डॉ० कैलाश वाजपेयी – आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प, पृष्ठ – 18

4 The differcnce between content or experience and achieved contorl or Art is technique.

इस सन्दर्भ में श्री ओम प्रकाश शर्मा के विचार द्रष्टव्य है–'शिल्प का सम्बन्ध कला के सौन्दर्य से है और कला का सौन्दर्य व्यक्त का सौन्दर्य है। इस प्रकार शिल्प व्यक्तीकरण की प्रक्रिया है, अव्यक्त की नहीं। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपकरण भी आ जाते हैं जो शिल्प–प्रक्रिया के निमित्त बनते हैं।[5] शिल्प में प्रक्रिया, प्रयत्न, आयास, उपकरण, सामग्री तथा इनके फलस्वरूप मिलने वाली उपलब्धि सम्मिलित है। यह अनूभूति की अभिव्यक्ति तथा उसका रूपायन है । इस प्रकार शिल्प अनूभूति को स्थापित करने का प्रयत्न है।

शिल्प के लिये अंग्रेजी में 'टेकनीक', 'फार्म' तथा 'स्ट्रक्चर' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। शिल्प शब्द के लिए कौन शब्द इसका पर्याय है, यह अभी तक पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं हो सका है। विभिन्न विद्वानों ने इस शब्द के लिए अंग्रेजी के अनेक शब्दों को सुझाया है। डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल[6], डॉ० सत्य पाल चुघ[7] तथा डॉ० प्रेम भटनागर[8] अपने–अपने शोध प्रबन्धों में विधि तथा शिल्प को अंग्रेजी शब्द 'टेकनीक' का अनुवाद मानकर चले हैं। डॉ० प्रेम भटनागर आगे चलकर शिल्प–विधि को 'फार्म' का पर्याय मान लेते हैं। शिल्प शब्द 'टेकनीक' का पर्यायवाची नहीं हो सकता। 'टेकनीक' में आन्तरिकता तथा पद्धति विशेष का ही अर्थ ध्वनित होता है। साहित्य–कोश में 'टेकनीक' की व्याख्या में क्रिया–पद्धति पर ही विशेष बल दिया गया है। डॉ० नगेन्द्र ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है –

'किसी भी कला में प्रविधि का तात्पर्य कलात्मक निष्पादन की विधि से होता है, अर्थात् किसी कृति के विविध अवयवों और ब्यौरों को गुम्फित करने की कुशल पद्धति से।'[9] कुछ विद्वानों ने, 'शिल्प' शब्द

---

5 श्री ओम प्रकाश शर्मा – जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प, पृष्ठ–11
6 डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल – हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृष्ठ – 2
7 डॉ० सत्यपाल चुघ – प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृष्ठ – 1
8 डॉ० प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 10
9. डॉ० नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, पृष्ठ – 61–62

अंग्रेजी के 'क्राफ्ट' शब्द के अधिक निकट है, इस बात पर बल दिया है। इस सन्दर्भ में डॉ० नगेन्द्र के विचार उल्लेख करना अत्यधिक समीचीन प्रतीत होता है, डॉ० नगेन्द्र के अनुसार –

'मूलतः इसका प्रयोग उपयोगी कलाओं की निर्माण क्षमता के लिए होता है। किन्तु उपचार से इसका प्रयोग ललित कलाओं के लिए किया जाता है। यहाँ इससे अभिप्राय है –रचना की दक्षता या निपुणता से। किसी भी उत्कृष्ट रचना में भावों का गाम्भीर्य, विचारों की गरिमा एवं शैली का उत्कर्ष तो पाया ही जाता है, किन्तु साथ ही समग्र रूप से उस रचना का मूल्यांकन करते हैं तो इन सब तत्वों को निजी अवस्थिति एवं इनके विकास का अध्ययन भी करते हैं।[10]

इन सब बातों का निर्वाह कलाकार की दक्षता पर निर्भर करता है। इसे ही कला का शिल्प कहा जाता है। स्पष्ट है कि शिल्प में रचना–कौशल तथा पूर्णता की ध्वनि है। कला–सृजन में यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। शिल्प उसी व्यक्तीकरण का कौशल है। शिल्प के लिए 'फार्म' का तीसरा प्रयोग किया गया है। डॉ० प्रेम भटनागर ने अपने शोध–प्रबन्ध में रूप[11], रूपाकार[12] तथा डॉ० सत्यपाल चुघ ने रूपाकार को ही 'फार्म' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया है।[13]

फार्म शब्द में शिल्प जैसी व्यापकता नहीं है और न ही अर्थ वहन करने की शक्ति। फार्म ही विषय का आधार मात्र है। इस शब्द का प्रयोग शिल्प के लिए नहीं किया जा सकता। वस्तुतः 'फार्म' शिल्प का एक अंग है। 'स्ट्रक्चर' के लिए हिन्दी में संरचना शब्द का प्रयोग किया जाता है। संरचना का सम्बन्ध रचना के गठन पक्ष से है। इस अर्थ में यह शब्द शिल्प के बहुत समीप आ जाता है।

---

10 डॉ० नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, पृष्ठ–61–62
11 डॉ० प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास – शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 10
12 वही, पृष्ठ – 11
13 डॉ० सत्यपाल चुघ – प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों की शिल्प–विधि, पृष्ठ – 1

वास्तव में शिल्प को अनुवाद या पर्याय मान लेना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति का द्योतक नहीं है । शिल्प न टेकनीक का अनुवाद है, न क्राफ्ट का। यह अपनी आत्मा, अर्थ और रूप में शुद्ध भारतीय है। इस शब्द में साहित्यिक कृतियों तथा अन्य सर्जक कला—कृतियों के सौन्दर्य को आँकने, कलात्मक सौन्दर्य का निमित्त कारण बनने, उस हेतु सामग्री—सम्पादन तथा विधियों के आकलन के अर्थ की व्यंजना देने की पूरी क्षमता है। वास्तव में दूसरी भाषा के शब्द का पर्याय बनकर कोई भी शब्द एक सीमा के बाद अर्थ वहन करने में असमर्थ हो जाता है। शब्द की भी अपनी आत्मा, अर्थ दीप्ति तथा अर्थच्छाया होती है। शिल्प शब्द जैसी व्यापकता तथा अर्थ गम्भीरता अन्य विदेशी शब्दों में नहीं हैं। अतः शिल्प शब्द के लिए विदेशी शब्द का प्रयोग करना न्याय—संगत नहीं प्रतीत होता। जैनेन्द्र जी के साहित्य में शिल्प का सहज एवं स्वाभाविक रूप से निर्वाह हुआ है। अतः जैनेन्द्र जी की शिल्पगत चेतना का विस्तृत विश्लेषण करना आवश्यक है।

कथा वस्तु—शिल्प

जैनेन्द्र कुमार ने सदैव रूढ़िगत परम्पराओं से अपने को अलग रखकर युगानुकूल स्वस्थ परम्पराओं को डालने में पथ—प्रदर्शक का कार्य किया है। उन्होंने जहाँ उन सामाजिक मान्यताओं को, जो रूढ़ि बन कर हमारे प्रगति में बाधक हो रही थीं, विरोध किया है वहीं पर उन्होंने घिसी—पिटी चली आ रही शिल्प—परम्परा को भी नया आयाम प्रदान किया है । अपनी मौलिक शैली के सन्दर्भ में उन्होंने 'परख' में स्वयं स्पष्ट किया है— 'मैंने इसमें काफी स्वतन्त्रता से काम लिया है। पर विश्वास है उसका दुरूपयोग नहीं किया। क्या कहूँ और कैसे कहूँ इन दोनों बातों में मैने किसी नियम को सामने नहीं रखा है—न भाषा

का शिकंजा है न भाव का। दोनों किसी क्रोड के नियमों में बॅधकर नहीं रह सकते।'[14]

वस्तु शिल्प को सही तथा संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में जाँचने के लिए हमें जैनेन्द्र के कथा साहित्य की मूल संवेदना तक जाना पडेगा। जैनेन्द्र के कथा साहित्य की मूल संवेदना क्या है—यह उलझा हुआ प्रश्न है। यों सतही तौर पर देखने से लगता है कि जैनेन्द्र के साहित्य की मूल संवेदना शान्तिमूलक करुणा है। करुणा की यह संवेदना सदा दर्शन से आच्छादित रहती है। ऐसा लगता है कि जैनेन्द्र संवेदना के पूर्ण होने से पूर्व ही उसे अभिव्यक्त कर देते हैं।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सिद्धान्त—निवेदन बहुत है। प्रायः सभी उपन्यासों तथा कहानियों का कथानक चिन्तनमूलक तथा दार्शनिक छाया से आपूर्ण है। उसमें तर्क—वितर्क तथा चिरन्तर का विवेचन—विश्लेषण है। जैनेन्द्र जी अपने कथा साहित्य में विराट प्रश्नों के प्रति जिज्ञासु हो उठते हैं जो अपनी प्रकृति में सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक हैं।

कथानक में प्रायः वाद—विवाद का आत्म—विवाद की शैली से जीवन और जगत् की समस्याओं के समाधान के लिए विचार हुआ है। इस विचार—तत्व की अधिकता के कारण ही उनके कथा साहित्य में निबन्ध के तत्वों का समावेश हो गया है। जैनेन्द्र जी ने चाहे किसी भी प्रकार की कथावस्तु चुनी हो उसके अध्ययन में कुशल हैं। उन्होंने कथा को कहने के लिए अनेक नाटकीय तथा मनोवैज्ञानिक कौशलों का प्रयोग किया है। कथा को आरम्भ करने की उनकी अपनी शैली है। कथा के आरम्भ के पूर्व वे प्रायः प्रारम्भिक या आरम्भिक का समावेश कर देते हैं जिसका उद्देश्य पाठक के लिए वास्तविकता की

---

14 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 3

सृष्टि करना है। जैनेन्द्र ने कथाओं को प्रस्तुत करने की विविध प्रणालियों को अपनाया है। कहीं वह परम्परागत ऐतिहासिक शैली है, जहाँ लेखक कथा तथा पात्रों के विषय में स्वयं कहता, बखान करता चला जाता है। कहीं प्रधान पात्र, जिसकी कथा प्रस्तुत है, स्वयं अपनी कथा 'आप बीती' के ढंग पर प्रस्तुत करता है।[15] कहीं यह किसी पात्र की डायरी के रूप में है तथा कहीं पात्र मात्र बारी–बारी से अपनी कथा पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। कहीं–कहीं कथाकार ने किसी गौण पात्र को वक्ता के रूप में रखा है जो अपने किसी सम्बन्धी या परिचित की कथा बड़े आत्मीय तथा करुणोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करता है 'त्यागपत्र' में प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की कहानी प्रस्तुत करता है तथा 'कल्याणी' मे वकील साहब जो कल्याणी से सुपरिचित थे तथा जिनके यहाँ वह प्रायः आती जाती थी, कल्याणी की कथा प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार पात्रों के माध्यम से कथा प्रस्तुत करने में लेखक को विशेष तटस्थता की सिद्धि प्राप्त हुई है। लेखक बीच में नहीं आता भुक्त–भोगी या तो अपनी कथा स्वयं कह देता है अथवा कोई आत्मीय व्यक्ति उस कथा को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देता है। दोनों ही दशाओं में वह विश्वसनीय बन जाती है । जिसकी वह अपनी कथा है, उससे अधिक और कौन उस कथा की जानकारी रख सकता है? आत्मकथा कहते हुए पात्र प्रायः गोपनीय प्रसंगों को भी पाठक के सामने उद्घाटित कर देते हैं।

कहीं–कहीं परिच्छेदों का विभाजन भाव–प्रवाह के स्वाभाविक रूप में बाधक बन गया है। 'विवर्त' उपन्यास में परिच्छेद आठ के अंत तथा परिच्छेद नौ के प्रारम्भ के बीच ऐसी ही स्थिति है। भुवन मोहिनी तथा उसके पति नरेश चाय पर बैठे हैं। पति दो प्याले चाय पी चुके हैं, मोहिनी तीसरा प्याला तैयार कर रही है, दोनों में बात–चीत चल रही है, बीच में ही परिच्छेद–परिवर्तन हो जाता है। परिच्छेदों की सन्धि पंक्तियाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा –

---

15. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 3

नरेश ने कहा—'अच्छा' और मोहिनी चाय तैयार करती रही।[16]

(परिच्छेद आठ का अन्त)

चाय के बीच में मोहिनी ने पूछा

'क्यों, आज चुप क्यों हो।[17]

नरेश बोले 'कुछ नहीं'

(परिच्छेद नौ का आरम्भ)

जैनेन्द्र के अधिकांश उपन्यासों का आरम्भ चिन्तापरक है। आत्म—कथात्मक उपन्यासों में प्रधान पात्र अपनी विगत कथा को पूर्व दीप्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। प्रायः वह पात्र अपने जीवन की अन्तिम स्थिति में होता है या तो चूक गया होता है अथवा टूट चुका होता है। 'सुखदा' की नायिका क्षय रोगिणी है तो 'व्यतीत' का नायक जयन्त 'पैंतालीसवीं वर्षगांठ पर स्वयं को बीता हुआ अनुभव करता है। वह अपनी कथा का श्री गणेश स्वयं को अनुभव करने की कथा से करता है। इस प्रकार कथा प्रस्तुत करने में जैनेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक प्रयोग के अन्तर्दर्शन का प्रयोग किया है। अन्तर्दर्शन मनोवैज्ञानिक प्रयोग की वैज्ञानिक पद्धति है, जिसमें विषयी अपने मन में झाँक कर अपने जीवन तथा व्यवहार का निरीक्षण करता है। इस प्रकार पूरी कथा 'आत्म निरीक्षण मूलक सामग्री' के रूप में हमें प्राप्त हो जाती है।[18]

16 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 71

17. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ—72

18 वह भी अपने विचारों, अनुभूतियों और अभिप्रायों का तथा वह जो कुछ देखता, सुनता और जानता है उसके विषय में हमें जानकारी करा सकता है। जब वह स्वय अपनी चेष्टाओं का निरीक्षण करता है तो इसे अन्तर्दर्शन कहते है और जो सामग्री वह प्रस्तुत करता है उसे अन्तर्दर्शन से प्राप्त सामग्री कहते है। उसे आत्मनिरीक्षण मूलक सामग्री भी कहते है, क्योंकि व्यक्ति आत्म निरीक्षण करके इसे प्रस्तुत करता है।..... अन्तर्दर्शन को पश्चात्—प्रतिमा के निरीक्षण के द्वारा समझाया जा सकता है.....किन्तु कोई दूसरा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की पश्चात्—प्रतिमाओ को नहीं देख सकता है ठीक उसी तरह जैसे कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दाँत में होने वाले दर्द को नहीं देख सकता है। (राबर्ट एस० वुडवर्थ तथा डोनाल्ड डी० मार्क्विस)

पात्रों को जीवन के अन्तिम पड़ाव पर उन्हें रीता तथा व्यतीत दिखाना भी सोद्देश्य है, क्योंकि प्रायः व्यथा भरे अन्तिम क्षण ही विगत जीवन के अन्तर्दर्शन के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रस्तुतकर्ता पात्र सामान्यतया चिन्तन से कथा आरम्भ करता है, आरम्भ प्रायः जगत या जीवन की समस्याओं या समाज के विधि–निषेधों को लेकर किया जाता है। यहाँ चिन्तन जिज्ञासा मूलक होता है। प्रस्तुत–कर्ता पात्र सीधा, बिना किसी भूमिका के समस्या से साक्षात्कार करता है। इस समस्या मूलक विवेचनात्मक पृष्ठभूमि से उस पात्र का जीवन उभरने लगता है, जिसकी कथा कहनी अभीष्ट है। जैनेन्द्र के दो उपन्यासों 'त्यागपत्र' तथा 'कल्याणी' की कथा इसी रीति से प्रस्तुत हुई है। दोनों कथाएं प्रताड़ित तथा शोषित नारियों की हैं। अन्ततः वे करुणा तथा सहानुभूति की अधिकारिणी हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में कुछ गौण पात्र भी कथा–विकास के माध्यम बने हैं। 'कल्याणी' का श्रीधर पात्र ऐसा ही है। वह कल्याणी के बारे में अनेक समाचार वकील साहब को लाकर देता है, श्रीधर ही वकील साहब को सूचना देता है. कि कल्याणी को मारा पीटा गया है तथा वह कराची में न होकर उसी नगर में कैद है।[19] कथानक के विकास में श्रीधर की भी अहम भूमिका है।

कथा–विकास में पत्रों का भी प्रयोग किया गया है। इन पत्रों को हम श्रीधर जैसे गौण पात्रों का स्थानापन्न मान सकते हैं। उपन्यास के विभिन्न पात्र एक दूसरे को पत्र लिखते हैं। जिससे कथानक के अनेक सूत्र स्पष्ट हो जाते हैं। 'परख' में भगवद् दयाल के सत्यधन के प्रति तथा गरिमा के साथ विवाह सम्बन्धी विचार पत्र द्वारा ही प्रकट होते है।[20] पिता और पुत्र दोनों की इस विषय में क्या

---

19 इसके कोई चारेक रोज बाद श्रीधर खबर लेकर आए कि श्रीमती असरानी एक कोठरी के अन्दर पड़ी हैं। उन्हे खूब मारा गया है और दो रोज से उन्होने कुछ खाया–पीया नही है। मैने कहा श्रीधर, क्या फिजूल बकते हो। वह तो कराची थी । कब लौटी ? श्रीधर कहा कराची ? कराची क्या होता है ? (जैनेन्द्र कुमार कल्याणी)

20 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 78

राय है यह भी भगवद् दयाल द्वारा बिहारी को लिखे गये पत्र से प्रकट होता है।[21] भगवद् दयाल की सम्पत्ति का बँटवारा किस प्रकार हो, यह भी हमें पत्र से ही पता चलता है।[22] इस प्रकार सत्यधन की क्या प्रतिक्रिया है—यह भी उसके पत्र में लिपिबद्ध है।[23]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में कथावस्तु के क्रमिक उद्घाटन की अनुपस्थिति हमारा ध्यान आकर्षित करती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जैनेन्द्र के कथा साहित्य में कथावस्तु है ही नही, या वे उसके विकास की ओर से उदासीन हैं, वरन् उसका मूल कारण जैनेन्द्र के कथा साहित्य की कथा वस्तु की प्रकृति है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाएँ उपलक्षण मात्र हैं।[24]

डॉ० देवराज उपाध्याय ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है— 'घटनाएँ कार्क के टुकड़े हैं, पात्रों के चेतना—प्रवाह नदी लहरें हैं, जिनके वात्याचक्र पर डूबती—उतराती हुई वे हमारा मनोरंजन करती रहती हैं। कार्क तो छोटा सा नगण्य टुकड़ा मात्र है पर नदी की लहरों की उन्मत्तता का सहारा पाकर स्वयं नदी की उन्मत्तता बन जाता है।[25]

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों के वस्तु—निबंधन तथा उपस्थापन में एकाधिक मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया है। पात्र जीवन—परिस्थिति से उद्दीप्त होकर अथवा मात्र मानसिक रूप से उत्तेजित होने के कारण स्वयं को हीनता की मनोदशा में पाते हैं। 'सुखदा' और 'व्यतीत' की कथा का विकास इसी पद्धति से हुआ है। सुखदा क्षयरोगिणी होकर अस्पताल के एकान्त से और जयन्त वर्षगांठ

---

21 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–80
22 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–120
23 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–121
24 जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में कहानी केवल निमित्त मात्र होती है (डॉ० नगेन्द–आस्था के चरण, पृष्ठ–621)
25 डॉ० देवराज उपाध्याय–आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृष्ठ–36

पर स्वयं को चुक जाने की स्थिति में पाकर अपने गत जीवन को प्रस्तुत करते हैं। पूर्वदीप्ति से कथा में संक्षिप्तता की सिद्धि होती है, क्योंकि घटनाएँ व प्रसंग स्वयं ही घट जाते हैं। पूर्वदीप्ति प्रधान उपन्यास न होने पर भी 'परख' में सत्यधन का प्रारम्भिक जीवन काफी बाद में लाया गया है। 'कल्याणी' में डॉ० कल्याणी वकील साहब के सामने आपना वर्तमान जीवन प्रस्तुत करती है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य के वस्तु–शिल्प में नाटकीय विधियों का प्रयोग भी मिलता है। प्रत्यावलोकन शैली के कारण पात्र का अतीत वर्तमान बन जाता है।[26] 'व्यतीत' में जयन्त अपनी कहानी सुनाता–सुनाता झट से क्रियाओं का काल बदल देता है–'यह नहीं कि मैं समझ नहीं सका × × × × × वह अभाव कहाँ से आ गया था ? बीज तो था नहीं, किस में यह फल आया था? याद कर सकता हूँ कि कुछ हँसी आ गई थी। कहा × × × × ×' [27]

सुखदा अपने बीते जीवन में पति–सम्बन्धों की चर्चा करते वर्तमान की स्थिति से पाठकों को फिर से अवगत करा देती है 'स्वामी ने कहा, तुम बनाओगी ? नहीं, चलो आज किसी रेस्तरां में खायेंगे।'

'लेकिन उनकी इस तरह की बात पर मेरे लिए असम्भव हो गया है कि मैं रोटी बनाने के मौके को छोड़ दूँ। वह संध्या मुझे याद आती है। लेकिन किस बात पर उसे याद करूँ। आज यहाँ इतनी दूर आकर बड़ी लगने वाली घटनाएँ तुच्छ मालूम होती हैं × × × × × हाय आज कैसा अचरज है × × × × ×'[28]

---

26 It is not something in the past bur something going on now in the immediate persent. And this is where the dramatic novelist takes clue from drama. Even in the novel there is something that is felt as the dramatic present. (J.W.Beach. the twentieth century novel . - Page - 147)

27 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 95

28 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 32

जैनेन्द्र का शिल्प इन स्थलों पर इतना सजीव है कि पाठक की कल्पना–शक्ति जागृत हो उठती है और वह विश्वास के भ्रम का शिकार हो जाता है। कथावस्तु में नाटक के समान ही पात्रों की क्रियाओं में विभिन्न ध्वनियों तथा पात्रों के हाव–भाव, मुख–मुद्राओं को कोष्ठक में रखकर संक्षिप्तता तथा गति की सिद्धि की गयी है। नाटक के समान कथावस्तु में संघर्ष को स्थान दिया गया है। जैनेन्द्र ने वस्तु नियोजन में संयोग–तत्व का प्रयोग किया है। अंग्रेजी आलोचक हडसन ने कहा है कि हम कथावस्तु में संयोग का समावेश मात्र इस आधार पर नहीं कर सकते कि वे वास्तविक जीवन में भी घटित होते हैं। उनका मत है कि कथात्मक साहित्य बिलकुल वास्तविकता जैसा नहीं होता।[29]

कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण में जैनेन्द्र जी ने परम्परागत शैली का अनुगमन किया है। वे कथा कहते हुए पाठक को सम्बोधित करते चलते हैं। 'परख' में यह प्रवृत्ति बहुत है। 'त्यागपत्र' का आरम्भ भी सम्बोधन शैली से होता है। सुखदा भी बीच–बीच में पाठको को संबोधित करती चलती है। मानो सम्मुख बैठे लोगों को अपनी कहानी सुना रही हो। 'त्यागपत्र' में कहानी सुनाते समय हामी भरने की लोक रीति का भी पूर्ण प्रयोग हुआ है, यह जैनेन्द्र की अपनी मौलिक देन है। प्रमोद अपनी बुआ को अपने परिवार और जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों के ब्योरे सुना रहा है। बीच–बीच में प्रमोद चुप बैठी बुआ से हामी भरवाने के लिए कहता है 'सुनती हो? क्यों बुआ ? तुम मत बोलो; लेकिन मैं तुम्हें बताये देता हूँ...........आदि।[30] जैनेन्द्र के कथा साहित्य में पाठक एक करुणा की आर्द्रता का अनुभव करता है,

---

29. The defence which is Something offered for the free use of coincidence that Concidences to happen in real lige is searcely to the point, for the adrise of the dictum that truth is stranger than fiction is that fiction should not be so strange as truth". (Willion Heary hundson - An Introduction to the Study of Literature, Page 186)

30 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–56

उसका एक प्रधान कारण यह संवेदनशीलता ही है। मूलतः चिन्तक होने के कारण जैनेन्द्र जी कई बार मूल कथा तन्तु तोडकर भावुक होकर दार्शनिक चिन्ता में निमग्न हो जाते हैं। प्रायः ऐसे अंश दीर्घ हो जाते हैं और लघु निबन्ध का रूप ग्रहण कर लेते हैं। 'जयवर्धन' में तो यह प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर है और वहाँ पूरे के पूरे निबन्ध भाषण या पत्र रूप में मूल कथा में ठूँस दिए गए हैं, 'त्यागपत्र' में भी इसी प्रकार के लम्बे–लम्बे वक्तव्य आए हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि कथावस्तु का चरम बिन्दु आ जाता है, कथा समाप्त हो जाती है परन्तु जैनेन्द्र जी पुनः प्रसंग को उठा लेते हैं। 'परख' में कट्टो और बिहारी का विवाह 'क्लाइमेक्स' बिन्दु है। उसके पश्चात् कथा को फैलाना अस्वाभाविक है।

विषय–वस्तु की दृष्टि से जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में प्रेम–परिवार तथा व्यंग्य रूप से सामाजिक तथा क्रान्तिकारी तत्वों का समावेश हुआ है। कथावस्तु में वे सामान्यतः त्रिकोणात्मक प्रेम की स्थापना करते हैं। यह स्थापना दो पुरुषों तथा एक नारी को लेकर होती है किन्तु 'व्यतीत' अपवाद है। 'व्यतीत' में एक पुरुष तथा दो नहीं, कई नारियाँ है; जयन्त के विवाह के प्रसंग में बुधिया अपनी भावनाओं को प्रकट करती है। यह प्रसंग साधारण रोमांस की गन्ध देता है।[31]

सामाजिकता का अंत कथा साहित्य की विषय–वस्तु में गौण तथा परोक्ष रूप से आया है। 'परख' में विधवा की समस्या आयी है जिसका समाधान लेखक ने आदर्श किन्तु अव्यावहारिक रूप से दिया है। 'सुनीता' में घर–बाहर की समस्या है। जिस पर डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने रवीन्द्र के 'घर और बाहर' का प्रभाव देखा है। उनका मत है

---

31 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 36

कि इसका निरूपण पहले रवीन्द्रनाथ कर चुके हैं। डॉ० मदान के विचार द्रष्टव्य हैं – 'इस तरह घर और बाहर की समस्या इनकी उपन्यास कला की मूल समस्या है, जिसका निरूपण रवीन्द्र नाथ के उपन्यास 'घर और बाहर' में पहले हो चुका था।'[32]

जैनेन्द्र जी के प्रायः सभी उपन्यासों की कथावस्तु करुणा से भीगी हुई है। उनकी मूल संवेदना को देखते हुए यह सर्वथा स्वाभाविक भी है। कथावस्तु को दुःख का रंग देने के लिए कई उपकरणों का प्रयोग हुआ है। कथा में वर्णित पात्रों का जीवन दुःखमय होता है, वे जीवन भर निर्दोष रहने पर भी समाज या समाज के व्यक्तियों, विधानों द्वारा दी गयी यातना के संघर्ष भोगते हैं तथा अन्त में प्रतिवाद का एक शब्द कहे बिना इस संसार से विदा हो जाते हैं । पाठक की कथा के प्रति तल्लीनता भी इस करुणोत्पादन के लिए उत्तरदायी है। समाज का जीतना तथा पात्र की हार की त्रासदी भी इस करुणा को सघन बनाती है। इस शिल्प से कथावस्तु की प्रभावात्मकता सघन हुई है।

चरित्र–चित्रण–शिल्प

जैनेन्द्र जी ने विशुद्ध रूप में जीवनियाँ तो नहीं लिखीं, परन्तु ऐसे उपन्यास अवश्य लिखे हैं जिनमें प्रधान चरित्रों को महत्व दिया गया है। उनकी कथा वस्तु, उनके चरित्रों के अनुरूप और अधीन रही है। टाइप चरित्रों के स्थान पर व्यक्ति चरित्र देने का ऐतिहासिक कार्य सर्वप्रथम जैनेन्द्र जी द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम चरित्रों को नैतिक–अनैतिक के दल–दल से निकालकर मानव की स्वाभाविक भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित किया। मानव उनके लिए सद् या असद् नहीं था, मात्र मानव था।

---

32 डॉ० इन्द्र नाथ मदान – आज के हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ – 24

पात्र चयन के विषय में जैनेन्द्र ने बडी सूझ–बूझ से काम लिया है। उनके कथा साहित्य की मूल संवेदना करुणा की है। वे अपने उपन्यासों द्वारा एक विशिष्ट दर्शन प्रतिफलित करना चाहते हैं। जैनेन्द्र ने अचेतन मन को बहुत महत्व दिया। उन्होंने पात्रों के अचेनत मन के चित्रण में भरपूर प्रयोग किया है। उनके पात्र साधारण नहीं असाधारण हैं। वर्गगत नहीं विशिष्ट हैं। जैनेन्द्र के पात्र अचेतन से परिचालित होते हैं। पात्र के मन मे कोई न कोई ग्रन्थि या अतृप्ति रहती है। शची रानी गुर्टू का मत है कि 'जैनेन्द्र के पात्रों की कहानी × × × × × परिस्थितियों से जूझने वाले व्यक्तियों, उनके परिवेश और सामाजिक सम्बन्धों की कहानी न होकर कुण्ठा ग्रस्त और किसी एक वृत्ति या मूड के वशीभूत आत्म केन्द्रित लोगों की कहानी है।[33] 'परख' के पात्रों की मनोवैज्ञानिक अर्थ में कोई ग्रन्थि नहीं है। यह ग्रन्थि युक्त पात्र–परम्परा 'सुनीता' से प्रारम्भ होती है। 'सुनीता' में मनोवैज्ञानिक शब्दावली का स्पष्ट प्रयोग है। श्रीकान्त के शब्दों में हरि की आत्मा में कहाँ गाँठ पड़ी है कि वह अतर्क्य होता × × × × × जैसे अपने भीतर भेद को पाल रहा है × × × × × क्या उसे भरमा रही है × × × × ×[34] 'कल्याणी' में लेखक श्रीधर का परिचय देते हुए कहता है कि उसमें गाँठ नहीं है। सुखदा विवाह पूर्व भावी पति के विषय में कल्पना चित्र बनाती है कि उनकी आमदनी सात सौ रूपये होनी चाहिए। मोटर तो पास होना अनिवार्य ही है।[35] परन्तु थोड़े दिन बाद विवाह हुआ तो उनका वेतन कुल डेढ़ सौ।[36]

जैनेन्द्र ने चरित्र–चित्रण के अन्तर्गत अचेतन में सक्रिय रहने वाली मूल प्रवृत्तियों का उपयोग किया है। उनके अधिकांश पात्रों के

---

33 शची रानी गुर्टू – जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद (लेख) – साप्ताहिक हिदुस्तान, 16 मार्च 1958
34. जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 103
35. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 10
36 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 10

अन्तः सम्बन्ध काम वृत्ति से प्रेरित हैं स्त्री–पात्र पुरुषों की ओर यौन–आर्कषण से प्रेरित होकर पतियों की उपेक्षा और विरोध करते है। उनके पुरुष पात्र नारियों को 'समूची' चाहते हैं और प्रायः वह विविध पदावली[37] से पुरुषों के प्रति प्रस्तुत रहती हैं और इसके तुरन्त पश्चात् ही पाटी पर सिर पटक कर या बूटों के तस्मों को आंसुओं से भिगोकर अथवा साड़ी–बाडी उतारकर जिस दृश्य का निर्माण करती हैं वह काम मूलक तो है परन्तु गौरवहीन है। कतिपय विचारकों ने इसकी कटु आलोचना की है।[38] अचेतन में काम–प्रवृत्ति की सक्रियता के आत्यन्तिक चित्रण के अतिरिक्त कहीं उसके हल्के रूप का भी वर्णन है। मुक्तिबोध में मिस्टर सहाय नीलिमा के पास से आए हैं। घर आकर पत्नी राजश्री को बात–बात पर डाटते हैं। उसे उनका शेष समझ में न आ रहा था × × × × ×[39] की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मिस्टर सहाय नैतिकता का उपदेश देते हैं, इस पर नीलिमा भर्त्सना करती हुई कहती है–'मुझे नहीं मालूम था सहाय कि तुम्हारा दिल इतना कमीना हो गया है।[40] सहाय के क्रोध पूर्ण व्यवहार में अचेतन का आहत शामिल है।

जैनेन्द्र के पात्रों मे दूसरों की प्रणय–क्रीड़ाओं तथा प्रणय–रहस्यों को छिपकर देखने या सुनने की प्रवृत्ति पायी जाती है। डॉ० देवराज उपाध्याय ने इस प्रवृत्ति को 'वायोरिज्म' का नाम दिया है।[41] सुनीता और हरि प्रसन्न के स्टडी–रूम से हरि प्रसन्न का सम्भवतः सुनीता के लिए कहा गया शब्द 'ठहरो कहाँ जाती हो? सुनाई दिया तो वह 'बाबा रे! चिल्लाती हुई भागी जाती है।[42]

---

37 जैनेन्द्र कुमार –सुनीता, पृष्ठ – 198
38 डॉ० त्रिभुवन सिंह – जैनेन्द्र : व्यक्ति और कृतित्व (सं० सत्य प्रकाश मिलिंद), पृष्ठ – 81–82
39. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 71
40 वही, पृष्ठ – 64
41. डॉ० देवराज उपाध्याय – जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ – 89
42 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ–143

जैनेन्द्र के अधिकांश पात्र नागरिक, सुशिक्षित सुरुचिपूर्ण तथा कला–प्रेमी हैं। 'परख' की कट्टो ही इसका अपवाद है। प्रायः वे अच्छे पदों पर हैं तथा उनके सामने रोजी–रोटी की समस्या नहीं है। यह विस्मयजनक साम्य है कि जैनेन्द्र के पुरुष पात्र प्रायः न्यायपालिका से सम्बन्धित हैं। सत्यधन और श्रीकान्त वकील हैं, प्रमोद तथा राम चरण जज हैं, नरेश बैरिस्टर है; कल्याणी और जयन्त कविताएँ लिखते है, सुनीता के स्टडी रूम में शेली तथा अन्य कवियों का कविता–संकलन है तथा वायलिन, सितार, हारमोनियम तथा तबला आदि वाद्य–यन्त्र हैं। हरि प्रसन्न चित्रकारी करता है तथा फोटो भी ठीक कर सकता है। जैनेन्द्र का यह चयन सोद्देश्य है। ऐसे भावुक पात्र अधिक संवेदनशील होंगे तथा उनके व्यवहार सामान्य से पृथक् होंगे। वकील या बैरिस्टर पात्र इसलिए रखे गए हैं क्योंकि वह समाज के विधि–निषेधों के प्रतीक एवं कानून के प्रतिनिधि हैं क्योंकि जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य में सामाजिक कानून को स्वीकार नहीं करते हैं। मनोविज्ञान में व्यक्ति के मन के रहस्यों को जानने के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कई विधियाँ हैं। जिन व्यक्तियों के मन में कोई ग्रन्थि या दमित इच्छा है उनके उपचार करने के लिए मनोविज्ञान में इन विधियों का प्रयोग किया जाता है। उपन्यास या कहानी के पात्रों के मन में जो भावनाओं की आँधी प्रतिपल चलती रहती है, अथवा ऐसे रहस्य गढ़े हुए है जिनका कारण सुदूर अतीत में है, जिससे वह स्वयं भी परिचित नहीं, उन्हें पाठक तक कैसे पहुँचाया जाये? उत्तर स्पष्ट है × × × × × मनोविश्लेषण की विधियों द्वारा। यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होता है।

स्वप्न

फ्रायड का मत है कि हमारे जीवन मे ऐसी बहुत सी इच्छाएँ होती हैं जो असामाजिक तथा अनैतिक होती हैं। सामाजिक संस्कार के प्रहरी जिन इच्छाओं को चेतन अवस्था में उभरने नहीं देते, स्वप्न में वही रूप बदल कर आते हैं। सभी स्वप्न इच्छापूर्ति हैं।[43] उनके मतानुसार स्वप्न–विश्लेषण अचेतन मानस की जानकारी प्राप्त करने का साधन है। प्रत्येक स्वप्न का एक अर्थ होता है तथा विचित्र से विचित्र स्वप्न की व्याख्या की जा सकती है। जैनेन्द्र ने स्वप्न द्वारा चित्रण किया है। सुखदा के स्वप्न–विश्लेषण में हम उसके अचेतन की इच्छा की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील पाते हैं। सुखदा स्वप्न में देखती है कि कोई व्यक्ति उसके तकिये के नीचे पत्र रखकर जा रहा है।[44] इस स्वप्न में सुखदा की लाल को प्रेम करने तथा उसके सामीप्य के लिए स्वतन्त्रता–प्राप्ति की इच्छापूर्ति है। पत्र रखने वाला हाथ सुखदा के पति कान्त का है, पति स्वयं घर छोड़कर जा रहा है। इससे सुखदा की लाल के प्रति आकृष्ट होने इच्छा की पूर्ति होती है, परन्तु साथ ही पति के चले जाने से स्वयं को अरक्षित अनुभव करने से उसकी चीख निकल जाती है। इस स्वप्न से सुखदा के अन्तर्जगत् की कुण्ठा व्यक्त होती है।

दिवास्वप्न

बिहारी गाँव जा रहा है, रेल में बैठे–बैठे वह आगे आने वाले जीवन का चित्र बनाता है, वह जाग्रतावस्था में भी कट्टो को लेकर तत्संबंधी तरह–तरह की योजनाएँ बनाता है। रेल चल रही है और

---

43 Dreams are one of the manifestations of the suppressed material.....finds ways and means of obstruding inself on conciousness during the night. Sigmund Freud-The Basic writing of Singmand Freud (Trans. A.A.Brill, Page - 559)

44 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–42–43

उधर बिहारी का कल्पनाशील मन सक्रिय है। वह कट्टो के काल्पनिक चित्र को लेकर सोचना आरम्भ करता है कि वह पानी भर रही होगी × × × × × कहीं सत्य उसे पढ़ाता मिले × × × × × गाँव में रहने लगूँगा × × × × ×एक झोपड़ी बनवा लूँगा × × × × × बाबूजी कहेंगे तो कहें × × × × × अंग्रेजी डिग्री खूँटी पर लटका दूँगा × × × × × कैसा मजा रहेगा × × × × × एक गाय रखूँगा आदि। लेखक की पंक्ति 'इसी तरह की बहक में वह बेरोक बह चला'– इसी ओर संकेत करती है।[45] इस दिवा–स्वप्न से बिहारी के चरित्र का उद्‌घाटन होता है। यह भी प्रकट होता है कि कट्टो के विषय में उसकी कैसी भावनाएँ हैं।

विभ्रम

निराधार प्रत्यक्षीकरण को विभ्रम कहते हैं। यह आत्मगत प्रक्षेपण है। इसके लिए बाह्य जगत में किसी आधार की आवश्यकता नहीं होती। व्यक्ति अपने मानसिक द्वन्द्व के कारण ही बाह्य जगत में वस्तुतः न होते हुए भी अनेक वस्तुओं को देखता–सुनता है। वह रोग की आरम्भिक अवस्था में प्रेत छायाओं अथवा फुस–फुसाहट को भ्रम कहकर टाल देता है और उन्हें सत्य नहीं मानता। किन्तु रोग बढ़ जाने पर फुस–फुसाहट की ध्वनियाँ अथवा छायाएँ इतने प्रबल रूप से उसके प्रत्यक्षीकरण पर छा जाती हैं कि वह उन्हें सत्य समझता है।[46] हरिप्रसन्न सुनीता को जंगल में ले जाता है। प्रत्यक्षीकरण है–दल का नेतृत्व, परन्तु अचेतन में उसे समूची पाने की इच्छा है। वह उसे बाँहों में समेट लेना चाहता है। उसमें प्रेम का तीव्र प्रवाह उमड़ता है। संवेद और मन पूर्व धारणाओं से प्रायः भ्रम और विभ्रम हो जाया करते है।[47]

---

45 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ– 57–58

46 William Medougali-An out line of Psycology, Page-373

47 डॉ० रामनाथ शर्मा – सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृष्ठ–187

अतः उसे लाल रोशनी दिखायी पड़ती है जिसे वह खतरे का चिन्ह मानकर सुनीता को अपने वक्ष से चिपका लेता है।[48] यह विभ्रम सुनीता के प्रति हरि प्रसन्न की प्रच्छन वासना व्यंजित करता है। कल्याणी को कभी–कभी मृत आत्माएँ देखने का सन्देह होता है।[49] उसे गुसलखाने में से फुस–फुस की आवाज आती है। उसी स्थान पर किसी स्त्री–पुरुष की बहस सुनायी पडती है। फिर उसे लगता है जैसे स्त्री की हत्या कर दी गयी हो। कल्याणी को हत्यारा कमरे के आर–पार जाता दिखायी पड़ता है, आदि–आदि।[50] जैनेन्द्र जी इस विभ्रम को विश्वसनीय बनाने के लिए स्त्री–पुरुष की आकृति और वेशभूषा भी देते हैं।

सम्मोहन तथा मुक्त–आसंग

सम्मोहन की दशा में व्यक्ति अत्यधिक निर्देशनीय हो जाता है। वह निर्देशों को तुरन्त मानकर मन के अनेक गुप्त भेद कह देता है तथा उनके उपचार के लिए दिये गये निर्देश को भी मान लेता है। वह व्यक्ति सम्मोहन से प्रभावित होकर अधिक निर्देशनीय बनता है जो अपने विचारों को हीन तथा दूसरे के विचारों को श्रेष्ठ समझता है। ऐसे लोगों में मनोबल की कमी होती है। मुक्त–आसंग में पात्र अपने मन को खुला छोड़ देता है तथा विचारों, भावनाओं तथा इच्छाओं को निर्बाध रूप से बिना किसी भ्रम, भय तथा संकोच के प्रकट करता है।[51] जैनेद्र के कथा साहित्य में प्रायः एक पात्र मनोविश्लेषक का कार्य करता है–तथा उसके सम्मुख एक असामान्य पात्र रहता है। वह अपने मनोविश्लेषण के निर्देशों से सम्मोहित की सी अवस्था में अपनी

---

48 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 230
49 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 76
50 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 78
51 Alffed Adler-Understanding Human Nature, Page - 52

कथा तथा जीवन के भेदों का उद्घाटन करता है। कभी–कभी पात्र अटककर मनोविश्लेषण के लिए रोक भी उत्पन्न करता है जिसे वह सहानुभूति और विश्वास के आधार पर हटा देता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मुक्त आसंग प्रणालियों का सर्वोत्तम उदाहरण 'जयवर्धन' है। हूस्टन मनोविश्लेषक की सी शैली में जय से कहता है–'× × × × × मुझे आपका कर्म विवरण नहीं चाहिए। वह तो उजागर ही है। आया हूँ तो अन्तरंग लेने आया हूँ × × × × ×।'[52] जय उसमें रोक उत्पन्न करता है क्योंकि पात्र एकाएक निर्देशनीय नहीं बनता। जय का उत्तर है–'अन्तरंग लेने के लिए नहीं, न देने के लिए है।'[53] इसी प्रकार इला भी आरम्भ में रोक उत्पन्न करती है।[54] हूस्टन समझ लेता है कि उस समय और प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। शुद्ध रूप में नहीं किन्तु आंशिक रूप में जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य में मनोविश्लेषक पात्र की स्थिति विद्यमान है।

अन्तर्दर्शन

अन्तर्दर्शन में व्यक्ति एकान्त में अपनी अनुभूतियों का ही मूल्यांकनात्मक निरीक्षण करता है। प्रायः यह प्रत्यावलोकन की शैली में होता है। सुखदा तथा जयन्त अन्तर्दर्शन के द्वारा अपना समस्त जीवन हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। 'त्यागपत्र' का अन्तिम अंश[55] प्रमोद का अर्न्तदर्शन है। अन्तर्दर्शन से व्यक्ति का आन्तरिक जीवन तथा पात्र की उसके प्रति प्रतिक्रिया पाठक के सामने स्पष्ट हो जाती है।

---

52 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 23
53 वही, पृष्ठ – 23
54 वही, पृष्ठ – 25
55 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 98–100

अन्तर्विवाद

'अनन्तर' में नायक प्रसाद का एक सुन्दर अन्तर्विवाद है।[56] 'जयवर्धन' में अनेक भीतरी विचार अन्तर्विवाद बनते–बनते रह गए हैं, क्योंकि वहाँ के संवाद किसी अन्य पात्र की उपस्थिति में कहे सुने जाते हैं। 'सुनीता' में भी एक सुन्दर अन्तर्विवाद खण्डित हो गया है।[57] 'सुखदा' में प्रभात लाल का विरोध करता है। सुखदा लाल के प्रति अतिरिक्त सहानुभूति भाव रखती है। प्रभात सुखदा से लाल के बारे में बार–बार पूछता है कि साहब कहाँ हैं, मानो सुखदा को लाल की हर प्रकार की जानकारी होनी चाहिए। सुखदा को अनुभव होता है कि लाल के सम्बन्ध को लेकर उस पर व्यंग्य किया जा रहा है। उसे दिखा जैसे प्रश्न के साथ उसके ओठों में व्यंग्य की मुस्कराहट खेल आयी।[58] वस्तुतः यह सुखदा के मन को प्रक्षेपीकरण है।

'विवर्त' में जितेन के पास मोहिनी के गहने हैं। वह तिन्नी को बार–बार आग्रह करता है कि वह गहने पहन कर उसे दिखाए। मोहिनी को आभूषण–सज्जित देखने की वह लालसा स्थानान्तरित होकर तिन्नी पर आ जाती है,[59] इसी प्रकार अनिता का जयन्त की बहू को देखने की कामना प्रकट करने का प्रसंग है। वह जयन्त के प्रति वात्सल्य भाव प्रकट करती है। यह प्रणय–प्रेम से वात्सल्य प्रेम के स्थानान्तरीकरण का उदाहरण है।[60]

---

56. जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 102
57 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 87–88
58 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 186
59 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 171–172
60 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 74

संघर्ष

जैनेन्द्र ने अपने पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए संघर्ष का भरपूर प्रयोग किया है। इनके पात्रों का संघर्ष समाज से या सामाजिक समस्याओं से नहीं वरन् निज से है। अतः संघर्ष विशेषतः नारियों में तीव्रतम पाया जाता है। वे हृदय की दो विरोधी वृत्तियों के द्वन्द्व से टूट जाती हैं। यह द्वन्द्व इदम् और अहं के मध्य है। इदं मूल प्रवृत्तियों का कोष तथा मनः ऊर्जा मूल स्रोत है। बाह्य जगत से सम्बन्ध न होने के कारण यह अनुभव के द्वारा परिमार्जित नहीं होता। किन्तु अहं के द्वारा इस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है × × × × ×[61]। इदं अत्यन्त शक्शिाली होता है तथा सुख के उद्देश्य से परिचालित होता है,[62] अहम्, इदं और पराहम् के बीच सामंजस्य स्थापित करता रहता है, किन्तु यदि अहम्, इदं या परमहम् के सम्मुख आत्म समर्पण कर देता है तो व्यक्तित्व में असामन्जस्य का बोलबाला हो जाता है।[63] जैनेन्द्र के अधिकांश नारी पात्र व्यक्तित्व के असामंजस्य से पीड़ित हैं।, उनका चेतन मन उन्हें सतीत्व की ओर खींचता है और अचेतन मन उन्हें प्रेमियों की ओर ले जाता है और दोनों का निर्वाह करने के प्रयास में उनका जीवन दयनीय हो जाता है। एक ओर उनके मन में परम्परागत संस्कार हैं जिनसे चाहकर भी वे मुक्ति नहीं पातीं और दूसरी ओर प्रच्छन्न वासनाएँ हैं जो तृप्ति के लिए निरन्तर छटपटाती हैं तथा नारियों के सभी नैतिक–सामाजिक कर्तव्यों को लाँघ जाती है। सुखदा इसका जीता–जागता उदाहरण है। वह हरीश की ओर भी झुकती है तथा लाल की ओर भी। वह पति का अंकुश नहीं मानती और स्पष्ट कहनी है × × × × × मैं सभा जाऊँगी, तुम रोक नहीं

---

61 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृष्ठ–12
62 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड : मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृष्ठ–23
63 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड : मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृष्ठ–24

सकते।[64] तुरन्त उसके संस्कार गतिशील होते हैं और वह कह उठती है—'मैं साथ तो हूँ, पर पदाधिकारी न बनाएँ और कभी उनसे पूछना भी नहीं × × × × × ।[65]

जैनेन्द्र के नारी—पात्र पुरुष—पात्रों की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं। जैनेन्द्र नारी मनोविज्ञान की जानकारी का अच्छा परिचय देते हैं। कल्याणी मान्यता चाहती है, सुखदा में स्त्री की स्वामित्व की इच्छा का तत्व है । वह चाहती है उसका पति उसे रोके—टोके और जब ऐसा प्रतिरोध नहीं हो पाता तो झुँझलाकर उनके विरूद्ध हो जाती है। सुखदा के लिए समस्या यही है कि उसका पति 'देवता या एकदम गऊ है।[66]

जैनेन्द्र के पात्र मानसिक अधिक हैं और मांसल कम, क्योंकि वह नहीं चाहते कि उनके पात्र डेढ़—ड़ेढ़ दो—दो मन के हों।[67] उनके पात्रों के अन्तरंग को जानने के लिए अनुभाव सर्वोत्तम साधन है। जैनेन्द्र पात्रों का संक्षिप्त रूपाकार चित्रण करते हैं। प्रायः वे पात्र का बाहरी हुलिया या वेशभूषा का विस्तृत चित्र नहीं देते । ऐसे स्थानों पर जैनेन्द्र का चयन प्रशंसनीय है। वे चित्र में कम रेखाएं ही नहीं चुनते हैं अपितु ऐसी रेखाएं चुनते हैं, जो व्यंजक हों। सुनीता की सुन्दरता वे इतनी—सी बात कहकर व्यंजित कर देते हैं—'एक बॉह, गोरी—गोरी बॉह' ।[68] सत्या का हमें इतना ही परिचय मिलता है × × × × × 'सुनीता की छोटी बहिन है——आजकल कालेज में इण्टरमीडिएट के दूसरे वर्ष में पढ़ती है।'[69]

---

64 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 26
65 वही, पृष्ठ – 28
66 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 22
67 जैनेन्द्र कुमार – साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ – 157
68 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 51
69 वही, पृष्ठ – 64

कई स्थानों पर 'यथा नाम तथा गुण' की प्रणाली अपनाई गई है तथा गुण–विरोधी नाम रखे गए हैं यथा बिहारी उन्मुक्त है, मृणाल पवित्र है, भुवनमोहिनी सबको मोहित कर लेती है। जयन्त, वस्तुतः नारियों में जयन्त है, आदि। किन्तु फिर भी बिहारी बँध जाता है सत्यधन धन का सत्य बन जाता है, सुखदा दुखदा बन जाती है, सुनीता के सुनीता होने में सन्देह लगता है, हरि प्रसन्न में न वास्तविक हरियाली है न प्रसन्नता, कल्याणी अकल्याणी बन जाती है।

जैनेन्द्र के ढाई पात्रों की बात अत्यन्त प्रसिद्ध है।[70] स्वयं उन्होंने कहा कि तीन चार व्यक्तियों से मेरा काम चल गया है।[71] अतः उनके उपन्यासों में पात्र–विरलता सहज ही उपलब्ध है। जैनेन्द्र पात्रों को आवश्यकतानुसार ही अवतरित करते हैं–'सुनीता' में सत्या का अवतरण तब होता है जब हरि प्रसन्न को घर में बाँध रखने के लिए काम की खोज की जाती है।

जैनेन्द्र के चरित्र–चित्रण में तुलनात्मक प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। यह तुलना कभी–कभी ही सम होती है, अधिकांशतया विषम होती है। 'सुनीता' के आरम्भ में श्रीकान्त तथा हरि प्रसन्न का तुलनात्मक चरित्र–चित्रण है। दोनों की चारित्रिक विशेषताओं का अन्तर स्पष्ट किया गया है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में कुछ पात्र संवेदना के मापक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। यह प्रधानता प्रमोद (त्यागपत्र) तथा वकील साहब (कल्याणी) में है। ये पीड़ा भोगती नारियों के प्रति हमारी संवेदना का असाधारण कार्य निभाते हैं। प्रमोद और वकील साहब क्रमशः मृणाल और कल्याणी की करूण गाथाएँ सहानुभूति के साथ सुनते हैं तथा सांवेगिक मूर्च्छना की स्थिति में उन्हें सहारा देते हैं। ये दोनों पात्र दुःखी नारी जीवन के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं तथा बीच–बीच में आलोचनात्मक टिप्पणियाँ देते जाते हैं।

---

70 डॉ० राम रतन भटनागर – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ–170

71 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 5

जैनेन्द्र के पात्रों में एक विशिष्ट प्रकार का अन्तर्विरोध तथा रहस्मयता पायी जाती है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' में अपने दो निबन्धों में मृणाल के व्यवहार की औचित्य संबंधी अनेक आशंकाएं उठाई हैं। अन्यत्र उन्होंने उनके पात्रों को निष्क्रिय माना है।[72] जैनेन्द्र के पात्र प्रायः नियतिवादी हैं। उनके कथा साहित्य में प्रायः एक दार्शनिक पात्र आवश्य रहता है। सुनीता पहले चौका वासन करने वाली है और अन्त में कितनी रहस्यमयी हो उठी है। पतियों में पुरुषोचित ईर्ष्या का अभाव है। जयन्त कश्मीर की सुषमा में भी नव परिणीता की प्रणय याचना के प्रति आकर्षित नहीं होता है।[73] सुनीता भी एक ओर पतिव्रता का दम भरती है और दूसरी ओर हरि प्रसन्न के सम्मुख निर्वस्त्र होती है और जाते हुए हरिप्रसन्न की पद रज ग्रहण करती है। मृणाल भी जिस किसी को जब–तब ग्रहण कर लेती है तथा छोड़ देती है।

कथोपकथन शिल्प

घटना को अप्रधान बना देने पर चरित्र–चित्रण का आधार कथोपकथन मात्र रह जाता है।[74] कथोपकथन के माध्यम से हम चरित्रों के अन्तर्जगत में प्रवेश करते हैं। उनमें उठने वाले भावावेग, उनके विचार और दृष्टिकोण को लेखक के विचारों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधि भी कह सकते हैं। ये भाव पात्रों की चेष्टाओं के अतिरिक्त उनकी वाणी द्वारा भी प्रकट होते हैं। जिन उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता रहती है उनमें भी कथोपकथन कथा विकास के साधन बनते हैं। कथोपकथन से कथा में नाटकीयता तथा रोचकता का समावेश होता है। कथोपकथन की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

---

72 आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी – उपन्यासकार जैनेन्द्र, (लेख), युग चेतना–मार्च 1955 पृष्ठ–22
73 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 85–87
74 डॉ० प्रभाकर माचवे – जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व, (संपा० – सत्य प्रकाश मिलिंद), पृष्ठ–43

मानवीय संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ–साथ भाषा जन्य अक्षमता का प्रहार होता रहा। शिल्प की दृष्टि से आज के सफल उपन्यासों और कहानियों मे जो वार्तालाप प्राप्त होता है वह कथानक को सहज–स्वाभाविक गति प्रदान कर चरित्र–चित्रण में योगदान देता है। जैनेन्द्र कुमार के कथासाहित्य में विविध प्रकार के कथोपकथनों का शिल्पगत प्रयोग हुआ है। अतएव उनके उपन्यासों में स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, सुन्दर, सरस, सजीव, वैयक्तिक, चरित्र–व्यजक कथोपकथन उपलब्ध होते हैं। वह निरन्तर प्रयत्न करते हैं कि उनके कथोपकथनों में नवीनता, मौलिकता तथा सुन्दरता की सृष्टि हो। फलतः उनके कथासाहित्य में शिल्पगत सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।

जैनेन्द्र के 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' तथा 'जयवर्धन' उपन्यासों में कथोपकथन का पर्याप्त और कलात्मक प्रयोग परिलक्षित होता है। जैनेन्द्र जी ने चरित्र–चित्रण की दृष्टि से कथोपकथन का भरपूर प्रयोग किया है। एक आलोचक का तो यहाँ तक मत है कि जैनेन्द्र ने कथोपकथन से वातावरण–निर्माण का कार्य भी लिया है।[75] यद्यपि उन्होंने इसका एक भी उदाहरण नहीं दिया। जैनेन्द्र ने वातावरण–निर्माण के लिए कथोपकथन का प्रयोग प्रायः नहीं किया है।

यद्यपि जैनेन्द्र के कथासाहित्य में कथानक स्वल्प है तथापि उसके विकास के लिए संवादों का प्रयोग किया गया है। 'त्यागपत्र' का अधिकांश कथा–विकास संवादों से हुआ है। लेखक प्रमोद को मृणाल के सामने रख देता है, तथा उनके पारस्परिक वार्तालाप से कथा विकसित हो जाती है।

निम्नलिखित संवाद मात्र सूचनात्मक हैं –

---

75 डॉ० घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृष्ठ–132

'मै वहाॅ गया था..................

'धीमे से बोली...............'मैं जानती थी, तुम जाओगे।'

'अस्पताल में भी गया था। तुमने मुझे नहीं लिखा।'

'क्या लिखती ?'

'अच्छा, मुन्नी कहाॅ है?'

'मर गई।'

'मर गई !...................कब मर गई ?'

'दस की होकर मर गई । रोग से मरी, कुछ भूख से मरी ?'

'......................मिशन वाले उसे माँगते थे। दे क्यों नहीं दिया ?'

'.................यहाँ कैसे आयी ?'

'...............लटकते–भटकते ही आयी।'[76]

'अनन्तर' का एक सूचनात्मक संवाद इस प्रकार है – मैंने पूछा... .....'आपको कोई अपरा का पत्र मिला है? गुरू ने कहा........... चेक उसने मेरे पास ही भेजे थे। उसके साथ के पत्र के अलावा तो और कोई नहीं मिला।"

"आपके पास अब उसका कितना रूपया है – बैंक में जमा के अलावा ?

'होगा तीन–एक हजार। क्यों?'

'अहमदाबाद से अपने साथ वह कुछ पैसा ले गयी थी?'

"नहीं उल्टे दे गयी थी।"[77]

---

76 जैनेन्द्र कुमार – त्याग पत्र, पृष्ठ–84–85
77. जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 141

संवादों से चरित्र अभिव्यक्त होता है। व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ संवादों की शब्दावली, शब्द चयन, उनके कहने के ढंग से स्पष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार के संवाद अन्य पात्रों के विषय में टिप्पणी देकर उसका चरित्र विकास करते हैं। बिहारी से वार्तालाप करते समय कट्टो के संवादों से अडिग आत्म विश्वास टपकता हैं।[78] वह बिहारी से कहती है कि 'तुम दिल्ली से व्यर्थ आये हो, सत्यधन के विवाह को पक्की नहीं कर सकोगे'। कट्टो के संवादों में सरलता तथा सत्यधन के संवादों में वक्रता लक्षित होती है। 'सुनीता' में हरि प्रसन्न के कथन में सहानुभूति तथा समर्पण की प्रवृत्ति है। श्रीकान्त –'नहीं –नहीं अपने पसन्द की चीज बतलाओ...........नहीं–नहीं जी, यह सब भी कोई बात होती है कि सब अच्छा लगता है.........रोज क्या खाया करते हो, जल्दी करो जी[79]........हरि, माफ करना, देर हो गई..... .. ..बात यह है घर में कोई नौकर नहीं है.... ।[80] हरिप्रसन्न ने कुछ दृढ़ पड़कर कहा, 'मैं अन्न नहीं खाया करता हूँ.......श्रीकान्त अन्न मैं खाया तो नहीं है......लेकिन।[81] हरिप्रसन्न टहलते–टहलते रुक गया। उसने अप्रसन्नता से कहा–नौकर नहीं है?[82] नौकर क्यों नहीं है? 'हरि प्रसन्न सुनीता को जंगल में ले जाना चाहता है और इसके लिए सुनीता को तर्कों से परास्त करना चाहता है।[83]

जैनेन्द्र के संवाद सामान्यतः पात्रों के अनुकूल हैं। संवाद पात्रों के पद तथा व्यक्तित्व के अनुरूप हैं। 'व्यतीत' में बुढ़िया के संवाद अनिता तथा जयन्त के संवादों से भिन्न हैं। उसके तर्क बड़े सीधे–साधे तथा ग्रामीण हैं।[84]

---

78 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 74
79 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 40–41
80 वही, पृष्ठ – 47
81 वही, पृष्ठ – 47
82 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 47
83 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 201–203
84 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 36

ये कथोपकथन पात्रों के अन्तः सम्बन्धों तथा परिचय की प्रगाढ़ता के अनुसार भिन्न हैं। प्रमोद और बुआ के वार्तालाप, प्रमोद–कोयले वाले अथवा मृणाल–कोयले वाले के वार्तालाप से भिन्न हैं। 'जयवर्धन' के संवादों में चाहे वह इला के साथ है या हूस्टन के साथ अथवा आचार्य के साथ, उसकी दार्शनिक प्रकृति का परिचय मिलता है। जैनेन्द्र की कहानियों में तथा उपन्यासों के संवादो में विचार–प्रतिपादन, तर्क–वितर्क तथा चिन्तन की प्रधानता है – जैनेन्द्र के पात्र प्रायः प्रतिभासम्पन्न सुशिक्षित तथा अधीत हैं। 'मुक्तिबोध' में भी नीलिमा पिता–पुत्र के सम्बन्धों तथा दायित्व को लेकर अपना कथन इतना दीर्घ कर लेती है कि सहाय को कहना पड़ता है–खासा लेक्चर था[85] दर्शन से भरे यह संवाद अत्यन्त असाधारण तथा रहस्यमय लगते हैं × × × × ×..... अच्छा हुआ आप आ गए। सुनिये न अब कुछ मेरा है न उनका है। सब जगन्नाथ जी का है। जगन्नाथ के दरबार में अनबन क्या?[86]

किंचित् हँसकर जितेन ने कहा–––नहीं, मरना किसको नहीं है? क्या सबके मरने का पाप हमेशा भगवान को ही उठाते रहना होगा? तुम्हारे उस भगवान की हमें भी कभी सहायता करनी चाहिए––– ।[87]

दर्शन के सिद्धान्तों की ऊहा हरि प्रसन्न, मृणाल, कल्याणी, जयवर्धन, सहाय और प्रसाद के कथनों में निरन्तर पायी जाती है। प्रमोद के दीर्घ स्वगत भाषणों में भी चिन्तन को बोझिलता है। इसी चिन्तन प्रधानता को व्यक्त करने के लिए संवादों में गतिरोध का समावेश किया गया है। संवाद बीच–बीच में टूटे हुए हैं तथा एक–एक कर आगे बढ़ते है। मानो पात्र सोच–सोच कर बोल रहे हों

---

85. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ–136
86. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ–32
87. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ–29

अथवा उनके मानस के भँवर से कथन लहरों के धक्कों से आगे बढते हों। पात्र कई बार स्वयं प्रश्न करता है तथा स्वयं उत्तर देता है अथवा कथन में एक साथ कई प्रश्न करके झडी लगा देता है। जैनेन्द्र संवादों को स्फुट, अधखुले तथा अपूर्ण रखकर उनमें अपार व्यंजना भर देते हैं । कई स्थलों पर अन्तराल तथा मौन से भी कार्य लिया गया है । मौन के रूप में अन्तराल को संवादों में लिया जाय या नहीं–इस पर मतभेद हो सकता है, परन्तु उन्हें संवादों का एक भाग मानना उचित है, क्योंकि वह दो पात्रों के कथोपकथन के बीच आए हैं। पात्र की स्थिति वहाँ है मात्र वह बोलता नहीं, कभी–कभी मौन भी मुखर होता है। ऐसा मौन भी उद्धरण चिन्हों में दिया गया है । जिससे लक्षित होता है कि लेखक उसे संवाद में सम्मिलित करना चाहता है। कुछ संवाद ऐसे भी हैं जिनमें सन्दर्भ की प्रतीति के विशेष में अर्थ गाम्भीर्य आ जाता है। कहीं–कहीं ये संवाद अत्यन्त असाधारण हैं परन्तु सन्दर्भ से जुड़कर चमत्कारिक अर्थ देते हैं। सुनीता, सत्या, श्रीकान्त तथा हरि प्रसन्न सिनेमा हाल में हैं। हरिप्रसन्न पानी लेकर आता है, श्रीकान्त को पानी की आवश्यकता नहीं है। पानी सत्या और सुनीता को चाहिए क्योंकि वह प्यासी हैं। सुनीता कहती है———हरि बाबू पानी लाए हो? लेकिन सर्दी में क्या पानी से खातिर होगी? सत्या पानी पी लेती है, पर नाक–भौं सिकोड़कर कहती है, हां जीजी! पर जीजी, पानी कुछ खारा था, मानो वह पानी सत्या के अनुकूल नहीं और केवल सुनीता के लिए हो। हरि प्रसन्न सुनीता की उपेक्षा से किंचित् खिन्न होकर पूछता है–तो इसे मैं फेक दूँ? फेंक क्यों दोगे? सुनीता हाथ बढ़ाकर बोली लाओ मुझे दे दो, नहीं–नहीं मैं भूल गयी थी, मुझे प्यास है।[88] मानो सुनीता को एकाएक याद आ जाता हो कि पानी तिरस्कार योग्य न हो जाय और उसे प्यास है । आरंभ में, सर्दी में पानी से क्या खातिर होगी, का सन्दर्भ सुनीता की स्थिति से जुड़ा

---

88 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ–79–80

हुआ है। जहां पति के रूप मे ही श्रीकान्त का उस पर अधिकार है तथा वैसी स्थिति में वह पानी ग्रहण करने में असमर्थ है। इसी प्रकार

'सुनीता' में हरि प्रसन्न के प्रथम गृह प्रवेश के समय श्रीकान्त के कथन–'हरि चले आओ, अभी तो वह कोना बचा है। ठहरो–जाती कहॉ हो––––और यह हरि प्रसन्न है' तथा सुनीता का कथन–'भला देखो इन्हें'[89] भी प्रसंग–सम्बद्धता से गहन अर्थ ग्रहण कर लेते हैं।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में जहाँ लम्बे कृत्रिम संवाद उपलब्ध हैं, वहॉ स्वाभाविक, सहज, बात–चीत का आत्मीय संवाद भी है। एक ही संवाद में बिन्दु समूह के द्वारा चलती बात को अपूर्ण छोड़कर सहसा दूसरी और फिर तीसरी बात भर दी गयी है। जैसे प्रायः हम दैनिक जीवन में कहते हैं तथा बोलते हैं । ए.....एक, दो....ओं...ओ देखो.....ठीक कहाँ बोलता है। यहाँ बोलता हूँ आगे–––––[90]

न रूढ़ अर्थ में भारतीय होगा–खड़ी क्यों हो, बैठ–जाओ ––जो काम हो––अच्छा–अच्छा । हो तो वनानि को आशा है–––––– ।[91]

जहाँ संवाद आकार में छोटे हैं वहाँ वे बिहारी के दोहे के समान 'नावक के तीर' हो गए हैं। उनमें विचित्र चमत्कार देखने को मिलता है।

निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–––––

मैने पूछा–बरतन माँजना जानते हो?

'हाँ।'

'कहार हो'

---

89 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ–38–39

90 जैनेन्द्र कुमार–परख, पृष्ठ–64

91 जैनेन्द्र कुमार–अनन्तर, पृष्ठ–73

'नहीं-----

'फिर?

'कहार हूँ।'

'क्या लोगे?'

'पढ़े-लिखे मालूम होते हो--

'नहीं------जी--

'कुछ नहीं पढ़े?

'चार जमात पढ़ा हूँ।[92]

किस भांति विद्युत सी गति से संवाद आगे बढ़ते हैं। इसके अलावा छोटे-छोटे संवाद शीघ्र समाप्त हो जाते हैं-----

'अच्छा तमारा----शायद मिलना हो।'

'तो मै जाऊं!'

'हाँ नमस्ते'

'नमस्ते।'[93]

संवादों में नाटकीयता की वृद्धि करने के लिए कोष्ठक में विभिन्न ध्वनियाँ, पात्र के हाव-भाव दे दिए गए हैं[94] यह प्रवृत्ति 'परख', 'सुनीता' तथा 'कल्याणी' में विशेष रूप से पाई जाती है। कहीं-कहीं लम्बे भाषणों में इन कोष्ठकों से विराम अवकाश भी मिला है। कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति आत्यन्तिकता को स्पर्श करने में कृत्रिम हो

---

92 जैनेन्द्र कुमार-सुखदा, पृष्ठ-14
93 जैनेन्द्र कुमार-सुनीता, पृष्ठ-53
94 जैनेन्द्र कुमार-सुनीता पृष्ठ-53

गयी है। 'परख' में कट्टो की माँ बेटे से बात करते समय सम्भवतः इतने अधिक बार बेटा सम्बोधन का प्रयोग करती है कि वहाँ पर कृत्रिमता आ जाती है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में कुछ ऐसे संवाद भी प्राप्त हैं जो साधारणतया हिन्दी कथा साहित्य में दुर्लभ हैं। ऐसा करके वे अपनी मौलिकता का परिचय देते हैं।

द्विमुखी संवाद

'सुनीता' में श्रीकान्त एक ही समय में एक ही संवाद में दो व्यक्तियों से बात करता है। संवाद इस प्रकार–

'अजी, सेर–भर तो लीजिए ही।'

'सेर, अच्छा सेर सही।' (मुड़कर), चल सत्या, हमारे साथ ही चल। आज तेरी पढ़ाई हुई कि नहीं?–––और वहीं से साईस को आवाज देकर बुलाया, कहाँ हो भाई, यह सब गाड़ी में रखो और देखो वह तांगा खड़ा है, उसका सामान भी गाड़ी मे रख लो। (मुड़कर) जीजा जी तागे वाले को कितने पैसे देने हैं।[95]

देशकाल तथा वातावरण निर्माण

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में देश–काल चित्रण व्यंग्य रूप में विद्यमान है। अनेक ऐसे प्रसंग तथा छिटफुट ब्यौरे जहाँ–तहाँ उपलब्ध हैं जो कथा साहित्य का समय तथा स्थान संकेतित करते हैं। 'सुनीता' में दिल्ली का 'पाँच लाख के शहर में, जहाँ वाइसराय भी रहता है–होना[96] तथा सुनीता–श्रीकान्त की फोटो पर 5/6/32 लिखा

95 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ–218
96 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ –28

होना[97] 'त्यागपत्र' में दुअन्नी, अठन्नी[98], 'कल्याणी' में चैरिटी हॉस्पिटल तथा महिलाओं के डेपुटेशन का मिलना,[99] 'सुखदा' में इवनिंग न्यूज[100] व्यतीत में ड्योढे दर्जे का सफर[101] 'जयवर्धन' में प्रेम गोष्ठी[102] 'अनन्तर' में हिप्पी लोग[103] आदि संकेत उस काल का बोध करा देते हैं– जिससे उपन्यास का कथानक सम्बन्धित है। 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' में दिल्ली के अतिरिक्त बम्बई, नैनीताल, अहमदाबाद तथा माउन्ट आबू नगर भी उल्लिखित हैं। 'परख' के कथानक में गॉव के वातावरण का उल्लेख है। परन्तु बाद के उपन्यासों 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' में आकर यह महानगरों, होटलों ट्रंक–काल्स, कैडलैक कारों तथा 'एयर कंडीशन कोच' का हो जाता है।

जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य में देशकाल की अपेक्षा वातावरण के निर्माण को अधिक ध्यान दिया है। पात्र तथा उनकी मनःस्थिति का सम्बन्ध व्यापक देशकाल की अपेक्षा तात्कालिक परिवेश तथा आस–पास फैली वस्तुओं तथा व्यक्तियों से अपेक्षाकृत अधिक निकट का रहता है। अतः कहीं–कहीं जैनेन्द्र के पात्र परिस्थितियों से जुड़े वातावरण का कुशल चित्रण कर देते हैं। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में विविध प्रकार के वातावरण मिलते हैं। वह वातावरण कहीं घरेलू जीवन से सम्बन्धित रसोइयों का है, कहीं अस्त–व्यस्त रहने वाले कुण्ठाग्रस्त पात्रों की कोठियों का है, तो कहीं मध्यवर्गीय सम्भ्रान्त सुशिक्षित व्यक्तियों के कमरों का है। जयन्त की कोठरी का वातावरण चित्रित करने के लिए लेखक विशद् आडम्बर नहीं रचता, केवल इतना लिखता है–'आगे कोठरी की दीवार है जो मैली है और धरती ऊबड़ खाबड़ है। मैंने दौडकर कुप्पी जलाई———वह झट खटोला लेकर

---

97 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ –46
98 जैनेन्द्र कुमार–त्यागपत्र, पृष्ठ –41
99 जैनेन्द्र कुमार–कल्याणी, पृष्ठ –21
100 जैनेन्द्र कुमार–सुखदा, पृष्ठ –28
101 जैनेन्द्र कुमार–व्यतीत, पृष्ठ –67
102 जैनेन्द्र कुमार–जयवर्धन, पृष्ठ –260
103 जैनेन्द्र कुमार–अनन्तर, पृष्ठ –133

बैठकर बोली।[104] जैनेन्द्र के कथा साहित्य में केवल बाह्य चित्रण ही नहीं मिलता, बल्कि वह बाह्य चित्रण को काटकर तुरन्त पात्र के चिन्तन–मनन या क्रिया–कलाप पर कूद जाना चाहता है। कश्मीर का सुन्दर वातावरण है जिसकी शोभा को चित्रित करने के लिए कई पृष्ठ रंगे जा सकते थे, परन्तु लेखक जैसे शीघ्रता में है, कश्मीर के दिन आनन्द से बीते, कहीं एक जगह नहीं रहना था–कश्मीर की सुषमा बिखरी थी। आज यहाँ, कल वहाँ, इसमें पता ही नहीं चला कि आनन्द नहीं है, जैसे लहरें हों और हम तैर रहे हों। सब था, लेकिन नीचे क्या मुझमें ग्रन्थि थी ?[105] यह उद्धरण लेखक की प्रवृत्तियों का परिचायक है। वातावरण के संक्षिप्त चित्रण की प्रवृत्ति के बावजूद जैनेन्द्र कहीं–कहीं इन चित्रों को पूर्ण बनाने हेतु प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं। ऐसा वातावरण–चित्रण भी बहुत नहीं हुआ है, केवल लेखक ने उसे सांगोपांग बनाने की चेष्टा की है। जहाँ पूर्व चर्चित चित्रण रूप–रेखात्मक है, वहीं इनमें मांसलता भरने की चेष्टा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जहाँ कथाकार कोठरी का क्षेत्रफल तक देता मिलता है–'कोठरी बारह वर्ग फीट से बड़ी न होगी। बाहर थोड़ी खुली जगह ही जहाँ धोती, अँगोछे सूख रहे थे। कमरे में एक ओर कपडे चिने थे। उनके पास ही एक–दो बक्स थे। उनके ऊपर बाँस टाँगकर कुछ काम के कपड़े लटका दिए गये थे। बुआ की पीठ की तरफ दो–एक टीन के आधे कनस्तर, दो चार हँड़िया और कुछ मिट्टी के सकोरे और टीन के डिब्बे थे। वहाँ पास कुछ पीतल, एल्यूमीनियम के बर्तन रखे थे और एक टीन की बाल्टी और पानी का घड़ा भरा रखा था, एक कोने में कोयले की बोरी आधी झुकी हुई खड़ी थी।'[106]

---

104 जेनेन्द्र कुमार–व्यतीत, पृष्ठ–15

105 वही, पृष्ठ–82

106. जैनेन्द्र कुमार–त्यागपत्र, पृष्ठ–54

लेखक ने शायद ही कोठरी में होने वाली किसी निजी वस्तु को छोडा हो, यह पृथक् बात है कि उस ढंग के मुहल्ले की कोठरी में उतनी ही चीजें हुआ करती थीं। इस प्रकार बाह्य वातावरण के चित्रण को भी जहॉ तक सम्भव बन पडा है, पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है, यथा—'विचित्र मुहल्ला था। वहॉ दिन शायद ही कभी होता हो। दिन में रात होती थी और रात में क्या होता पता नही। सटी—सटी कोठरियाँ थीं। वे कोठरियाँ ही दूकाने थीं और रात मे वे ही ख्वाबगाह। किसी पर सस्ती विसाहत की चीजें हैं तो किसी पर ताजी साग—भाजी और चुचके फल रखे हैं। कहीं नाई है, कहीं हाथ की मशीन लिए दर्जी बैठा अमरीकन तर्ज के कपड़े सी रहा है। यहॉ आसमान भी इकबाली बन जाता है और काल की गिनती रातों के हिसाब से होती है।'[107]

प्रकृति—चित्रण

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में वातावरण के रूप में प्रकृति—चित्रण का बहुत कम उपयोग है। इस सम्बन्ध में डॉ० रामरतन भटनागर का मत द्रष्टव्य है—'उनमें प्राकृतिक चित्रपटी का अभाव है। उनके अधिकांश उपन्यासों में हमें किसी प्राकृतिक दृश्य की पृष्ठिभूमि नहीं मिलती। वह तंग गलियों एवं नगर के गली—कूचों से बाहर नहीं जा पाते।'[108] कथाकार प्रकृति—चित्रण को अपने शिल्प का आधार बनाकर कथानक और पात्रों का परिवेशात्मक औचित्य प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार का एक चित्र 'जयवर्धन' में उपलब्ध है। जय और इला समुद्र तट पर मिलते हैं। पृष्ठभूमि में वातावरण का चित्रण इस प्रकार है—

---

107 वही, पृष्ठ—56

108 डॉ० रामरतन भट्नागर – जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ – 46

'सागर का तट था। संन्ध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरों पर लहरें लेकर सागर आता और पछाड खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर में साथ..........'[109] उधर समुद्र में लहरों का उद्वेलन है, उधर जय और इला भावार्द्र होकर एक दूसरे को पाना चाहते हैं। जय पुकारता है–इला! और इला महसूस करती है–'मेरे समूचेपन में से बोल उठा–लो, लो, लो मुझे लो..........'[110] कहीं–कहीं वातावरण का सम्बन्ध पात्र की आन्तरिक मनोदशा से भी सम्बद्ध है। एक ओर चिन्तन–मग्न पात्र है और दूसरी ओर प्रकृति का फैला आँचल। ऐसे प्रसंगों में प्रायः प्रकृति के दूरस्थ चित्रण को लिया गया है, जिसकी पात्र की मनः स्थिति से संगति बैठ जाती है। सुखदा अतीत के गर्भ से निकलकर अपनी कहानी पाठकों को सुनाना अभी आरम्भ ही करती है कि उसका मन कैसा होने लगता है। उसकी दृष्टि दूर फैलाव विस्तार को देखती–देखती एक प्राकृतिक चित्र बना देती है जहॉ धरती ढल गई है, पार मैदान बिछा है...........पूरी सी मकानों की बिन्दिया–हरियाली इकट्ठी हो गयी है...........रंग मटमैला...........एक–दो पतली सफेद लकीर जो नदियों के निशान...........धुँधली रेखा से सिमट कर समाप्त हो जाता है। वही हमारा क्षितिज है।[111]

प्रकृति के आश्रय बिना भी कलाकार ऐसे वातावरण का निर्माण करने में सक्षम है जिसमें पात्रों की खिन्नता, दुःख, पीड़ा जैसे भाव व्यक्त हो जाते हैं। 'परख' में ऐसे छोटे–छोटे चित्र पर्याप्त संख्या में हैं। कट्टो, सत्यधन तथा बिहारी के वार्तालाप में जब–जब नीरवता आ जाती है, कथाकार भी तदनुसार वातावरण का चित्रण कर देता है। ऐसी स्थिति का वातावरण द्रष्टव्य है–

---

109. जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 128
110 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 128
111 जेनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 4

'सुन्न सन्नाटा रहा। किसी का बोल नहीं आया। तीनों के मन से न जाने क्या–क्या निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूप से उस कमरे की शून्यता में व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरे में इन तीनों ही के जी को घोंटने लगा।'[112] नीरवता के वातावरण को साकार करने में कथाकार का शिल्प यहाँ बेजोड़ है।

भाषा–शैली

कथाकार जैनेन्द्र ने परम्परागत शैली से दूर हटकर नवीन शैली का सृजन किया है। उन्होंने शिल्प के पुराने बन्धनों को तोड़कर अपनी वस्तु उद्देश्य तथा मूक संवेदना के अनुरूप निजी भाषा–शैली का आविष्कार किया है। उनकी भाषा शैली उनकी करुणा की मूल संवेदना से उपयुक्त रूप से सम्बद्ध है, अतः उसमें अपना निजी वैशिष्ट्य लक्षित होता है। अपनी भाषा शैली द्वारा वे वस्तु, पात्र–चयन तथा उनका चित्रण इस ढ़ंग से करते हैं कि उनकी अन्तिम परिणति एक विषादमय वातावरण में होती है। जैनेन्द्र अपने संवेदना–बिम्ब की कुशल अभिव्यक्ति के लिए संक्षिप्त तथा तीखी शैली तथा सरल किन्तु वक्र, क्षिप्र भाषा को प्रयोग में लाते हैं। जैनेन्द्र की भाषा शैली का शिल्प विभिन्न तत्वों से निर्मित हुआ है, अतः शैली तथा भाषा दोनों का विवेचन अपेक्षित है।

कथाकार जैनेन्द्र ने अपने साहित्य में व्यास, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा समाज, परोक्ष और नाटकीय दोनों कोटियों की शैलियों का प्रयोग किया है। 'परख' में विवरण देने के लिए प्रत्यक्ष या इतिहास शैली का आश्रय लिया है। 'परख' में लेखक सत्यधन का परिचय देने में अपनी ओर प्रत्यक्ष तथा पात्र की ओर इतिहास का आश्रय लेता है। सत्यधन का परिचय कथाकार स्वयं देता है तथा उसकी विवेचना

112. जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 62

विस्तार से करता है। एक अन्य वकील मुंशी होशियार बहादुर के विषय में कथाकार पूरे ब्योरे देता हुआ लिखता है। मुंशी होशियार बहादुर जिले के नामी–निरामी वकील थे। आमदनी खूब थी। दबदबा (?) भी खूब था[113]

व्यास, प्रत्यक्ष तथा इतिहास–शैली के अन्तर्गत वे पाठक सम्बोधन के भी शिकार होते हैं। 'परख' में तो अनेक स्थलों पर कथाकार पाठक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित करता है। 'परख' में सत्यधन हमारे 'महाशय'[114] हैं। 'सुनीता' में यह प्रवृत्ति विद्यमान है, जब सत्या के विषय में लेखक कहता है कि अठारह वर्ष की लड़की को आप अनजान मत जानिये।[115] यह प्रवृत्ति बहुत आगे तक 'विवर्त' में भी उपलब्ध होती है। जब लेखक पाठकों से कहता है——आइए एक तमाशा दिखाएँ।[116] प्रधानतया जैनेन्द्र की शैली में मितव्ययिता विद्यमान है जिसमें संक्षिप्तता, सांकेतिकता तथा व्यंजना सम्मिलित है। कथाकार को बहुत विवरण विस्तार तथा खोलकर बात कहना पसन्द नहीं है। वह बात को संक्षेप में कहकर सन्तुष्ट हो जाता है। संक्षिप्तता की प्रवृत्ति ने कथानक–कथन, पात्रों के जीवन–चरित्र उनके रूप चित्रण, संवाद, वातावरण के रेखन, वाक्य–रचना तथा शब्दों के रूप–निर्माण का एक प्रसंग प्रस्तुत किया है———'सार संक्षेप यह है मित्र के पुत्र बैरिस्टर नरेशचन्द्र वहाँ आये, परिवार की दो महिलाएं वहाँ आयीं। दो रोज रहीं और प्रसन्न लौटे। फिर दोनों ओर से तैयारियाँ हुई और जल्दी ही विवाह हो गया।[117] ऐसा प्रतीत होता है कि स्थूल चित्रण की ओर कथाकार बिलकुल रुचि नहीं रखता है।

---

113. जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 7
114. वही, पृष्ठ – 8
115. जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 206
116. जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 8
117 वही, पृष्ठ – 19

चरित्रों के शील–निरूपण तथा रूप–चित्रण में मितव्ययिता का सुखद परिणाम यह हुआ कि जैनेन्द्र जी के साहित्य में हमें पात्र आकर्षित करते हैं। एक ऐसा चित्र प्रस्तुत है–'बडी प्यारी दिखती है तमारा। पैंतीस बरस की होगी। ब्याह नहीं किया है, आर्टिस्ट है।[118]

जैनेन्द्र का काम संक्षिप्तता द्वारा इसलिए चल जाता है क्योंकि इस संक्षिप्तता में व्यंजना के प्राण हैं। वह थोडा कह कर भी बहुत कुछ कह जाते हैं, कल्याणी के समान वे 'चार में तीन हिस्से बात की झनक ही रखते हैं और समझते हैं कि समझने को काफी हो गया। इस व्यंजना शक्ति को आलोचकों ने अत्यंत शक्तिशाली तथा आकर्षण से पूर्ण माना है।[119]

जैनेन्द्र बहुत सी बात संकेत से भी कह देते हैं, यह उनकी व्यक्तिगत रुचि है। कथाकार ने सांकेतिक शैली का विशेष रूप से वहाँ प्रयोग किया है, जहाँ वे गोपनीय बात कहना चाहते हैं। मृणाल और शीला के भाई के प्रेम–सम्बन्धों का आभास–सांकेतिक शैली में दिया गया है। लेखक इस कला में दक्ष है। प्रमोद के द्वारा पत्र का माई डियर (My dear) दिखाकर पाठकों को वह उद्घाटन कर देता है, कि वह प्रेम–पत्र था।

जैनेन्द्र चिन्तनशील कलाकार हैं। वह कुछ अबूझ तथा वास्तविकता से परे को पकड़ना चाहते हैं। कथा साहित्य के सन्दर्भ में वास्तव को सत्य की सीमा पर स्वीकार नहीं करती तथा सत्य को वास्तव से परे भी मानकर चलती है। डॉ० मक्खन लाल शर्मा के शब्दों में–'प्रतीक में इतनी गहन व्यंजना–संकुलता एवं देशकाल, परिस्थिति निरपेक्ष सार्थकता रहती है'–[120] जैनेन्द्र अपनी प्रतीक शैली के द्वारा बहुत गूढ़ बात कह जाते हैं तथा साफ बचे भी रहते हैं। जैनेन्द्र की

---

118 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 28
119. डॉ० राम रतन भटनागर – साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ – 173

शैली में एक विचित्र रहस्य तथा भेद पलता है। यह रहस्य तत्व सांकेतिकता, व्यंजना तथा प्रतीकत्व से आया है। जैनेन्द्र के कथनों में कहीं–कहीं गूढ़ आशय आ जाता है। दर्शन के प्रसंगों में वे विशिष्ट प्रकार के चिन्तन की बात करने लगते हैं जो साधारण पाठक की समझ में नहीं आती।

अनिश्चयात्मकता

शैली को रहस्यमय बनाने का एक उपादान अनिश्चयात्मकता है। कथाकार कहीं भी निश्चित सुस्पष्ट कुछ नहीं कहता है। स्थानों के बारे में अमुक से काम चला देता है। कई बार अपनी स्मरण शक्ति के धोखे से त्रस्त, वह कहता है 'पता नहीं यह था या वह' अथवा याद नहीं आता का सहारा लेता है। बिहारी सत्यधन को लिखता है कि वह लोग अमुक दिन कश्मीर जा रहे हैं।[121] प्रमोद को अपनी बुआ के बारे में ठीक याद नहीं कि वह नवीं क्लास में थी या दसवीं में। अपनी आयु भी वह अनुमानतः ही बताता है कि बारह बरस की हो रही होगी।[122]

जैनेन्द्र चिन्तनशील लेखक हैं। वे सोचते–सोचते लिखते हैं और लिखते–लिखते सोचते हैं, जिसके कारण जैनेन्द्र की शैली में तर्क–वितर्क तथा प्रश्नाकुलता का वैशिष्ट्य आ गया है, चाहे स्वयं लेखक वस्तु कथन कर रहा हो या किसी पात्र का ब्यौरा दे रहा हो अथवा नाटकीय विधि के अन्तर्गत, पात्र स्वयं सोच रहा हो अथवा एकाधिक पात्रों में कहीं वार्तालाप हो, सब स्थानों पर हम इनकी दृष्टि सप्रश्न पाते हैं, मानों वह किसी अंतिम निर्णय पर पहुँच में असमर्थ हो अथवा प्रश्नों के माध्यम से पाठक के सामने निर्णय लेने की दुविधा

---

120 डॉ० मक्खन लाल शर्मा – हिन्दी कहानी . रचना प्रक्रिया का संदर्भ (लेखक) संचेतना, मार्च, 1970, पृष्ठ – 171–172

121 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 24

122. जेनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 13

को प्रस्तुत करते हैं। दुविधात्मक स्थिति में पड़कर सत्यधन सोचता है कि वह अपने जीवन की धुरी को किस दिशा में गतिशील रखे। 'मुक्तिबोध' मे राजनैतिक नेता के मस्तिष्क में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व में अनेक प्रश्न हैं। सत्यधन के मन में अनेक तर्क–वितर्क के प्रश्न फूट पडे हैं। 'यह क्या हुआ ?..........मैं कैसे सामने पड गया ? बिहारी क्या सोचेंगे? ....आखिर मैंने क्या कहा ? यही कि वह मुझे स्वीकार करती या नहीं ?........तो क्या मैं उसे अपनाऊँगा ? क्या अपनाना होगा? संवादों तक में प्रश्नों की आवृत्ति है।

.........कट्टो ने पूछा –जाऊँ ?

'जाओ ।'

'जाऊँ'

'जाओ'

'जाऊँ'

'जाओ'। वह चल गई[123]

तुलनात्मक शैली

जैनेन्द्र अपनी शैली के शिल्प–निर्माण में तुलना का पर्याप्त सहारा लेते हैं। यह तुलना सम भी है तथा विषम भी। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "जीवन के दो पहलुओं को पहले विरोध में रखकर फिर विरोध के भीतर से एक समाधान निकालने की शैली उनके सभी उपन्यासों में मिलती है।[124] जैनेन्द्र जी की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति के कारण ही उनके कथा साहित्य में नाटकीय

---

123. जेनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 47
124 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 43

आकर्षण की योजना हो गयी है। जीवन में घटित होने वाले दो विरोधी आदर्शों को उन्होंने दो पुरुष पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है और नारी–पात्रों द्वारा वे चुनाव का कार्य लेते हैं। इस प्रकार जैनेन्द्र जी के उपन्यास और कहानियों में नारी पात्र तो एक ही है पर पुरुष–पात्र प्रायः एक या दो होते है, एक नारी पात्र और दो पुरुष–पात्रों का संयोग अत्यन्त नाटकीय स्थिति है। इस शैली को जैनेन्द्र जी ने बहुत अपनाया है।

समर्थ–भाषा

शैली के समान जैनेन्द्र की भाषा अत्यन्त समर्थ है। वे विचारों के ही नहीं लेखनी के भी धनी हैं। उनकी भाषा भावानुमार्मिक है। वे पात्रों के मन के अन्तर्द्वन्दों, भीतर घुमड़ते भावों को अभिव्यक्ति देने में पूर्ण समर्थ हैं। मिस्टर सहाय के मन में अबूझ विस्मय भाव है जिसे भाषा ने सफलता से व्यक्त किया है'.................. मेरे लिए वह अनुभव था। लेकिन वह सब तत्व दर्शन जाने मेरे भीतर कहाँ सिमट कर रह गया था। मुझे विस्मय हुआ जब देखा कि मेरा मन भर आ रहा है।...... विधान निर्मम होता है, विधाता भी निर्मम होता है। उसके तले हम सबको भी ममताहीन और दृढ़ होकर चलना है.......यह सारा तर्कनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर सिर नहीं उठा सका और मैं अवसन्न रह गया, यह अनुभव करके कि........... ।[125]

जैनेन्द्र के भाषा की रूपायन शक्ति भी दार्शनिक है। जैनेन्द्र अपनी भाषा–सामर्थ्य से किसी भी भाव, दृश्य, वस्तु या स्थिति को हमारे सम्मुख सहज ही साकार कर देते हैं। कट्टो की आँखों का चित्रण इस प्रकार है.....'.आँखे आंसुओं से खूब धोई गई हैं और फूल आई हैं जैसे फूली–फली (?) धुली कमल की दो लाल पंखुड़ियाँ हों,

---

125. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 16–17

लेकिन उनके सारे भेद और सारे स्नेह को (?) पलकें मजबूती से ढके हुए हैं।[126]

भाषा की रूपायन क्षमता बनाने में जैनेन्द्र की पैनी दृष्टि तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण भी योग देते हैं। वे वातावरण, वस्तु या व्यक्ति की छोटी सी छोटी बात भी अंकित कर देते हैं। 'सुखदा' में कान्त–सुखदा रात भर नयीं बोलते, प्रातः काल सुखदा कमरे में जाती है, कमरे के वर्णन में लेखक यह कहना नहीं भूलता––'बराबर तिपाई पर सिगरेट का टुकड़ा धुँआ देते–देते गद्दे पर रखा बुझ गया था।[127]

जैनेन्द्र की भाषा की रूपायन–शक्ति का रहस्य उनकी बिम्व योजना है। मूल संवेदना–बिम्ब को साकार करने के लिए ही भाषा का माध्यम ग्रहण किया जाता है। जैनेन्द्र अनेक कौशलों का प्रयोग कर इन बिम्बों को सामने लाते हैं। आहत अभिमान से झुँझलाए व्यक्ति के लिए कहा है 'उसका मन अन्दर ही अन्दर झुंझला रहा था जैसे उसे हार मिली हो, उसकी बुद्धि के फन को छेड़ दिया गया हो।[128]

कथाकार जैनेन्द्र कहीं–कहीं चाक्षुष, सुनने तथा सम्पर्क संवेदनाओं के माध्यम से अपनी भाषा की क्षमता का परिचय देते हैं। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है– 'रेशमी साड़ी की धानी आभा ही काँपती हुई झलमल, झलमल हरि प्रसन्न की आँखों में रह गयी और उसके कानों में साड़ी की तरह पर्तों को छूकर जाती-हुई समीर की सरसराहट भरने लगी। मानो कुछ हौले–हौले बज रहा हो। कुछ भीना–भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिगो रहा हो।[129]

---

126 जेनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 43
127. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 44
128 जेनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 111
129 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 67

जैनेन्द्र की भाषा सरल वक्रता सिद्ध है। सरल, छोटे–छोटे वाक्यों में वह गहरी बात कह जाते हैं। भाषा पाठक को मूक रूप से अनेक सुझाव देती है। एक विशिष्ट दिन के पश्चात् मृणाल प्रमोद से स्वयं को बुआ कहने को मना करते हुए कहती है–'मैं बुआ हूँ। बुआ मुझे अच्छा नहीं लगता। प्रमोद तू मुझे जीजी कहा कर जीजी! शीला मुझे जीजी कहती है...........मैं नहीं बुआ होना चाहती। बुआ छीः ! देख चिड़िया कितनी ऊँची उड़ जाती है मैं चिड़िया होना चाहती हूँ।[130]

जैनेन्द्र की भाषा बड़ी सरल, सीधी–सादी है। यद्यपि उनमें चिन्तन का भार वहन करने की अनुपम शक्ति है। जैनेन्द्र ने भाषा को कठिन नहीं होने दिया है। वक्ता बात को कहकर पुनः उसे संशोधित करता है, जैसा हम प्रायः दैनिक जीवन में करते हैं। कल्याणी की कहानी कहते हुए वकील साहब कहते है–'हाल की तो बात है। ऐसा लगता है जैसे कल की हो।.........न सही कल की पर दो ढाई बरस से अधिक नहीं हुए।[131] गहन से गहन चिन्तन में भी भाषा सरल, अक्लिष्ट, सुगम रही–यहाँ किसी को यह कहने का लोभ नहीं है कि वह सच्चरित्र है। यहाँ सच्चरित्र के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं माना जाता। दुर्जनता मानो कीमती है। यहाँ उसी हिसाब से मानव की घट–बढ़ की है। कलई वाला सदाचार यहाँ खुलकर उधड़ रहता है। यहॉ खरा कंचन ही टिक सकता है........कंचन की माँग नहीं है। पीतल से परहेजी नहीं है।[132]

वाक्य रचना

वाक्य रचना का शैली से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। वे प्रायः सरल वाक्यों का प्रयोग करते हैं क्योंकि उनका शिल्प सूक्ष्म आन्तरिक

---

130 जेनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 15
131 जनन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 3
132 जेनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 93

एवं व्यंजक है। जैनेन्द्र प्रायः छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं। जयवर्धन को देखा! मिला! बात हुई! व्यक्ति नहीं, वह घटना है। वह दो व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं हैं कहीं भीड़ खो भी सकती है।[133] जैनेन्द्र जी के वाक्य रचना शैली के अनुरूप तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं।

शब्द भण्डार

जैनेन्द्र भाषा को स्वयं में कुछ न मानकर भावों की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। इसलिए उन्होंने शब्द चयन में भाषा की कृत्रिम सीमा का बन्धन नहीं माना। उनकी भाषा में तत्सम्, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्द उपलब्ध हैं। जहाँ अंग्रेजी में स्कीम[134] म्यूजियम[135], चैरिटी हॉस्पिटल[136], डेप्युटेशन[137], स्टडी[138] जैसे तथा उर्दू में 'कुबूल'[139], गनीमत[140], माफिक[141], फर्ज[142], अर्ज[143] जैसे सुपरिचित शब्द आए है, जिन्हें साधारणतया समझा जा सकता है। वही अक्सेट[144], इकनामिक डिपेनडेंस[145], आओसिल[146], ट्रान्जिट[147], तथा अकीदे[148], फाहिश[149],

133 जेनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 17
134 जेनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 11
135 जेनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 11
136 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 21
137 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 21
138. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 9
139. जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 88
140. जेनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 20
141. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 20
142 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 47
143 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 48
144 जेनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 8
145 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 86
146. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 32
147. जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 95
148 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 40
149 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 70

मुल्तवी[150], मुस्तहक[151], आजिज[152], मुतफर्रक[153] जैसे अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्द भी आए हैं जिन्हें साधरणातः उस भाषा का ज्ञान न रखने वाला समझ नहीं सकता। अंग्रेजी के शब्द कहीं रोमन लिपि बिना हिन्दी अर्थ कोष्ठक में दिये[154] लिये गए है, कही उनके रोमन लिपि के रूप के साथ हिन्दी पर्याय भी दे दिया गया है।[155]

भाषा के शब्द प्रयोगों में एकरूपता का अभाव है। उनका रूप कहीं एक प्रकार है कहीं दूसरे प्रकार का। मोहर[156] मुहर[157] नाराजगी[158] नाराजी[159] गिरस्ती[160] गिरिस्ती[161] गिरस्तिन[162] गृहस्थ[163] गृहस्थी[164] गृहिस्थिनी[165] ढारस[166] ढाढस[167] कुछ ऐसे ही रूप हैं। डॉ रामचन्द्र तिवारी जैनेन्द्र की भाषा के विषय में निम्नलिखित विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं।

जैनेन्द्र का सोचने का अपना ढंग हैं अपना व्यक्तित्व है। उनकी भाषा शैली उनके इस निजीपन का प्रतीक है। उनके गद्य में चिन्तन और चिन्तन प्रक्रिया दोनों ही साकार हुए हैं। इस दृष्टि से समूचे हिन्दी साहित्य में उनका गद्य अप्रतिम है।[168]

---

150 जेनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ–51
151 जेनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ–117
152 जनन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 141
153 जेनन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 47
154 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–60
155 जैनेन्द्र कुमार – 'परख, पृष्ठ–113
156 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–7
157 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–7
158 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–28
159 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–65
160 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–50
161 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–42
162 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–12
163 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–26
164 जेनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–129
165 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ–101
166 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–1
167 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ–58
168 डॉ० रामचन्द्र तिवारी – हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ–445

उद्देश्य–प्रतिफलन–शिल्प

जैनेन्द्र उद्देश्यवादी कलाकार हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उन्हें आदर्शवादी कलाकार नहीं माना[169] वरन् भावुक तथा कल्पना जीवी लेखक कहा है। डॉ० नगेन्द्र ने अपने लेख में कथाकारों की एक सभा आयोजित की थी जिसमें जैनेन्द्र कहते हैं–'मेरे मन में कुछ है जो बाहर आना चाहता है – और उसको कहने के लिए उपन्यास लिख बैठता हूँ। वह है जीवन की अखण्डता की भावना। मुझे अनुभव होता है कि जीवन और जगत् जैसे मूलतः एक अखण्ड तत्व है। आज इसकी अखण्डता खण्डित हुई सी लगती है, दरअसल है नहीं आज मानव इसी भ्रम में पड़कर भटक रहा है।...........जीवन की कुन्जी खो गई है और कुन्जी है यही अखण्डता का मानव।......इसे ढूंढ़ने का साधन है केवल प्रेम, प्रेम या अहिंसा। प्रेम या अहिंसा का अर्थ है, दूसरे के लिए अपने को पीड़ा देना–पीड़ा में ही परमात्मा बसता है। मेरे उपन्यास आत्मपीड़न के साधन हैं।.........पाठक को जितनी आत्मपीड़न की प्रेरणा देते हैं, जिनका उसके हृदय में प्रेम पैदा करके जीवन की अखण्डता का अनुभव कराते हैं उतने ही सफल कहे जा सकते हैं।[170]

उद्देश्य 'प्रति फलन' पतन की दृष्टि से लेखक का कथावस्तु चयन उल्लेखनीय है। वह इसमें सूझ बूझ से काम लेता है। कथानक की अंतिम परिणति भी लेखक की उद्देश्यवादी दृष्टि के अनुरूप हुई है। 'त्यागपत्र' का अंत जज रामदयाल के रूप में कथाकार के दृष्टिकोण का परिचायक है। त्यागपत्र पर सही करना समाज के मान्यताओं तथा आदर्शों के खोखलेपन का परिचायक है, मानो जज राम दयाल सहमत हैं कि समाज में वह रहता है अथवा जिसका वह

---

169 आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ – 209
170 डॉ० नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ – 299–300

प्रतिनिधि है वह आततायी है और मृणाल जैसी स्त्रियों की दशा के लिए उत्तरदायी है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में पत्रों का बहुत अधिक प्रयोग है। कहीं–कहीं पत्रों ने 'उपन्यासकार' के विविध उद्‌देश्यों में से कतिपय की अभिव्यक्ति की है। सत्यधन को लिखे पत्र में घरेलू बातों के अतिरिक्त भगवद्‌दयाल बहुत से विचारात्मक सूत्र भी देते हैं। इसमें सामाजिक दायित्वों का उल्लेख है। जैनेन्द्र जी के बाद के साहित्य में विवाह के बारे में पत्रों का ऐसा उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार दृष्टिगत नहीं, यद्यपि उस पत्र में 'सुनीता' तथा 'त्यागपत्र' में विवाह को सामाजिक तथा निभाने योग्य संस्था माना गया है।

जैनेन्द्र ने अपने बहुत से सिद्धान्तों को अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया हैं। जैनेन्द्र ने कथावस्तु की अपेक्षा चरित्रों का अधिक उपयोग किया है। जैनेन्द्र के चरित्र प्रतीकात्मक है। वे सिद्धान्त के किसी न किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। सत्यधन में व्यावहारिकता का, बिहारी में आदर्श का, कट्‌टो में त्यागमय प्रेम का, हरि प्रसन्न में हिंसा का, श्रीकान्त में अहिंसा का, सुनीता में आदर्श सती का, प्रमोद में सामाजिक व्यवस्था का, मृणाल में सामाजिक विडम्वनाओं के अत्याचार को सहने वाली नारी का प्रतीकत्व है। जैनेन्द्र उद्‌देश्य प्रतिफलन के लिए पात्र की मनः स्थिति अन्तः या बाह्य का प्रयोग करते हैं। जितेन जानता है कि मोहिनी कैद है। उसने सख़्त हिदायत दी थी कि किसी को पास जाने की जरूरत नहीं और न ही रियायत करने की। किन्तु उसका मन उद्विग्न रहा। वह जीप में बैठकर जमुना की ओर चल देता है।[171] जैनेन्द्र इस मनः स्थिति पर अपना दर्शन जमा देते हैं कि प्रकृति पुरुष की सहायिका है। वह विधि–निषेध, अच्छे–बुरे से परे है।

---

171 जैनन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 200

पात्रों के कथनों तथा संवादों द्वारा भी लेखक का दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। यों तो पात्रों के कथन भी संवादों में ही आते हैं किन्तु फिर भी दोनों में एक सूक्ष्म सा अन्तर है। कथनों में हम पात्र के उस संवाद को लेवें जिसमें वह बोलता रहता है तथा दूसरा पात्र अपेक्षाकृत मौन रहता है। अपने कथन को विस्तार से कहते समय प्रायः वक्ता दूसरे पात्र की उपस्थिति का ध्यान नहीं रखता मानो वह हो ही नहीं। यदि दूसरा उपस्थित पात्र कहीं बोलता भी है तो मात्र हॉ, हूँ या तनिक से कथन से स्वयं को सन्तुष्ट कर लेता है। मानो दूसरे वक्ता पात्र को अवकाश दे रहा हो।

'सुनीता' में हरि प्रसन्न श्रम, उत्पादन, वस्तुओं के मूल्यों की विस्तृत चर्चा करता है। हरि प्रसन्न ऐसा आभास देता है कि वह मूल्य बदलने वाली विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा हो। वह क्रान्ति की भी चर्चा करता है। यद्यपि व्यावहारिक रूप में वह क्रान्ति के लिए सुनीता को जंगल में ले जाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। हरिप्रसन्न के वक्तव्य में हम क्रान्ति का सैद्धान्तिक विवेचन पाते है।[172] श्रीकान्त रूपये पर स्वामित्व की व्यर्थता को सिद्ध करते हुए अपना कथन प्रस्तुत करता है।[173] अन्यत्र श्रीकान्त सुनीता की उपस्थिति में साधुत्व के खोखलेपन को लक्ष्य करता है। वह इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है कि स्त्री पुरुष की परस्परता में ही व्यक्तियों का हितलाभ है।[174] 'त्यागपत्र' में मृणाल उपन्यास के उत्तर–भाग में लम्बे–लम्बे वक्तव्य देती है, यद्यपि उसके सामने प्रमोद उपस्थित रहता है। मृणाल कोयले वाले के प्रसंग के माध्यम से स्त्री के शाश्वत धर्म, सेवा तथा प्रेम का परोक्षतः प्रतिपादन करती है। उसके कथनों में व्यंग्य है कि अप्रेम पाप है।[175]

---

172 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 30–31
173 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ –33
174 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 21–22
175 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 67–68

पात्र के कथन की अपेक्षा छोटे–छोटे संवादों में उद्देश्य प्रतिफलन अधिक कलात्मक है। 'कल्याणी' इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। उसके छोटे–छोटे संवादों में सूत्रात्मक रूप में बहुता सा दर्शन भर दिया गया है।

जैनेन्द्र जी ने अनेक विचारों तथा दर्शन को अपने कथा साहित्य मे समाहित किया है। उन्होंने इसके प्रतिफलन के लिए प्रायः सभी प्रमुख तत्वों, वस्तु, चरित्र–संवाद आदि का सहारा लिया है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में प्रचलित परम्परा का निर्वाह न होकर बल्कि नवीन परिपाटी का सृजन हुआ है और यही परिपाटी शैली का मूलाधार है। इसी के माध्यम से हम रचनाकार के मनोलोक में प्रवृष्टि हो जाते हैं और उसके स्वभाव, संस्कार एवं अन्तः प्रेरणाओं की जड़ को पकड़ पाते हैं। इसी के अन्तर्गत मन के चेतन, अचेतन व अवचेतन में मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं। जैनेन्द्र जी के साहित्य में जो बारीकी आई है, उसका आधार उनके मूलग्राही विचार ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने युग के विचारों का बड़ी सार्थकता से दोहन किया है।

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में जैनेन्द्र कुमार की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत चेतना के परिप्रेक्ष्य में युगीन परिस्थितियों का अध्ययन किया गया है, साथ ही युगीन परिवेश की अभिव्यक्ति का क्रमिक प्रतिपाद्य जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य में दिखलाते हुए युगानुसार परिवर्तित सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शिल्पगत चेतना का प्रभाव उनके कथा साहित्य में लक्षित किया गया है। इन युग चेतना के संवाहक स्वरों को जैनेन्द्र कुमार के जीवन और व्यक्तित्य तथा साहित्य से सम्बद्ध करके विवेचित किया गया है।

जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शिल्पगत युग चेतना की किस सीमा तक अभिव्यक्ति हुई है, यही इस शोध–प्रबन्ध का उद्देश्य रहा है। साहित्य में युग भावनाओं की अभिव्यंजना युग–चेतना कहलाती है। चेतना स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसका मूल्यांकन करने की शक्ति है। साहित्य युग चेतना से जुड़ा हुआ होता है। वह अपनी उपजीव्य सामग्री युग से ग्रहण करता है और कथाकार या साहित्यकार उस युग–बोध को सम्प्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि करता है। जैनेन्द्र कुमार का कथा–साहित्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जैनेन्द्र कुमार का जन्म ऐसे समय में हुआ जबकि उन्होंने भारत परतन्त्र रूप में देखा। उनका जीवन एक ओर पृष्ठभूमि से सम्बद्ध दिखायी पड़ता है तथा दूसरी ओर परम्पराओं से भी निकट का सम्बन्ध जोड़े हुए था। ऐसी ही पृष्ठभूमि में उन्होंने युग चेतना से संपृक्त होकर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक नीरस सिद्धान्तों को साहित्य का अंग

बनाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया कि उनकी नीरसता का तो परिहार हो ही गया साथ ही एक विशाल युग का चित्रपट साकार हो उठा।

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में क्रान्ति और नवीन खोजों के कारण आमूल परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन में एक नूतन चेतना पून्जीभूत थी जिसकी अभिव्यक्ति परम्परागत साहित्यिक अभिधान में सम्भव न थी। इसलिए परिवर्तनशील युग चेतना के परिपार्श्व में सामाजिक मूल्यों के अभिव्यंजनार्थ गतिशील साहित्यिक विधा कथा साहित्य का जन्म हुआ जो आज भी अपने दायित्व का निर्वाह कर रही है। यही कारण है कि जैनेन्द्र कुमार अपने युग का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने के लिए काव्य से कथा साहित्य में आये और अपनी कृतियों में घटनाक्रम एवं पात्रों में युग के प्रतिबिम्ब–स्वरूप उन्होंने कथा साहित्य को अपनी सूक्ष्म दृष्टि की सहायता से युग साक्ष्य के रूप में विकसित किया। यूँ तो जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में पहले–पहल चिन्तक के रूप में आये लेकिन एक बार अपनी प्रतिभा के इन उपकरणों की क्षमता जान लेने के बाद उन्हें चिन्तन के मुखौटे की कोई आवश्यकता न पड़ी। जैनेन्द्र कुमार को युग चितेरा होने में अपनी प्रतिभा का उल्लास दीख पड़ा। उनकी कृतियॉ – 'परख', 'सुनीता', 'सुखदा', 'फॉसी', व्यतीत', 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' और 'अनन्तर' आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत चेतना का रूप मिलता है। जैनेन्द्र कुमार सच्चे अर्थों में युग चेतना के प्रतिनिधि कलाकार हैं जिनकी कृतियाँ भारतीय जनमानस की प्रतिच्छवि हैं।

सामाजिक स्तर पर जैनेन्द्र कुमार ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर उनसे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं की ओर दृष्टिपात् किया। परिवार, ब्रह्मचर्य, विवाह, प्रेम–विवाह, वैवाहिक जीवन में प्रेम,

काम–भावना, वेश्यावृत्ति आदि विषयों का विवेचन उन्होंने अपनी अनुभूतियों के आधार पर प्रस्तुत किया। जैनेन्द्र कुमार ने सामाजिक मर्यादा का निषेध नहीं किया और न ही परिवार को तोडने के पक्ष में विचार व्यक्त किया, किन्तु जहॉ तक प्रेम का सम्बन्ध है, उसे वह सामाजिक बन्धन से मुक्त मानते रहे। काम और प्रेम को लेकर उनके साहित्य में अनेकानेक समस्याएँ दृष्टिगत होती है। यह सत्य है कि विवाह में प्रेम द्वारा जैनेन्द्र कुमार ने जीवन के एक महत्वपूर्ण सत्य की ओर दृष्टिपात किया, क्योंकि इस सत्य को कोई नकार नहीं सकता कि विवाह के बाद पति–पत्नी का आकर्षण बाहर की ओर से पूर्णतया समाप्त हो जाता है और वे परिवार के घेरे में बन्द हो जाते हैं। हम व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि विवाह के अनन्तर भी प्रेम की स्थिति बनी रहती है। यह बात दूसरी है कि वह काम के स्तर पर घटित होता हुआ न दिखाई दे। जैनेन्द्र कुमार ने जीवन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्याओं को व्यक्ति–सापेक्षता में ही स्वीकार किया।

कथा साहित्य और दर्शन दोनों एक दूसरे से अलग हैं, परन्तु दार्शनिक चेतना की अभिव्यंजना इसलिए होती है कि उसमें एक विशाल युग–जीवन के साथ–साथ मनुष्य के जीवन की व्याख्या और आलोचना होती है। इसके अलावा पात्रों के अपने विश्वास, तर्क, बौद्धिकता तथा आस्था में कहीं–न–कहीं कथाकार का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हो जाया करता है। जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य का प्रमुख तत्व नियतिवाद है। उनका कहना था कि हमको कर्म करना चाहिए, होगा वही जो होना है, इसे हम परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। जैनेन्द्र कुमार का यह नियतिवाद गीता का कर्मवाद है। 'गीता' में निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्म मार्ग को नियतिवाद माना गया है। जैनेन्द्र कुमार के नियतिवाद तथा गीता–दर्शन में साम्य है, जिसकी उनके कथा साहित्य में व्यापक रूप

में अभिव्यंजना हुई है। वह नियतिवाद कहीं भोगवादी दर्शन की अभिव्यक्ति करता है तो कहीं भाग्यवाद के पर्याय के रूप में आया है। इस प्रकार जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य की दार्शनिक चेतना परम्परानुमोदित भारतीय है।

जैनेन्द्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक चेतना को भी अपने कथा साहित्य में निरूपित किया। उन्होंने पुरुष पात्रों की मनोवैज्ञानिक चेतना और नारी पात्रों की मनोवैज्ञानिक चेतना की विशद् व्याख्या की।

युग–चेतना कथाकार का एक ऐसा अस्त्र है जो कथा साहित्य के भावपक्ष और प्रतिपाद्य में ही परिवर्तन नहीं लाता अपितु कथा साहित्य के प्रस्तुतीकरण–शिल्प में भी नवीन परिवर्तन लाता है। प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ और युग चेतना अपने विगत से भिन्न हुआ करती है, जिसकी अभिव्यक्ति का माध्यम पूर्णतः मौलिक और अभिनव होता है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य का अवलोकन करने पर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। कथा साहित्य तो यथार्थ की अनुकृति है तथा युग चेतना का अनुगामी है, इससे कथा साहित्य अछूता नहीं रह सकता। जैनेन्द्र कुमार का कथा साहित्य स्वयं इसका प्रमाण है। 'परख', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' 'अनन्तर' तथा 'सुनीता', शिल्पगत भावगत एवं विचारगत परिवर्तनशील युगचेतना के प्रमाण हैं। उनकी भाव शैली उत्तरोत्तर यथार्थवादी, चित्रात्मक तथा नाटकीय होती गई। यही कारण है कि जैनेन्द्र कुमार के प्रस्तुतीकरण–शिल्प में मौलिक परिवर्तन होता रहा है। भाषा–शैली में मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों तथा देशज शब्दों के प्रयोग से अद्‌भुत अभिव्यंजनात्मक शक्ति आती गयी।

युग चेतना का वाणी विधान करना जैनेन्द्र कुमार का साहित्यिक धर्म था। युग परिवर्तनशील है। फलतः जैनेन्द्र कुमार के साहित्य में भाव परिवर्तित होते गये। साथ ही साथ वे बिना किसी पूर्व योजना के

कथा–साहित्य–सृजन करते थे। युग चेतना का इतना सशक्त और सरल कथाकार हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं हुआ।

जैनेन्द्र कुमार की मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का कथा साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उनकी कथा क्षीणता, चरित्रों को केन्द्रीय महत्व देना तथा उनके नाम पर कथा साहित्य का नामकरण करना, चरित्र–चित्रण में मनोविश्लेषण की विधियों का प्रयोग करना – कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं – जो उन्होंने परवर्ती कथा शिल्प को प्रदान की। जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी उपन्यासों को एक नयी दिशा दी। आज के विभिन्न उपन्यासों पर उनके प्रस्तुतीकरण–शिल्प का प्रभाव देखा जा सकता है।

जैनेन्द्र कुमार भाषा के स्तर पर व्याकरण सम्मत भाषा के आदी नहीं थे। इसलिए उनके कथा साहित्य की अभिव्यंजकता में व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग नहीं मिलता। वह अपने पात्रों के हृदयगत भावों के लिए वाक्य संरचनात्मकता का परम्परित रूप ग्रहण नहीं करते थे, क्योंकि वे भाषा को भावों की अनुवर्तिनी मानते थे। पात्रों की जैसी भी आभावधारा होगी भाषा उसके अनुरूप ही स्वरूप ग्रहण करेगी – ऐसा उनका मानना था।

जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य पर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत युग चेतना का व्यापक प्रभाव पड़ा है। उनकी सांस्कृतिक चेतना में बौद्धिकता का आग्रह है, जिससे सांस्कृतिक धरातल पर अराजकता की स्थिति दिखायी पड़ती है। आज ऐसा लगता है कि सांस्कृतिक विकास में गतिरोध की स्थिति आ गई है। प्राचीन काल के शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना नहीं हो पा रही है। जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य में युग चेतना का सर्वांगीण चित्रण हुआ है। इसलिए वह युग चेतना के प्रतिनिधि कथाकार कहे जाते हैं।

अस्तु, निवेदन है कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में एक साहित्यकार का गवेषणात्मक विवेचन किया गया है, जो अबाध गति से साहित्य की रचना में संलग्न रहा तथा जिसने हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य निधियाँ प्रदान की। शोधकर्त्ता को विषय की मर्यादा का पालन करना आवश्यक था, अतः कृतियों को ही समीक्षा हो सकी है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में निष्कर्ष की अपनी सीमायें है।

जैनेन्द्र कुमार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विराट है, जिसे किसी निश्चित विषय सीमा या शीर्षक के अन्तर्गत समेट पाना संभव नहीं है। अतः जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य में शोध एवं विवेचन की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं। भावी शोधार्थियों के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध संदर्भ के रूप में दिशा–निर्देश देने में सहयोग प्रदान करेगा– इसी विश्वास के साथ यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनों के समीक्षार्थ प्रस्तुत है।

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी ग्रंथ

1. इन्द्रनाथ मदान — आज के हिन्दी उपन्यास
2. उदयभानु सिंह — तुलसी दर्शन मीमांसा
3. ओम प्रकाश शर्मा — जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प
4. कमल विमल — काव्य विवेचन
5. कुसुम कक्कड़ — जैनेन्द्र का जीवन दर्शन
6. कैलाश वाजपेयी — आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प
7. गणेश पाण्डेय — हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ (सम्पादित)
8. गोपाल दत्त सारस्वत — आधुनिक काव्य परम्परा तथा प्रयोग
9. घनश्याम मधुप — हिन्दी लघु उपन्यास
10. जैनेन्द्र कुमार — अनन्तर
11. जैनेन्द्र कुमार — अनामस्वामी
12. जैनेन्द्र कुमार — इतस्ततः
13. जैनेन्द्र कुमार — कल्याणी
14. जैनेन्द्र कुमार — काम प्रेम और परिवार
15. जैनेन्द्र कुमार — जयवर्धन
16. जैनेन्द्र कुमार — जैनेन्द्र की कहानियाँ
17. जैनेन्द्र कुमार — जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ

18. जैनेन्द्र कुमार — त्यागपत्र

19. जैनेन्द्र कुमार — परख

20. जैनेन्द्र कुमार — परिप्रेक्ष्य

21. जैनेन्द्र कुमार — प्रश्न और प्रश्न

22. जैनेन्द्र कुमार — प्रेम और विवाह

23. जैनेन्द्र कुमार — मंथन

24. जैनेन्द्र कुमार — मुक्तिबोध

25. जैनेन्द्र कुमार — व्यतीत

26. जैनेन्द्र कुमार — विवर्त

27. जैनेन्द्र कुमार — समय और हम

28. जैनेन्द्र कुमार — समय, समस्या और सिद्धान्त

29. जैनेन्द्र कुमार — साहित्य का श्रेय और प्रेय

30. जैनेन्द्र कुमार — सोच विचार

31. जैनेन्द्र कुमार — सुखदा

32. जैनेन्द्र कुमार — सुनीता

33. देव राज उपाध्याय — आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान

34. देव राज उपाध्याय — जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

35. देव राज उपाध्याय — संस्कृति का दार्शनिक विवेचन

36. देव राज उपाध्याय — साहित्य चिन्ता

37. नगेन्द्र — आस्था के चरण

38. नन्ददुलारे वाजपेयी — आधुनिक साहित्य

39. नेमिचन्द्र जैन – अधोसाक्षात्कार

40. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी – हिन्दी कथा साहित्य

41. पन्ना द्विवेदी – दिनकर के काव्य में युगीन चेतना

42. प्रताप नारायण टंडन – हिन्दी उपन्यासों में कथा साहित्य का विकास

43. प्रभाकर माचवे – जैनेन्द्र के विचार

44. प्रेमचन्द – साहित्य का उद्देश्य

45. प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य

46. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना

47. भगीरथ मिश्र – काव्य शास्त्र

48. मक्खन लाल शर्मा – हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा

49. मनमोहन सहगल – उपन्यास कार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन

50. महावीर लोढ़ा – हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन

51. महेन्द्र चतुर्वेदी – हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण

52. महेन्द्र भटनागर – स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (सम्पादित)

53. रघुनाथ सरन झालानी – जैनेन्द्र और उनके उपन्यास

54. रमेश तिवारी – हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

55. राजेन्द्र प्रसाद – साहित्य शिक्षा और संस्कृति

56. राधाकृष्णन — भारतीय दर्शन (प्रथम भाग)

57. रामचन्द्र तिवारी — हिन्दी का गद्य साहित्य

58. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास

59. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय,

60. रामधारी सिंह दिनकर — साहित्य मुखी

61. रामनाथ शर्मा — सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा

62. रामरतन भटनागर — जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा

63. रामविलास शर्मा — प्रेमचन्द्र और उनका युग

64. लक्ष्मीकांत शर्मा — जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक और शैलीतात्विक अध्ययन।

65. लक्ष्मीकांत वर्मा — नई कविता के प्रतिमान

66. लक्ष्मीनारायण लाल — हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास।

67. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — पश्चिमी आलोचनाशास्त्र

68. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — बीसवीं शताब्दी–हिन्दी उपन्यास : नये सन्दर्भ

69. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ

70. विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी — स्वतंत्रता और संस्कृति (अनुवादित)

71. सत्यपाल चुघ — प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि

72. सत्य प्रकाश मिलिन्द — जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व (सम्पादित)

73. सरनाम सिंह शर्मा — साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा

74. सुरेश सिन्हा — हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास

75. सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास

76. त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

77. हजारीप्रसाद द्विवेदी — अशोक के फूल

78. हजारीप्रसाद द्विवेदी — विचार और वितर्क

अंग्रेजी ग्रंथ

1. कैल्विन एस० हाल — इन्ट्रोडक्शन ऑफ साइक्लॉजी
2. क्रिस्टोफर काडवेल — स्टडीज इन ए डाइंग कल्चर
3. ई० टाइलर — प्रिमिटिव कल्चर
4. गिलवर्ट मरे — दि क्लासिक ट्रेडिशन इन पोयट्री
5. एच०बी० रूथ — इंगलिश लिटरेचर आइडियाज इन दि ट्वेन्टीथ सेन्चुरी
6. हेवलॉक एलिस — साइक्लॉजी ऑफ सेक्स
7. जॉन लिविंग्सटन — कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री
8. महात्मा गांधी — वोमेन एण्ड सोशल जस्टिस
9. एम० जे० हर्स कोविट्स — मैन एण्ड हिज वर्क्स
10. मैकाइवर एण्ड पेज — सोसायटी
11. आर०जी० कलिंगवुड — द प्रिसिपल ऑफ आर्ट
12. रिचर्ड स्टेंग — दि थ्योरी ऑफ नावेल इन इंग्लैड
13. टी० एस० इलियट — आफ्टर स्टेन गॉड्स

कोश

1. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज (भाग–3)
2. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खंड)
3. हिन्दी विश्वकोश
4. हिन्दी साहित्य कोश – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादित)

पत्रिकाएं

1. आलोचना – उपन्यास अंक – 73
2. कल्याण – हिन्दू संस्कृति विशेषांक
3. नई धारा – फरवरी, मार्च अंक, वर्ष 1966
4. युग चेतना – मार्च अंक, वर्ष 1955
5. संचेतना – मार्च अंक, वर्ष 1970
6. सप्त सिंधु (मासिक) – सितम्बर अंक, वर्ष 1970
7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – 16 मार्च, वर्ष 1958
8. हंस – सितम्बर अंक, वर्ष 1936